

i dk' kdh;

हुक्मगच्छ के अष्टमाचार्य युग पुरुष श्री नानेश विश्व की उन विरल विभूतियों में है जिन्होंने अपने व्यक्तित्व और कृतित्व से समाज को सम्यक् जीवन जीने की वह राह दिखायी जिस पर चल कर भव्य आत्माएँ अपने कर्मों का क्षय कर मोक्ष की अधिकारिणी बन सकती है। यद्यपि आचार्य श्री जी के भौतिक व्यक्तित्व का अवसान हो चुका है। तथा पि उनके द्वारा चलाये गये विविध अभियानों में वह सदा ही प्रतिच्छायित होता रहेगा। इस प्रकार उनका वह व्यक्त रूप ही पर्यवसित होकर उस कृतित्व में समाहित हो गया है जो उनके द्वारा विचरित साहित्य के रूप में उपलब्ध है। एक क्रान्तिदर्शी आचार्य का यह प्रदेय साहित्य की वह अनुपम निधि बन गया है। जो सांसारिक प्राणियों के लिए प्रकाश स्तंभ का कार्य करता रहेगा।

इस स्तंभ में विकीर्ण होनेवाली प्रकाश रश्मियाँ युगों—युगों तक आलोक धारा प्रवाहित करती रहे इसके लिए यह आवश्यक है। कि न तो उन साहित्य रश्मियों को क्षीण होने दिया जाये न ही उनकी उपलब्धता बाधित होने दी जाये वरन आवश्यक यह भी है कि सर्व सामान्यजनों हित उनकी सुलभता सुनिश्चित रखी जायें। इस उद्देश्य से प्रेरित होकर श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ ने उस अनमोल साहित्यिक धरोहर को “नानेश वाणी” पुस्तक श्रृंखला के अन्तर्गत प्रकाशित करने का

निर्णय लिया। इस निर्णय की पूर्ति हेतु विशिष्ट निधि की स्थापना की घोषणा की गयी तथा देशभर में फैले श्रद्धालुओं से मुक्त स्त अर्थ सहयोग प्रदान करने का आह्वान किया गया। सत्संकल्पों को पूर्ति में कभी बाधाएँ नहीं आती। ऐसा ही इस संकल्प के साथ भी हुआ। सभी ओर से प्राप्त प्रभूत अर्थ सहयोग ने संघ को उस स्पृहणीय स्थिति में पहुँचा दिया जिसमें संकल्प पूर्ति मात्र औपचारिकता रह जाती है।

इस संदर्भ में बेंगलौर वासी सुश्रावक श्री सोहनलाल जी सिपानी के विशेष सहयोग का उल्लेख करना भी आवश्यक है। जिनकी गुरुभक्ति, धर्मनिष्ठा एवं संघ समर्पणा भाव ने उन्हें प्रेरित किया कि वे समर्पित भाव से प्रयत्न करके उन्होंने ऐसा ही किया उन्हीं के सद्प्रयासों से “नानेश वाणी श्रृंखला” का 40 प्रकाशाधीन पुस्तकों के लिए अर्थ सहयोग की लगभग स्वीकृति कर्नाटक और तमिलनाडु से ही प्राप्ति हो गयी। श्री सिपानीजी की ऐसी संघ निष्ठा हेतु तथा उदार दाताओं के प्रशस्त सहयोग हेतु हम उनके आभारी हैं।

अब जबकि अपेक्षित धनराशि एकत्र हो चुकी है हम आचार्य श्री नानेश के साहित्य को चरणबद्ध रीति से प्रकाशित करने की दिशा में गतिमान हो गये हैं। हमारी योजना के अनुसार प्रथम चरण में प्रकाशित एवं प्रचारित परन्तु अनुपलब्ध कृतियों के नवीन प्रकाशन किये जाने हैं द्वितीय चरण में अप्रकाशित असम्पादित प्रवचनों को संकलित कर नयी कृतियों के रूप में प्रकाशित किया जायेंगे।

इस क्रम में आचार्य नानेश की कृति चेतन! अपने घर जाओ की यह नवीन आवृत्ति सुधी पाठकों साधकों, स्वाध्यायियों एवं श्रद्धानिष्ठ श्रावक—श्राविकाओं के हाथों में अर्पित करते हुए हमें अपार हर्ष एवं संतोष का अनुभव हो रहा है। हमें विश्वास है कि यह आवृत्ति उनकी रुचि, अपेक्षाओं एवं आशाओं के अनुरूप बन

पड़ी है।

यहाँ पर उल्लेख भी प्रासंगिक है कि जैन श्रमण परम्परा में साधुमार्गी जैन संघ का आत्म साधना, तपोराधना, धर्म प्रभावना एवं साध्वाचार की प्रवृत्तियों को प्रेरित करने में महत्वपूर्ण योग रहा है। क्रियोद्वारक आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म.सा. ने इसकी प्रतिस्थापना हेतु अहं भूमिका का निर्वहन किया था। उनके पश्चातवर्ती आचार्य ने इस संघ को अनवरत ऊचाईयों की ओर अग्रसर किया। श्री शिवलाल जी म.सा. आदि निर्ग्रन्थ संस्कृति के प्रतीक थे तो श्री उदयसागर जी म.सा. ज्ञानाराधना के आदर्श। श्री चौथमल जी म.सा. श्रमणाचार व संघ निष्ठता के उच्च शिखर रूप समादृत रहे तो श्री श्रीलालजी म.सा. अनन्य रोग साधक व बेजोड़ भविष्यदृष्टा बनें। उनके उत्तराधिकारी श्रीमद् जवाहराचार्य एक से क्रान्तदृष्टा थे जिन्होंने आत्मधर्म के साथ ग्राम नगर राष्ट्र धर्म आदि संयुक्त कर धर्म को नव आयाम प्रदान किये तो कालजयी विचार दर्शन भी प्रस्तुत किया। शांत क्रान्ति के अग्रदूत श्रीमद् गणेशाचार्य ने यदि धर्म संघ, आत्मचिन्तन व श्रमण चेतना को विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया तो आचार्य श्री नानेश ने आत्मलक्षी साधना की युगीन दिशाएँ उन्मुक्त की।

चिन्तन और साधना के क्षेत्रों में नवीन कीर्तिमान स्थापित करनेवाले ऐसे धर्माचार्य श्री नानेशाचार्य के साहित्य को सतत् सहज उपलब्धता जहाँ धार्मिक आध्यात्मिक नव जागरण की दृष्टि से आवश्यक है वहीं समाज और संस्कृति के पुनरुत्थान की दृष्टि से आवश्यक है वहीं समाज और संस्कृति के पुनरुत्थान की दृष्टि से ही अपरिहार्य है। एक प्रज्ञासम्पन्न साधक, आदर्श चिंतक एवम् दार्शनिक, समत्वयोगी, समीक्षण ध्यान प्रणेता, धर्मपाल प्रतिबोधक एवं आध्यात्मिक आराधक के रूप में उनका प्रदेय वर्तमान युग की अनमोल निधि हैं अपने इस प्रदेय और अपनी गहन साधना द्वारा धर्माचार्य के रूप में उन्होंने वह विशिष्ट स्थान

प्राप्त कर लिया जो सम्प्रदायितीत होता है। उनका यह रूप उनके उस सम्पूर्ण प्रकाशित एवं अप्रकाशित साहित्य में प्रखरता से उद्घाटित होता है जो गाथाओं, कथाओं, प्रवचनों, उपदेशों एवं उद्बोधनों के रूप में उपलब्ध है। और अपनी प्रकृति के कारण जो चेतना के ऊर्ध्वारोहण चरित्र के सुसंस्कार एवं जीवन के परिष्कार में सहायक भी है।

आचार्य श्री नानेश की साहित्य साधना पर विहंगम दृष्टिपात करने पर स्पष्ट होता है कि कालक्रम में परिवर्तित होते "साहित्य" के अर्थों के संदर्भ में इससे सभी रूपों का प्रतिनिधित्व है। यह शास्त्र की भांति परम हितकारी है तो काव्य के अर्थ में सत्य, शिव, सुन्दर का समन्वित रूप भी है। इसमें सनिहित सत्य शाश्वत है, यह शिव स्वरूपी अर्थात् सर्व कल्याणकारी है। और सत्य व शिव होने से सौन्दर्य बोध भी करता है। यदि समग्र साहित्य की अंग्रेजी के "लिटरेटर" अर्थ में ले तो यह जितना लिखित (पुस्तकाकार प्रकाशित) है उतना ही प्रवचनों के रूप में मौखिक भी है।

यह महत्वपूर्ण तथ्य व सत्य है कि आचार्य श्री नानेश साहित्यकार होने से पूर्व सिद्ध संत थे यद्यपि सर्वप्रथम वे मानव थे। यही कारण है कि मानव को केंद्रस्थ रखकर उन्होंने अपने प्रवचनों में यही संदेश दिया कि मनुष्य आत्मा से परमात्मा (अप्पा सो परमप्पा) की यात्रा हेतु स्वयं को कषायों से मुक्त करें और परिधि से केन्द्र में स्थित होने के लिए बहिर्मुखी चिन्तन छोड़कर अन्तर्मुखी बनें। वस्तुतः उनका बहुआयामी चिन्तन उनकी अनोखी उपलब्धि है तथा उनका साहित्य मानव मात्र के हित साधन हेतु सम्प्रदायातीत जीवन मूल्यों के विकास एवं संरक्षण का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

आचार्य श्री जी का साहित्य विपूल है। समाज के सम्मुख उपलब्ध प्रकाशित कृतियों के अतिरिक्त ऐसा अपरिमित

साहित्य भी विद्यमान है जो लिपिबद्ध प्रवचनों फुटकर लेखों एवं भक्तजनों द्वारा संकलित/संग्रहित सामग्री के रूप में है। संघ ऐसे साहित्य को प्राप्त कर उसे यथा संभव प्रकाशित कर जन-जन के हितार्थ प्रस्तुत करने हेतु कृत संकल्प है।

आचार्य श्री नानेश के साहित्य को निश्चित वर्गों में विभाजित कर पाना कठिन है। इसमें समाविष्ट है प्रवचन-संकल्प, आगम-ग्रन्थों/विषयों का विवेचन, कथा साहित्य, काव्य कृतियों, सुभाषित व सुक्तियाँ। उनका साहित्य उनकी ज्ञान गरिमा का परिचय तो करता है। समाज की दृष्टि से उसको उपयोगिता को भी रेखांकित किया जा सकता है। वस्तुतः उनका साहित्य चाहे व किसी भी रूप/विधा में हो, वह उनकी उच्च कोटि की आध्यात्मिक साधना का प्रमाण प्रस्तुत करता है। एक युग प्रवर्तक संत, धर्माचार्य, अध्यात्मयोगी एवं समता दर्शन प्रणेता के जीवन के विविध आयामों तथा साधना के विभिन्न क्षेत्रों में परिचित कराने में भी वह सक्षम हैं उनके इस साहित्य के विषय है- धर्माचरण, चारित्र, पष्किरण, संस्कार-निर्माण एवं आत्म कल्याण।

उनका साहित्य प्रवचन वर्तमान जीवन को ज्वलंत समस्याओं के संदर्भ में हुआ है। उन्होंने समाजवादी और साम्यवादी चिन्तन को आध्यात्मिक धरातल पर आग्रह मुक्त हो व्याख्यातित ही नहीं किया उसे व्यवहार की गरिमा से विभूषित भी किया है। उन्होंने यहाँ जीवन की विषमताओं!/विभीषिकाओं, अधर्म के विस्तार, काषयिक प्रवृत्तियों अभावों, अशांति, तनाव, असंतोष आदि का चित्रण किया है वहीं अपनी साधना के माध्यम से मानवता के उद्धार का मार्ग भी प्रशस्त किया है। इस प्रकार उनका सम्पूर्ण साहित्य जीवन से जुड़ा तो हैं ही जीवन उन्नयन का मूलाधार भी बना है। यही उनकी साहित्य साधना की सार्थक व महत्वपूर्ण उपलब्धि है तथा इसी में सन्निहित है उसकी कालजयिता और सार्वजनीनता।

ऐसे उपयोगी साहित्य को सर्व सुलभ बनाने का हमारा संकल्प यदि मूर्तरूप प्राप्त कर सका है तो निःसंदेह यह उन वर्तमान आचार्य श्री रामेश के आर्शीवाद का ही परिणाम है। जिनकी गुरु भक्ति अनुपम व अनूठी है तथा जिन्होंने जन कल्याणकारी चिंतन को जन-जन तक पहुँचाने की विशेष चिन्ता है। हमें उनसे प्रेरणा ही नहीं मिली, वह सम्पूर्ण वत्सल मार्गदर्शन भी प्राप्त हुआ है जो प्रेरणा को उपलब्धि में परिवर्तित करने के लिए आवश्यक होता है। उनकी ऐसी कृपा हमारा ऐसा सौभाग्य है जिस पर संपूर्ण साधुमार्गी जैन संघ गर्व कर सकता है।

संत शिरोमणी आचार्य देव की ऐसी महती कृपा के लिए हम उनके प्रति विनय और श्रद्धा से नतमस्तक हैं।

प्रस्तुत कृति चेतन! अपने घर आओ (नानेश वाणी क्रमांक- 25) के प्रकाशनार्थ प्रदत्त अर्थ सौजन्य के लिए उदारमना, गुरुभक्त श्रेष्ठी प्रवर श्रीमान चन्दनमलजी महेन्द्रकुमारजी बोहरा, बेंगलोर (भीम, राज.) निवासी के प्रति हम धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। सद् साहित्य के प्रचार-प्रसार हेतु उनका यह सहयोग निश्चय ही अनुकरणीय एवं वंदनीय है।

उपर्युक्त कृति में सन्निहित मूल संदेश व कृति का परिचय अग्र पृष्ठ/पृष्ठों में प्रस्तुत किया जा रहा है, जो दृष्टव्य

है।

हमें पूरा विश्वास है कि प्रस्तुत ग्रन्थ समाविष्ट विचार दर्शन को आत्मसात कर पाठक आत्मसाधना के पथ पर अग्रसर हो सकेंगे।

भवदीय

jktey pkjfm; k/kujkt crkyk'kkrky I kM

अध्यक्षमहामंत्रीसंयोजक

,d nhi vkfnR; cu x;k

(आचार्य श्री नानेश संक्षिप्त परिचय)

,d Nk/k nhi]

,d uklgk nhi]

l nk gjrk frfej tx dk

l gt 'kkr vkkhrA

छोटा सा दीपक, गाँव की मिट्टी की सोंधी गंध से सुवासित सुसंस्कारों के नेह से सिंचित, निर्मल वर्तिका से सुसज्जित ज्योतिर्धर युगपुरुष श्री जवाहराचार्य के सुशासन में युवाचार्य श्री गणेशाचार्य से प्रकाश ले अपने चहुँ और परिव्याप्त निबिड अंधकार

को विदीर्ण करने हेतु प्रज्वलित हो उठा था अग्नि ज्योति, चन्द्र ज्योति, चन्द्र ज्योति, रविज्योति की जाज्वल्यमान परम्परा में सम्मिलित होने का क्षीण दीपज्योति का दुस्साहस। बलिहारी उस आत्मबल को जो दीपक से दीपक जलाकर अमानिशा को मंगलकारी दीपावली में परिवर्तित कर देने की क्षमता रखता है।? तब यदि नन्हा दीपक “नाना” दीपक, प्रकाश की अजस्र धारा प्रवाहित करने हेतु, नानादिशोन्मुखी हो, नानाविध, सर्वजनहिताय था आचार्य नानेश बन गया था तो आश्चर्य कैसा? शास्त्रकारों ने कहा भी है—

**tg nhoks nhol a ibli , t l ks nhokA
nhol ek vk; fj; k nh0ofr i ja p fnoofrAA**

और फिर बाल भगवान की परम्परा कोई नयी भी नहीं। प्रलय पारावार में वट वृक्ष के पत्र पर सहज निद्रामग्न बालमुकुन्द साक्षात् ब्रह्म ही तो थे जिन्हें श्रद्धालुजन भक्तिभाव से नमन करते हैं— “वटस्य पत्रस्य पुटः शयानम् बालमुकुन्दम् शिरसा नमामि” और उन्हीं के संरक्षण में नव दृष्टि का विकास संभव हुआ था। अज्ञानांधकार के हारण में महत्व वय, आकार, रूप अथवा वर्ण का नहीं होता क्योंकि “उत्तमतं गुणेहित चेव पविज्जई”। उत्तमता गुणों से प्राप्त होती है और गुणों की हो पूजा होती है— “गुण पूजास्थानं न च लिंग न च वयः”। यही देखकर तो पूज्य आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. ने पूर्ण आश्वस्तिभाव से आठवें पाट के अधिष्ठता का पद “नानालाल” को देने की पूर्वपीठिका की दिशा में उन्हें युवाचार्य के पद पर अभिषिक्त किया था भले ही जननी श्रृंगार बाई का ममताव्याकुल संशयशील हृदय प्रार्थना करता रहा हो—“ई घणा भोला टाहर है, यों पे उतरो मोटो बोझ मती नाखों।”

परन्तु क्या बोझ डाला गया था? दीपक से कोई कहता है— कि चतुर्दिश अंधकार को विदीर्ण करने का बोझ तू उठा। वह तो सूर्य का उत्तराधिकारी होने के कारण प्रज्वलित दीपक पर

स्वतः ही आ जाता है दीपक का अर्थ ही है प्रकाश और प्रकाश का अर्थ है तमहरण का संकल्प। इस की पूर्ति हेतु दीपक का कर्त्तव्य बन जाता है कि वह अपनी प्रज्वलित वर्तिका से दीपक के बाद दीपक प्रदीप्त कर अवली में सजाता जाये जिससे सम्पूर्ण जगत प्रकाशमान हो उठे। इसी संकल्प की पूर्ति में "नाना दीप" ने दीपित संत-सतियों को एक सुदीर्घ श्रृंखला ही सर्जित कर दी थी। एक कड़ी दूसरी से जुड़ती गयी थी। सम्पूर्ण संसार को अपनी ज्योति परिधि में आवेष्टित कर लेने के लिए। और जगती का आंगन आचार्य श्री के नेश्राय मं दीक्षित दीपकों की लम्बी श्रृंखला से सज गया। किसी एक आचार्य की प्रचण्ड उर्जा का असंदिग्धप्रमाण था। यह चमत्कार भी था क्योंकि ज्ञान-साधना और समाज निर्माण का यह कार्य इतने विशाल स्तर पर विगत पंच सौ वर्षों में भी सम्पन्न नहीं हुआ था। फिर तत्कालीन परिस्थितियाँ अन्यंत विषम थी। एक अत्यंत सीमित साधु-साध्वी वर्ग, साम्प्रदायिक आग्रहों से टकाराव, विरोधों की उग्रता एवं दुर्बल संघीय व्यवस्था अपने आप में विकट समस्याएँ थी। परन्तु "दीवा समा आयरिया पण्णता"— आचार्य उस दीपक के समान होता है जो अपनी प्रज्वलित ज्योतिशिखा से प्रत्येक कोने का तमहरण करने का सामर्थ्य रखता है अतः भीषण झंझावात के उस काल में जब श्रमण संघों एवं श्रावक संघों की भावनाएँ भीषणरूप से आलोडित थी, इस संघ प्रज्वलित दीपक के साहस पूर्वक घोषणा की थी।

"संघर्ष से ही नवनीत निकलता है और संघर्ष ही विपुल शक्ति का उत्पादक होता है। संघर्ष से भयभीत होनेवाला व्यक्ति प्रगति के पद के पद चिन्हों पर नहीं चल सकता"।

और प्रारम्भ हुई थी लड़ाई— दिये की और तूफान की, जिसमें दीया विजयी हुआ था। झंझावात शांत हुआ था सद्भाव, स्नहे, सहयोग और समर्पण की मंद फुहारों से सम्पूर्ण जन-जीवन

स्नात हो निर्मल हो उठा था। तथा सर्वत्र व्यवस्था और अनुशासन का सागर उमंगे भरने लगा था।

यह साधना थी, तपस्या थी, सोने की आग में तपने की। संवत् 2020 के रतलाम चातुर्मास ने यह सिद्ध कर दिया था कि वीतरागी संत अपने पराये, शत्रु-मित्र, हानि-लाभ, जय-पराजय, आदि के भावों से मुक्त होते हैं। सोना तप कर कुन्दन बनता है और संघर्षों में स्थिरमति रहकर मनस्वी वंदनीय बन जाता है—

**euLoh dk; kFKZ u x.k; fr nq[k u p l qka
rlra rra i qjfi iq%dkpu dkUro.kAA**

अशांति, विरोध और संघर्ष से आलोड़ित जन सागर ने इस अनन्य योगी ने सद्भाव, त्याग, तप और धार्मि उपलब्धियों का जो नवनीत निकाला उसे अपनी साधना से मानव मात्र के हितार्थ सहज भाव से वितरित भी कर दिया। हिंसा, आतंक, विरोध शोषण पीड़ा के शमन और लोभ, मोह, क्रोध जेसी व्याधियों के उपचार में यह नवनीत अमृत रसायन सिद्ध हुआ। अपने दिव्य संदेशों द्वारा इस संत ने वर्तमान और वैज्ञानिक सभ्यता के व्यामोह के प्रति अभिनव मनुष्य को जिस प्रकार सचेत किया उसी प्रकार की सुन्दर काव्यात्मक निर्देशना राष्ट्रकवि दिनकर की इन पंक्तियों से हुई है—

**0; k l s i k r k y r d l c d n b l s g S K s]
i j u ; g i f j p ; e u q d k ; g u m l d k J s A
J s m l d k c f i j p s U ; m j d h t h r
J s e k u o d k v l h f e r e k u o k a l s i h r A
, d u j l s n h j s d s c h p d k 0 ; o / k u A
r k M + n s t k s c l o g h K k u h j o g h f o } k u A**

इस व्यवधान को तोड़ने की दिशा में यात्राओं, चातुर्मासों और उद्बोधनों के जो आयोजन हुए थे उनके बीच एक दिव्य व्यक्तित्व उभरा था— उन्न लालाट, तेजयुक्त आनन, सुदृढ़ गीवा, विशाल वक्षस्थल, प्रलम्ब बाहु और अनोखे प्रभामंडल से दीपित वपु जो सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र और सम्यक् दृष्टि की प्रकाश किरणें बरसाता इस संपूर्ण जीव सृष्टि को अपने स्नेहपूर्ण कोमल आवंष्टन ने समेट लेने के लिए आतुर था।

रवि, पवन, मेघ, चंदन और संत, भेद अभेद नहीं जानते। स्वभाव से ही अपना अक्षय स्नेह भंडार सब के लिए उन्मुक्त रखते हैं। फिर उस प्रकाशपुंज की ज्योति सीमा में कैसे बंधती? प्रसंग अनेक हो सकते हैं परन्तु प्रतिबोध की महिमा अभिन्न होती है। इसीलिए सामाजिक उत्क्रान्ति की युगान्तकारी दृष्टि धर्मपालों की अटूट श्रृंखला निर्मित कर सकी। इस प्रकार सम्यक्तत्व के मंत्र के प्रभाव से समाज के निम्नतम स्तर पर बैठे व्यक्ति को भी उच्चतम व्यक्ति के स्तर पर वही आसीन करा सकता था जो मानता हो “कम्मणा बम्भणा होई, कम्मणा होई खतिओ.....?” भगवान महावीर की इस वाणी की यदि आचार्य श्री ने चरितार्थ किया तो आश्चर्य कैसा? हरिकेशबल नामक चाण्डाल के लिए यदि प्रवज्या का विधान हो सकता था, तो जन्म के आधार पर निर्मित वर्ण व्यवस्था की उपयुक्तता तर्कसंगत कहाँ बैठती थी? परिणामस्वरूप व्यापक मानव समाज के प्रति स्नेह, सद्भाव और न्याय की जो निर्मल धारा प्रवाहित हुई थी उसमें गुराड़िया, नागदा, आक्या और चीकली जैसे ग्रामों के दलित स्नान कर कृतार्थ हो गये थे। पारस गुण अवगुण नहीं जानत, कंचन करत खरो—तब संत के संसर्ग से सरल हृदय अज्ञानीजन धर्मपाल क्यों नहीं बन सकते थे? एक राजा भागीरथ ने गंगा की पतितपावनी धारा अवतीर्ण करा कर प्राणिमात्र के लिए मुक्ति का द्वारा उन्मुक्त कर दिया तो दूसरे भागीरथ ने समता समाज की पुण्यधारा में

मानव मात्र के लिए अवगाहन का मार्ग प्रशस्त कर मानवता की अतुलनीय सेवा की।

एक जड़ सैद्धान्तिक विचार को सहज पद्धति में रूपान्तरित कर पाना निश्चय ही चामत्कारिक उपलब्धि थी प्रजातंत्र समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता जैसे जटिल, विवादित, बौद्धिक वाग्जाल में उलझी अवधारणाओं को, सरल व्यवहारिक, उपयोगी जीवनचर्य बनकार प्रचलित कर पाना युगपुरुष का ही कार्य हो सकता था। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक चिंतन को सैद्धान्तिक आग्रहों से तथा धर्म और दर्शन के तत्वों को पाखंड, अतिचार, चुराग्रह ओर आडम्बर से मुक्त कर तथा उन्हें अन्योन्याश्रित बनाकर इस महायोगी ने आधुनिक युग की विकट समस्याओं का ही सहज समाधान था। प्रस्तुत कर दिया। समता को युगधर्म के रूप में मान्य एवं प्रतिष्ठित कर पाना छोटी बात नहीं थी। कितनी कठोर साधना, कितना गहन चिन्तन, कितनी गहरी दार्शनिक पैठ और कैसे मनोवैज्ञानिक कौशल की इस हेतु आवश्यकता थी। इसका प्रमाण वह विपुल साहित्य है जिसका निर्माण मानवकृति के परिष्कार, पुननिर्माण और निर्देशन हेतु इस युगाचार्य ने स्वयं किया एवं करने की प्रेरणा दी। समीक्षणध्यान की पद्धतियों को आत्म समीक्षण के दर्शन से परमात्म समीक्षण तक पहुँचाने में आत्मा—परमात्मा, जीव ब्रह्म, द्वैत—अद्वैत आदि से संबंधित विविध चिन्तन धाराओं का जिस प्रकार समता दर्शन में समन्वय किया गया, वह स्वयं में उपलब्धि है। एक धर्म विशेष की समझी जानेवाली आचारण शैली को मानव मात्र की आचार संहिता बन सकनेवाली दृष्टि निश्चय ही चमत्कारिक थी। इसी सिद्धि के लिए जन—जन के हृदय को संस्कारित कर यह विचार पुष्ट करना आवश्यक था कि माया के पाँच पुत्र काम, क्रोध, मद, मोह और लोभ मनुष्य के अधः पतन के मूल कारण हैं ये ही आत्मा की परमात्मकता में व्यवधान डालनेवाले भी हैं—

**i kϕ plj x<+ea>kj x<+ypSfnol v: l a>kA
tksx<ifr egjde gkbj rksyϕV u l dSdtkbA**

और आचार्य नानेश ऐसे मुहकम गढपति सिद्ध हुए जो रमैया की दुल्हन को बाजार लूटने का कोई अवसर ही लेने नहीं दे सकता था। ऐसे गढपति की महिमा का बखान करते हुए संत कबीर ने पहले ही कह दिया था—

**, d k vnHkq ejk xϕ dF; kj eSj á meška
eH k gLrh l ks yM\$ dkbZ fcjyk i ška
eH k cšk clfc eš ykjs l kī f.k /kkbj
myfV eH S l kīi .k fxyh ; g vpj t Hkba
uko eaufn; k Mch tkbA**

अकाश में आँधे कुँ से पाताल की पनिहारन जो जल भरती है। उसे कोई बिरला हंस ही पीता है।

यह उलटबांसी नहीं, सत्य है, तत्व है, सार है, यही वह ज्ञान है जिसके आलोक में यह चराचर जगत किसयी रूप में अर्धवान बनता है। एक नन्हें दीपक से विकीर्ण यह प्रकाश विगत लगभग अर्द्धशती में विस्तार पाता, प्रचण्डतर होता अपनी दीप्ति के कारण जाज्वल्यमान सूर्य का पर्यार्य बन गया।

**vi us l gt l eRo Klu l snhfr dj /kjr h dk
vlxudϕV; k dk og ulgk nhi d] , d u; k vkfnR; x; k
cuA**

प्रत्येक जीवन की एक निश्चित अवधि होती है। प्रत्येक सूर्य को एक शाम अस्त होना ही पड़ता है। यह प्रकृति का नियम है। परन्तु सूर्य के अस्त होने की महिमा इस तथ्य में निहित है कि वह प्रखर प्रकाश के साथ अपनी यात्रा पूर्ण करता है और

अपने पीछे—छोड़जाता है एक नये सूर्योदय की चिरन्तन आशा।
आचार्य श्री नानेश का अवसान भी ऐसा ही था, सामान्य नहीं,
उनके प्रखर व्यक्तित्व के समान ही दिव्य।

अस्ताचलगामी उस सूर्य की संध्यावंदना करते साधकों
ने स्पष्ट देखा था कि एक ज्योति आकाश से सहसा उतरी
थी, धर्माचार्य के सूर्य के प्रकोष्ठ में प्रविष्ट हुई थी और धरती के
उस सूर्य का प्रकाश समेट कर द्विगुणित आभायुक्त हो तीव्रता से
पुनः आकाश मार्ग से लौट गयी थी। यह चमत्कार था और हम
जानते हैं, चमत्कार था जो पीछे सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र और
सम्यक् दर्शन का ही नहीं, सम्पूर्ण जीवनाचार्य का ऐसा प्रखर
आलोक छोड़ गया जिसमें भव्य आत्माएँ आत्मोद्धार का मार्ग स्पष्ट
देख सकती हैं।

दीप से आदित्य बना वह दीप अपने पीछे एक और
दीप प्रज्ज्वलित कर गया है.....रमेश दीप जो उस दिव्य आलोक
का गुरु दायित्व अपने सुदृढ़ कंधों पर वहन करने में पूर्ण सक्षम
है.....दीप की आदित्य बनने की दिशा में एक और यात्रा प्रारम्भ हो
गयी हैं साधुमार्ग में यह परम्परा अविच्छिन्न स्व से चलती रहेगी
यह तयि उस परम्परा में आदित्य बने दीप प्रमाजित कर गये हैं।
इस प्रकार अनंत आलोक का पारावार हिलारे लेता रहेगा। ऐसा
आलोक और चलती रहेगी दीप के आदित्य बनने की यह
अविच्छिन्न परम्परा करीब अठारह हजार पाँच सौ वर्षों तक।
भगवान महावीर का ऐसा ही कथन है और यही शास्त्र वचन भी है।

&MkK/vkn'kz | DI ssk

बी-17, शास्त्री नगर, बीकानेर (राज.)

अर्थ सहयोगी परिचय

महान युगदृष्टा, वैचारिक क्रांति के सूत्रधार युग प्रवर्तक जयोर्तिधर जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज सा, शांत क्रांति के अग्रदूत आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा., समता विभूति, धर्मपाल प्रतिबोधक आचार्य श्री नानालालजी म.सा. एवं वर्तमान शासन नायक प्रशांतमना, शास्त्रज्ञ आचार्य श्री रामलालजी म.सा जैसे चार शासन नायक की सेवा करनेवाले, वीतराग धर्म के प्रति दृढ़ आस्थावान, जिनवाणी के प्रति श्रद्धावान, गुरुदेवों के प्रति समर्पित और संघ के प्रति निष्ठावान 74 वर्षीय वयोवृद्ध बेंगलोर निवासी श्रीमान चन्दनमलजी बोहरा एक आदर्श सुश्रावक हैं। आपका जन्म राजस्थान प्रांत के मेवाड़ के टाडगढ़ गाँव के सुप्रसिद्ध बोहरा परिवार में श्रीमान रंगलालजी बोहरा घर में धर्मनिष्ठ श्रीमती वरजूबाई जी की कुक्षि से हुआ।

आपके पिताजी और माताजी धर्मनिष्ठ और कर्तव्य परायण सुश्रावक और सुश्राविका थे आपके जीवन में तप त्याग और धर्म ध्यान का अच्छा संगम था। साथ ही पूज्य आचार्य भगवंतो के दर्शन कर सेवा करने की प्रतिपल लग्न लगी रहती थी।

श्रीमान चंदनमलजी बोहरा की धर्मपत्नी श्रीमती रुक्मणीबाईजी बोहरा है। आपकी धर्मपत्नी सुश्राविका, सरल हृदया, सेवाभावी और आपके कदमों एवम् आदर्शों पर प्रतिपाल चलनेवाली एक आदर्श नारी हैं।

श्रीमान बोहराजी को राजस्थान सरकार ने भामाशाह पुरस्कार से सम्मानित किया।

आप ओसवाल साजनान संघ, बेंगलोर (मदारिया प्रांत) के 14 वर्षों तक अध्यक्ष रहे और वर्तमान में आप इसी संघ के सरंक्षक हैं।

आप पूर्व में कर्नाटक पॉन ब्रोकर्स एण्ड मनिलेण्डर्स
ऐसोसिएशन, बेंगलोर के अध्यक्ष रहे हैं।

आप विद्यालयों, धर्मशालाओं, धर्म स्थानकों, एवम् इत्यादि
अनेक संस्थाओं में समय-समय पर अपना योगदान देते रहे हैं।

जैन शिक्षण संघ द्वारा संचालित श्री महावीर ब्रह्मचर्य
आश्रम, देवगढ़ में आपका अपूर्व सहयोग रहा है।

आपका बेंगलोर में स्टील फर्निचर का व्यवसाय है।

श्रीमान महेन्द्रकुमारजी (श्री ललितकुमारजी)— श्रीमती
कमलादेवी और श्रीमान महावीरकुमारजी— श्रीमती उषादेवीजी
बोहरा आपके सुपुत्र और पुत्रवधुएँ हैं, जो आपके ही आदर्शों पर
चल कर धर्ममय जीवन बीता रहे हैं।

दो वर्ष पूर्व आपके द्वितीय सुपुत्र श्रीमान महावीरकुमारजी
का निधन हो गया।

श्री विकासकुमारजी और श्री चेतनकुमारजी बोहरा और
सुपौत्र हैं।

मधुजी, रिनाजी, पीकीजी तथा निकीताजी आपके सुपौत्रियाँ
हैं।

आपके 5 सुपुत्रियाँ हैं जिनकी की शादी हो चुकी है।

आपके अनुज श्रीमान मोहनलालजी बोहरा हैं। जिनकी ध
र्मपत्नी श्रीमती भूरीबाईजी का कुछ माह पूर्व निधन हो गया था।

श्री बोहराजी का पूरा परिवार धर्ममय जीवन जीनेवाला
गुरुदेव और संघ के प्रति पूर्ण समर्पित है।

आचार्य री नानालालजी म.सा. द्वारा दिये गये प्रवचनों
का संकलन अर्थात् नानेश वाणी पुस्तक की श्रृंखला में अपने यह

पुस्तक "चेतन! अपने घर आओ!" प्रकाशन करा क अपनी
लक्ष्मी का सदुपयोग करते रहे, इन्हीं मंगल भावनाओं के साथ.....

nohyky I qkyrk

'kk'or&lkn;Z

- 0 rlfkdj dh Lr(r@i kfkuk rlfkdj dh __f) dls
i lr djkuskyh gkrh gA
- 0 pru dh fojkV 'kfä ds l e{k tM+ inkfk& dh
'kfä 'kl; or~gA
- 0 i ; k.k vkr&'k) dk ioZ gA ; g Hkrj&ckgj
vkykdr@idk'kr djus dk ioZ gA
- 0 i ; k.k eu dh l QkZ dk ok'kx i kMMj gA
- 0 feF; k vkjki nqr dh vj ystkusyk gA

Jh ftujkt l q'oz i jks vk'k gekjA
l qkq l ush l kfgc l kpkj l sddj [kdkjh
/ke] dke] /ku] ek{k bR; knd] euokNr l [k i jkA
ckj&ckj ; gh fourh] Hko&Hko fpUrK pykAA

प्रार्थना के माध्यम से सुपार्श्वनाथ भगवान के चरणों में
आत्मा का निवेदन चल रहा है। भव्यजनों की भावना विभिन्न रूप

लेकर प्रभु के चरणों में उपस्थित होती है। विभिन्न परिस्थितियों का अनुभव करती हुई आत्मा इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि उसकी आशाओं की पूर्ति जगत के अन्य प्राणियों से या अन्य भौतिक पदार्थों से होनेवाली नहीं है, क्योंकि जगतवर्ती पुरुषों का आद्योपान्त अवलोकन करने के पश्चात् आत्मा इस परिणाम पर पहुँचती है कि जो स्वयं आशा की जंजीरों से जकड़े हुए हैं, वे दूसरों की आशाओं को कैसे पूर्ण कर सकते हैं? जो स्वयं तृष्णा से तड़फ रहा है, जिसके कंठ प्यास के मारे सूख रहे हैं, वह व्यक्ति दूसरे की प्यास को कैसे शान्त कर सकता है? जो व्यक्ति अपने अन्तःकरण में भौतिक पदार्थों की लालसाओं को बटोर बैठा है, वह दूसरे की आध्यात्मिक आशा की तृप्ति कैसे कर सकता है? जिसने जिस वस्तु का आस्वादन नहीं किया है, वह उसका निरुपण कैसे कर सकता है? जिसने स्वयं जिस मार्ग का अवलोकन नहीं किया है, वह दूसरे को मार्ग नहीं बता सकता। जिसका दृष्टिकोण बाहर ही बाहर दौड़ता रहा, जो आत्मा से भिन्न भौतिक पदार्थों को ही सब कुछ समझता रहा, वह अपने भीतरी स्वरूप को कैसे समझ सकता है? जिसने कभी भीतर के समुद्र में डुबकी नहीं लगायी, वह उसमें रही हुई अमूल्य रत्न—राशि को कैसे पा सकता है?

pru dh fojKV 'kfä

यह विराट चेतन—तत्त्व अपने आप में परिपूर्ण है। उसे अन्य पदार्थों की कोई अपेक्षा नहीं रहती। अन्य पदार्थों की अपेक्षा उसी को रहती है, जो स्वयं परिपूर्ण न हो। जल की दृष्टि से समुद्र परिपूर्ण है, वह कूप—जल की या नदी के जल की आशा नहीं करता। यह बात दूसरी है कि समग्र जल स्वयमेव समुद्र की ओर चला आता है। समुद्र उसकी आकांक्षा या आशा नहीं रखता। वैसे ही विराट चेतन स्वतः परिपूर्ण है। अतएव वह अन्य

किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं रखता। चेतन तत्व अपने भौतिक रूप में स्वयं प्रभु और सार्वभौम-शक्ति-सम्पन्न है। परमात्मा की शक्ति से उसकी शक्ति किंचित भी कम नहीं है। जिस तत्व में ऐसी विराट शक्ति रही हुई है, उसके लिए तुच्छ भौतिक पदार्थों की लालसा कोई महत्व नहीं रखती। क्या सूर्य अपने प्रकाश को प्रकाशित करने के लिए मिट्टी के ढेलों की अपेक्षा रखता है? क्या कभी वह पहाड़ों, चट्टानों या पृथ्वीतल की अन्य चीजों की आशा या अपेक्षा रखता है? हर कोई जानता है कि सूर्य को इनकी अपेक्षा नहीं रहती। इसी तरह भव्यजनों को यह विश्वास होना चाहिए कि उनकी आत्मा सूर्य के प्रकाश से भी अधिक प्रकाश-युक्त है। वह सूर्य से भी अधिक देदीप्यमान है। सूर्य का प्रकाश तो नियत क्षेत्र और नियत काल की परिधि में सीमित होता है, समग्र लोक को वह प्रकाशित नहीं कर सकता। मध्यलोक के अमुक-अमुक क्षेत्र को ही वह आलोकित करता है, लेकिन आत्मा की ज्ञान-रश्मियाँ न केवल मध्यलोक को, अपितु ऊर्ध्वलोक और अधोलोक को भी आलोकित करती हैं। तीनों लोकों के समग्र स्वरूप को प्रकाशित करने की शक्ति-जानने की शक्ति-आत्मा में है। इतनी विराट शक्ति का स्वामी यह चेतन-तत्व है। ऐसा विराट चेतन-तत्व भौतिक सारहीन पदार्थों की आशा करें, यह कितना हास्यास्पद है।

कर्मों की शिलाओं को हटाने का काम आसान नहीं है। यह एक अत्यन्त कठिन कार्य है। परन्तु प्रबल पुरुषार्थ के द्वारा साध्य है। यह आपका सद्भाग्य है कि आपकी पाँचों इन्द्रियों की शक्ति खुली हुई है, आपके हाथ-पाँव खुले हैं, आपका स्थूल औदारिक शरीर खुला है, केवल आत्मिक शक्ति शिलाओं से दबी हुई है। ऐसी स्थिति में आप अपनी इन्द्रियों का, शरीर का और शरीर के अंगोपांगों का उपयोग आत्मा की दबी हुई शक्तियों का प्रकट करने में करेंगे या खान-पान, नाच-गान में लगायेंगे, यह बात मैं आपके विवेक पर छोड़ता हूँ।

i ; १k.k %, d ikou i / x

भाइयों! पर्युषण पर्व आज प्रारम्भ हो रहा है। आत्मा पर पड़ी हुई आठ कर्मों की भारी शिलाओं को हटाने के लिए पुरुषार्थ करने हेतु आठ दिन के पर्युषण पर्व का पावन प्रसंग हमारे सामने उपस्थित हुआ है। आत्मा के अभ्युदय का एक सुनहरा अवसर पर्युषण पर्व के रूप में हमें प्राप्त हुआ है। यदि हम चाहें, तो इस महान आध्यात्मिक पर्व के प्रेरक संदेश को हृदयंगम करके अपनी आत्मा की दबी हुई अनन्त शक्तियों को उजागर कर सकते हैं। एक मौका फिर आया है, अपनी आत्मा को जागृत करने का, एक स्वर्ण अवसर मिला है, मोह के अन्धकार को चीरकर आत्मा की निर्मल ज्योत्स्ना को प्रस्फुटित करने का! एक सुन्दर प्रसंग आया है, आत्मा के संशोधन का!

i ; १k.k i o / dh foy {k.krk

भारत पर्व—प्रधान देश है। इसमें जितने पर्व मनाये जाते हैं, उतने संभवतः अन्य देशों में कहीं नहीं मनाये जाते। पर्वों के पीछे कोई न कोई उद्देश्य रहा हुआ है। वह उद्देश्य भले ही आज धूमिल हो गया हो, तदपि पर्वों की परम्परा आज भी भारत में प्रचलित है। रक्षा—बन्धन का पर्व रक्षा के उद्देश्य को लेकर आरंभ हुआ था। यह बात दूसरी है कि उसके वर्तमान स्वरूप में लोभ की विकृति का समावेश हो गया है। दीपमालिका पर्व स्वच्छता, सजावट, सफाई, व्यापार का लेखा—जोखा तथा बहीखातों के नवीनीकरण के उद्देश्य को लिए हुए आता है। यद्यपि इस पर्व के पीछे एक आध्यात्मिक विभूति की आलौकिक ज्योति का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है, तदपि वर्तमान में यह गौण हो गया है। आन्तरिक स्वच्छता की अपेक्षा बाह्य स्वच्छता की प्रधानता ही विशेष रूप से परिलक्षित होती है। होली का पर्व मनोरंजन की प्रमुखता को लिए

हुए है। इस तरह अलग-अलग दृष्टिकोणों से कई पर्व प्रारम्भ हुए और उनकी परम्परा चल रही है। परन्तु उन सब पर्वों की अपेक्षा यह पर्युषण पर्व अपनी विलक्षणता को लेकर हमारे समक्ष आता है।

जहाँ अन्य पर्वों का उद्देश्य बाहरी आमोद-प्रमोद और भौतिकता से सम्बन्ध होता है, वहाँ पर्युषण पर्व का उद्देश्य आत्मा को सजाने-सँवारने का होता है। अन्य पर्वों में शरीर की सजावट की जाती है, खान-पान और आमोद-प्रमोद व मनोरंजन किया जाता है, घर-बार की बाहरी सफाई और रंगार्ई-पुतार्ई की जाती है। अपने आप में यह एक विलक्षण पर्व है। यह शरीर को नहीं, आत्मा को सजाने का पर्व है। यह बाहरी स्वच्छता का नहीं, हृदय को स्वच्छ करने का पर्व है। यह अन्य को जीतने का नहीं, अपितु आत्म-विजय अर्थात् स्वयं को जीतने का महान पर्व है।

यह पर्व प्रत्येक आत्मा के लिए हितावह है। इस पर्व के पीछे किसी जाति का सम्बन्ध नहीं है, यह किसी व्यक्ति या पार्टी की बपौती नहीं है। मानव मात्र के लिए यह पर्व उपादेय और मंगलकारी है। आत्मिक आनन्द की उर्मियों से आत्मा को आह्लादित करता हुआ यह पावन पर्व हमारे सामने आया है :-

; g i o l i ; ¶k.k vk; kA

?kj&?kj ea vkuhn Nk; k jAA ; g---

dkbZ djs cyk&rykj

dkbZ nps dek& dks Byk j}

; g i o l i ; ¶k.k vk; kA

n¶u; k ea vkuhn Nk; k jAA ; g---

यह पर्युषण पर्व जन-जन के मन को प्रमुदित कर रहा

है। प्रत्येक व्यक्ति के दिल में आज विशेष धार्मिक उत्साह दृष्टिगोचर हो रहा है। बालक, युवक, वृद्ध, स्त्री-पुरुष, सभी के हृदय आनन्द से आन्दोलित हो रहे हैं। आज विशेष उत्साह और विशिष्ट तैयारी के साथ विपुल परिमाण में आप धर्माराधना के लिए इस भवन में एकत्र हुए हैं। विद्यार्थीगण भी यहाँ उपस्थित हैं, परन्तु संभवतः उन्हें थोड़ी देर बाद विद्यालय जाना पड़ेगा, क्योंकि इस पर्व प्रसंग पर उनके लिए अवकाश की व्यवस्था नहीं है। क्रिसमस, ईद आदि पर्वों पर अवकाश की व्यवस्था है। उन धर्मावलम्बियों में एकता है, संगठन है, जागृति है और धर्म के प्रति लगाव है। अतः उनके लिए अवकाश की व्यवस्था है। आप लोगों में जागृति, एकरूपता और प्रयत्नशीलता शायद नहीं है। यदि एकरूप होकर इस दिशा में प्रयत्न किया जाये, तो इस पावन पर्व के प्रसंग पर भी अवकाश की व्यवस्था हो सकती है, ताकि विद्यार्थी भी इस पावन पर्व की आराधना स्वतंत्र होकर कर सकें।

व/; kRed | lrg

आज के वातावरण में देश में विविध सप्ताहों का आयोजन होता रहता है। कभी राष्ट्रीय सप्ताह मनाया जाता है, कभी कृषि सप्ताह, कभी श्रम सप्ताह। इन आयोजित सप्ताहों में अन्य कार्यों से छुट्टी लेकर विशेष कार्यक्रमों की ओर ध्यान दिया जाता है। राष्ट्रीय सप्ताह में राष्ट्रीय हित के दृष्टिकोण को प्रमुखता देकर तदनुरूप कार्यक्रमों का आयोजन हुआ करता है। सफाई-सप्ताह में स्वच्छता को प्रमुखता दी जाती है और वैसे ही कार्यक्रम प्रमुख रूप से सम्पन्न किये जाते हैं। कृषि सप्ताह में कृषि के विषय में विशेष में विशेष सोच-विचार किया जाता है। इसी प्रकार यह पर्युषण पर्व भी आध्यात्मिक सप्ताह है। प्रारम्भ के सात दिन साधना/अभ्यास के क्षण हैं। आठवाँ दिन परीक्षण का है। इसमें बाह्य-जगत के क्रिया-कलापों से निवृत्ति लेकर आध्यात्मिक

जगत में संचार करना है। आत्मा को स्वच्छ बनानेवाले कार्यक्रमों को प्रमुखता देनी है। मन, मस्तिष्क और हृदय की गंदगी को मिटाना है। आत्मा को पवित्र बनाना है। आत्मा में न जाने कितना कचरा इकट्ठा हो रहा है। राग, द्वेष, काम, क्रोध, मद, मत्सर, तृष्णा आदि का कूड़ा-कचरा इस आत्मा को मलिन बनाये हुए है। अतः इस कूड़े-कचरे को साफ करना आवश्यक है। अन्यथा भयंकर गन्दगी और सड़ान पैदा करेगा। यदि कूड़ा-कचरा अधिक इकट्ठा हो जाये, तो फिर स्वच्छ बनाना बहुत कठिन हो जायेगा। आपके घर में यदि अधिक दिन तक गंदगी रह जाये, तो आप जानते ही हैं कि कितने कीड़े-मच्छर पैदा हो जाते हैं और मलेरिया आदि अनेक रोगों की उत्पत्ति के निमित्त बनते हैं। अतएव आप अपने मकान को साफ-सुथरा रखने का प्रयास करते हैं। जितनी सावधानी और चिन्ता आप अपने मकान की सफाई के विषय में रखते हैं, उतनी चिन्ता या उतनी सावधानी आत्मा की सफाई के लिए रखते हैं क्या? दुःख के साथ कहना होगा कि आत्मा की सफाई के लिए उतना ध्यान नहीं दिया जाता है। हम अपनी आत्मा को विषय-कषायों से मलिन बनाते रहते हैं, आत्मा के स्वास्थ्य को काम-क्रोध मद-लोभ से बिगाड़ते रहते हैं।

eu eflnj dh | QkbZ

बन्धुओं! यह याद रखना चाहिए कि हमारी यह आत्मा परमात्म-भाव का निवास-स्थान है। इस निवास-स्थान को गंदा रखकर आप परमात्म भाव का आह्वान कैसे कर सकेंगे? गंदे मन में, गंदे हृदय में परमात्मा को कैसे आसीन किया जा सकता है? यदि आप अपने मन-मन्दिर में हृदय के सिंहासन पर परमात्मा को विराजमान करना चाहते हैं, तो आपको अपने मन और हृदय को निर्मल, स्वच्छ और सुन्दर बनाना होगा। मन, हृदय और आत्मा को निर्मल बनाने के लिए ही यह पर्युषण का पावन प्रसंग आया है।

वैसे तो प्रतिदिन मकान की सफाई करना आवश्यक है। प्रतिदिन सफाई न की जा सके, तो प्रति-सप्ताह की जाती है। यदि ऐसा भी न बन पड़े, तो प्रतिमाह की जाती है। यह भी न हो सके, तो दीपावली के प्रसंग पर सफाई की जाती है। इसी तरह मन-मन्दिर की सफाई प्रतिदिन आवश्यक है। यदि ऐसा न बन पड़े, तो पक्ष में, यह भी न बन पड़े, तो चातुर्मास में और यह भी संभव न हो, तो इस पर्युषण पर्व में तो अवश्य ही मन एवं हृदय की सफाई कर ही लेनी चाहिए। एक भजन में कहा गया है :-

**i æh cudj i æ l scln§ bZoj dsxqk xk; k djA
eu&eflnj ea xkfQy§ >KMwjkt yxk; k djA
l kusearksjkr xqtkjh] fnu Hkj djrk iki jgkA
bl h rjg cjckn l e; dk§ djrk vi usvki jgkAA
i kr%dky rwmBdj cn§ l Rl ær eavk; k djAA
i æh cudj i æ l scn§ bZoj dsxqk xk; k djAA
eu&eflnj ea xkfQy§ >KMwjkt yxk; k djAA**

उक्त भजन में यह प्रेरणा दी गयी है कि प्रतिदिन अपने मन-मन्दिर की सफाई की जाये। जो बुरे विचारों का कचरा मन में इकट्ठा हो जाये, उसे झाड़-बुहारकर अलग कर दिया जाये। परमात्मा के भजन-प्रसंग से मन-मन्दिर में झाड़ू लगाना चाहिए। संतों के समीप पहुँचकर प्रार्थना के माध्यम से दिल और दिमाग को साफ करना चाहिए। कदाचित् सदैव ऐसा न किया जा सके, तो इन पर्युषण के दिनों में-जो सारी दुनिया में आनन्द की लहर दौड़ाने आये हैं-अपने विकारों की, आपसी मनोमालिन्य की, सफाई कर ही लेनी चाहिए। पर्युषण पर्व का आठवाँ दिन विकारों की विजय-प्राप्ति का दिन है। प्रारंभ के सात दिन विकार-विजय की

तैयारी के लिए हैं। इन सात दिनों में आप पूर्ण तैयारी कर लें। जो गुत्थियाँ उलझ गयी हैं, उन्हें सुलझाने की कोशिश करें। संवत्सरी के दिन तो सारा मैल धुल जाना चाहिए। तनिक भी मनोमालिन्य नहीं रहना चाहिए। इस प्रकार की भावना को लेकर प्रत्येक भाई-बहिन को पर्युषण पर्व की आराधना का आनन्द लेना चाहिए।

इस प्रकार की मंगलमय आराधना से ही आनन्द का सागर उमड़ पड़ेगा। कर्मों की भारी शिलाएँ हटेंगी और आप स्वतंत्र होकर खड़े हो सकेंगे। विकारों की शिलाओं के नीचे दबे हुए व्यक्ति को आनन्द पाना है, तो अपने सामर्थ्य से कर्म-शिलाओं को हटाने का प्रयत्न करना होगा, कर्मों के बन्धनों से उन्मुक्त होने के लिए पुरुषार्थ करना होगा। उपवास, बेला, तेला, पाँच अटाई आदि बाह्य तप और विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, प्रायश्चित आदि आभ्यन्तर तप की आराधना द्वारा कर्मों की शिलाओं को ढकेलना होगा।

बाह्य-तप के साथ आभ्यन्तर तप की आराधना भी अनिवार्यतः करनी चाहिए। उससे ही आत्मा के साथ लगे हुए कर्मों की निर्जरा होती है, कर्म के भार से आत्मा हल्की होती है। इन आठ दिनों में यह सावधानी रखनी चाहिए कि कोई नवीन कर्म आत्मा को भारी न बना दे। कर्मों के प्रवाह को रोकना चाहिए और पुराने कर्मों की निर्जरा करनी चाहिए। तभी आत्मा कर्मों से रहित होकर अपने मूल रूप को प्राप्त कर सकेगी। शास्त्र की भाषा में इसे संवर और निर्जरा कहा जाता है। नवीन कर्मों का बन्ध न हो, इसके लिए पूरा-पूरा ध्यान देना चाहिए। इन आठ दिनों में हिंसा नहीं करनी चाहिए, झूठ नहीं बोलना चाहिए, चोरी नहीं करनी चाहिए, बह्मचर्य का पालन करना, उद्दाम धन-लालसा नहीं रखना चाहिए, नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं करना है, लड़ाई-झगड़ना नहीं करना है, क्लेश कदाग्रह नहीं करना, किसी के दिल को चोट नहीं पहुँचाना। ये आठ दिन आत्मशक्ति को

उजागर करने के दिन हैं। इन दिनों में आत्मा का सिंहावलोकन करना चाहिए। दूसरों के दोषों को देखने से दूर तथा दूसरों पर मिथ्या आरोप लगाने से हमेशा बचना चाहिए।

feF; k&vkjki t?W; vijk/k gS

कई अज्ञानी व्यक्ति अपने दोषों का तो विचार नहीं करते किन्तु दूसरों पर मिथ्या-दोषरोपण करते हुए नहीं शरमाते हैं। वे बिना सिर-पैर की बातें उड़ाने में ही आनंद का अनुभव करते हैं। दूसरे के हृदय में तीर चुभाने में उन्हें बड़ा मजा आता है। वे अज्ञानी यह नहीं सोचते कि इस दुष्कर्म का परिणाम बड़ा भयंकर होता है। जो इस प्रकार दूसरों पर असद् आरोप लगाता है, वह जघन्य अपराध करता है। शास्त्रकारों ने इसे भयंकर पाप माना है। दूसरे के हृदय को छलनी बना देने के कारण यह भीषण हिंसा का कार्य माना गया है। तदपि कई लोग अपनी आदत से बाज नहीं आते और "बारह हाथ की काकड़ी और तेरह हाथ का बीज"वाली कहावत चरितार्थ करते रहते हैं। ऐसे लोग समाज में विष घोलते हैं। उनसे सावधान रहना चाहिए।

yki l h ea tgj

एक गाँव था। उसमें जमनादासजी नामक एक सेठजी ने सारे गाँव को जीमने का न्यौता दिया। आजकल तो पंचायती का वैसा महत्व नहीं रहा, लेकिन उस समय महत्व माना जाता था। अतः पंचों को बुलाकर उनकी आज्ञा माँगी गयी। पंचों ने अनुमति देते हुए कहा कि शुद्ध घी की लापसी बनाना और एक मन में 16 सेर घी डालना। पंचों की आज्ञानुसार रसोई बनायी गयी। गाँव में (बाल-बच्चों को और मेहमानों सहित) सिंगरी न्यौता दिया गया। सब लोग जीमने की तैयारी में लगे।

भाइयों! जैसी तैयारी लापसी जीमने के लिए की जा

रही है, वैसी तैयारी इस धार्मिक भवन में आध्यात्मिक जीमन जीमने के लिए की जाती है क्या? यहाँ जो भोजन परोसा जाता है, उसे जीमने के लिए आप अकेले आते हैं या बाल-बच्चों और मेहमानों को भी साथ लाते हैं? यह भोजन भी उतना ही रुचता है क्या, जितना शुद्ध घी की लापसी रुचती है? ध्यान रखिये, लापसी का जीमन क्षणिक है। मैं जो भोजन परोस रहा हूँ, वह स्थायी है। वह आपकी भूख को सदा के लिए शान्त करनेवाला है। वह ऐसी तृप्ति करनेवाला है कि फिर कभी भी सुख की वेदना ही न रहे। अतएव इस आध्यात्मिक भोजन में भी उतनी ही रुचि होती है।

गाँव में लापसी जीमने की तैयारी चल रही है। इधर इसी गाँव में एक सेठ बीमार था। लापसी का नाम सुनकर उसके वैद्यराज जी का इलाज चल रहा था। उसने वैद्य जी से पूछने का विचार किया कि गुड़ की लापसी खाने में कोई हर्ज तो नहीं है? संयोग से वैद्य जी उधर ही आ निकले। वे जरूरी काम होने से जल्दी में थे, तो भी सेठ ने उन्हें रोककर पूछ ही लिया कि मैं लापसी खा सकता हूँ क्या? वैद्यजी जल्दी में थे, अतः 'लापसी में जहर है' कहकर वे चले गये। सेठ ने सोचा लापसी में जहर है, खाऊँगा, तो मर जाऊँगा। परिवारवालों को क्योंकर भेजूँ? उसने परिवारवालों को कह दिया—चुपचाप घर में बैठ जाओ, जीमने मत जाओ, लापसी में जहर है। उन्होंने कहा—हम तो नहीं जायेंगे, परन्तु बहिन—बेटियाँ और सगे—सम्बन्धी जायेंगे, तो उनका क्या होगा? सेठ ने कहा— 'चुपचाप उनको भी सूचना कर दो। उनको सूचना दे दी गयी। उन्होंने अपना मिलने—जुलनेवालों और सगे—सम्बन्धियों को सूचना कर दी कि लापसी में जहर है, जीमने मत जाना'।

सारे गाँव में सनसनी फैल गयी। कोई जीमने नहीं

गया। सेठ ने सोचा कि क्या बात हो गयी है? लोग जीमने क्यों नहीं आ रहे हैं? उसने खास-खास लोगों को बुलावा भेजा। फिर भी कोई नहीं आया। सेठ को बड़ा विचार हुआ कि-मुझसे क्या अपराध हो गया है, जो लोग जीमने नहीं आ रहे हैं? उसने जाजम बिछाकर पंचों को बुलाया और उनसे पूछा कि बात क्या है, लोग जीमने क्यों नहीं आ रहे हैं? सब एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। उनमें से समझदार व्यक्ति ने कहा कि क्यों इन्हें तंग करते हो, जो बात हो, स्पष्ट क्यों नहीं कहते?

तब पंचों ने कहा-‘ज्ञात हुआ है कि बनी हुई लापसी में जहर डाल गया है।’

सेठ ने कहा-‘कैसा जहर? कौन कहता है कि लापसी में जहर है?’

पंचों ने कहा-‘हमने प्रामाणिक व्यक्तियों से सुना है।’

सेठ-‘यह बात आपने किसने सुनी? मैंने तो जहर डलवाया नहीं है। आप उसकी जाँच कीजिए।’

पंच-‘यदि तुमको पक्का विश्वास है कि इसमें जहर नहीं, तो पहले तुम जीम लो। फिर सब जीमने आ जायेंगे।’

सेठ ने सोचा कि मैंने तो लापसी में विष मिलाया नहीं है, परन्तु यदि किसी अन्य दुष्ट ने ऐसी हरकत कर दी हो, तो क्या मालूम? अतः वह पहले जीमने में आनाकानी करने लगा।

इससे पंचों को सन्देह हो गया कि अवश्य दाल में काला है। उन्होंने रसोइये को पूछा कि ‘क्या लापसी में जहर है?’

वह कहने लगा, ‘नहीं साहब! कौन कहता है कि लापसी में जहर है?’

उससे भी कहा गया कि ऐसा है, तो तुम पहले जीम लो। रसोइया सोचने लगा- संभव है, मैं इधर-उधर चला गया

होऊँ, तब किसी ने जहर मिला दिया होगा, तो मैं फिजूल ही मारा जाऊँ। अतः उसने भी पहले जीमने से इन्कार कर दिया।

पंचों का सन्देह बढ़ता गया। सेठ का मुँह उतर गया। उसने सोचा—गजब हो गया। सारा किया—कराया गुड़ गोबर हो गया। हजारों का खर्च बेकार हुआ। आखिर कुछ समझदार व्यक्तियों ने पूछताछ शुरू की कि यह बात कहाँ से उठी है? जिससे पूछा गया, वह कहने लगा कि मुझे तो अमुक व्यक्ति ने कहा। उसने पूछा गया, तो उसने दूसरे का नाम बताया। दूसरे ने तीसरे का नाम बताया। यों बात पहुँची, उस बीमार सेठ तक।

उस सेठ को बुलाकर पूछा गया कि क्या आपने कहा था कि लापसी में जहर है? उसने कहा— हाँ! कहा था।

‘तो क्या आपने जहर डालते हुए देखा था?’

‘नहीं! वैद्य जी ने कहा था कि लापसी में जहर है।’

उन्होंने सोचा कि सम्भव है, जहर की पुड़िया वैद्यजी के यहाँ से गयी हो। उन्हें बुलाकर पूछने से पता लग सकेगा। वैद्य जी से पूछा गया कि आपके यहाँ से जहर की पुड़िया गयी है क्या?

वैद्य जी ने कहा—‘मेरे यहाँ से तो जहर की पुड़िया नहीं गयी।’

‘तब आपने सेठजी को कैसे कहा कि लापसी में जहर है?’

वैद्य जी हँसने लगे। उन्होंने कहा—‘सेठजी मेरी दवाई ले रहे थे, उस दवाई पर गुड़ तेल, खटाई खाने की मनाही है। इसलिए जब सेठजी ने मुझे लापसी खाने को पूछा, तो मैंने कहा कि ‘आपके लिए लापसी जहर है।’ लापसी में गुड़ है, इसलिए

उनको खाने की मनाही की थी।

पंचों ने कहा कि वैद्य जी! आपको विश्वास है कि लापसी में जहर नहीं है, तो आप पहले जीम लीजिए। वैद्य जी ने सोचा कि मेरे यहाँ से विष की पुड़िया गयी नहीं है और न इस प्रकार की कोई संभावना ही है।

व्यर्थ ही बात चल पड़ी है और चर्चा बन गयी। इसलिए वैद्य जी पहले भोजन करने बैठे कि फिर तो पंगत सारी बैठ गयी और लापसी का भोजन शुरु हो गया।

बन्धुओं! ऐसी व्यर्थ की बातें नहीं करनी चाहिए। किस प्रसंग से कौनसी बात कही गयी है, उसका पहले निर्णय कर लेना चाहिए। व्यर्थ की बातें बनाकर दूसरों को कलेजे में तीर नहीं चुभाने चाहिए। जो लोग ऐसा करते हैं, उनके चिकने कर्मों का बंध होता है। सहज में उन कर्मों से छुटकारा नहीं हो सकता। अतएव उनको चाहिए कि इन पर्व के दिनों में सब इस प्रकार के आश्रवों से बचें।

vkJo dks jkfd,

भाइयों! आत्मा की स्वच्छता के लिए यह आवश्यक है कि पहले आश्रव के द्वारों को रोका जाये। मान लीजिये, एक स्वच्छ जल का कुंड है, लेकिन उसमें गटर की नाली का गन्दा पानी मिल रहा है। आप उसकी सफाई करना चाहते हैं, तो पहले उस गटर के पानी को रोकना होगा। जब तक गंदा पानी कुंड में आता रहेगा, तब तक कुंड की सफाई नहीं हो सकती। ऐसे ही जब तक पापों के आश्रव द्वारों को बन्द नहीं करेंगे, तब तक आत्मा को स्वच्छ करने का प्रयास करना निरर्थक होगा। यह आध्यात्मिक सप्ताह—यह पर्युषण पर्व आया है, इसमें आप पापों की नालियों को रोकिये। वैर—विरोध को भूल जाइये। सब जीवों

के साथ मैत्रीभाव रखिये। अन्तःकरण के विकारों को हटाइये। मन की मलिनता को धो डालिए। हृदय को साफ—सुथरे दर्पण के समान स्वच्छ बना लीजिये। ऐसा करने से आत्मा पर पड़ी हुई पाप कर्मों की शिलाएँ हट जायेंगी और आप एक अनूठा हलकापन महसूस करेंगे। आपकी आत्मा उज्ज्वल बनेगी और तब आपको अपूर्व आनन्द की अनुभूति हो सकेगी। आप अपने विवेक से संसार के पदार्थों की असारता को समझिये और आत्म—वैभव के दर्शन कीजिये। आप सांसारिक पदार्थों से मोह को हटाने का प्रयत्न करेंगे, तो ही आपको अखूट वैभव के दर्शन हो सकेंगे। इस सम्बन्ध में एक ऐतिहासिक प्रसंग प्रेरणादायक है। वह प्रसंग इस प्रकार है—

f}e{k egkkt dh fojfä

महाराजा जयवर्द्धन कम्पिलपुर में भव्य व्यवस्था के साथ राज्य कर रहे थे। उनके सात पुत्र और एक कन्या थी, जिसका नाम मदनमंजरी था। नाम के अनुसार ही उसने रूप पाया था। सात भाइयों के बीच एक बहन हो, तो उसके प्रति कितना आह्लाद भाव होता है। आज की स्वार्थमयी दुनिया में भले ही ऐसा न हो, परन्तु उस समय यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात मानी जाती थी। आज तो दस भाइयों के बीच एक बहन हो, वह भी भार—रूप प्रतीत होती है। यह दुःख का विषय है और स्वार्थ की पराकाष्ठा है। मदनमंजरी सात भाइयों के बीच बड़े आनन्द में रह रही थी।

एक दिन महाराज जयवर्द्धन राजसभा में बैठे हुए थे। उनका दूत देशाटन करके आया था। महाराजा ने उससे पूछा कि अन्य देशों में तुमने क्या सुना? क्या देखा? दूत ने कहा— महाराज! सर्वत्र आपकी प्रशंसा.....।

महाराज बोले— मैं अपनी तारीफ नहीं सुनना चाहता। मैं

यह जानना चाहता हूँ कि तुमने क्या अनोखी वस्तु देखी है।

दूत बोला— वत्स देश के राजा शतानीक ने अपने राज्य में बहुत—सी चित्रशालाएँ बना रखी हैं। वे बड़ी सुन्दर और रमणीय हैं, अपने राज्य में भी ऐसी सुन्दर चित्रशाला होनी चाहिए।

महाराजा ने आदेश दिया कि ऐसी चित्रशाला का निर्माण किया जाये, जो अद्भुत हो, जिसकी शानी की कोई दूसरी चित्रशाला न हो। अद्वितीय चित्रशाला के निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया गया। संयोगवश नींव खोदते समय एक ऐसा मुक्ता निकला, जो अद्वितीय और असाधारण था। उसको साफ करके जब महाराजा ने अपने हृदय पर धारण किया, तो उसमें महाराजा के दो मुख प्रतिबिम्बित हुए। इस घटना को लेकर जयवर्द्धन महाराज का नमा द्विमुख पड़ गया। उनकी देश—विदेश में ख्याति फैलने लगी।

उज्जयिनी के सम्राट चण्डप्रद्योतन को जब इस मुक्ता के विषय में मालुम हुआ, तो वह उसे पाने के लिए ललचा उठा। उसने द्विमुख महाराज के पास दूत भेजकर कहलाया कि मुक्ता आप चण्डप्रद्योतन राजा को दे दीजिये। महाराजा द्विमुख ने कहा कि “माँगने से कोई वस्तु नहीं मिला करती। उसकी कीमत चुकानी पड़ती है। यदि तुम्हारे राजा अपनी महारानी, रथ और हाथी मुझे दें, तो मैं यह मुक्ता उन्हें दे सकता हूँ।”

दूत मुँह बिगाड़ता हुआ चला गया। राजा चण्डप्रद्योतन को उसने सारी बात कही। राजा चण्डप्रद्योतन क्रोध के मारे आग उगलने लगा उसने बहुत बड़ी सेना लेकर द्विमुख महाराज पर आक्रमण कर दिया।

जयवर्द्धन राजा ने सोचा कि मुझे आक्रान्ता नहीं बनना है, किन्तु आक्रमण का मुकाबला कर आक्रान्ता को हटाना

है। उन्होंने अपनी सेना सजायी और चण्डप्रद्योतन को परास्त कर बंदी बना लिया।

राजा चण्डप्रद्योतन जेल में बंद था। उसको खाने-पीने की सारी सुविधाएँ दी जा रही थीं, परन्तु परतंत्रता का दुःख उसे बराबर पीड़ित कर रहा था। वह जेल में बैठा हुआ तिलमिला रहा था।

एक दिन राजा चण्डप्रद्योतन जहाँ बन्द था, उसकी ऊपरी मंजिल पर वह घूम रहा था कि उसकी दृष्टि अचानक राजमहल के झरोखे में बैठी हुई राजकन्या पर पड़ी। वह देखकर मोहित हो गया। उसके मन में संकल्प-विकल्प चलने लगे। हालांकि वह जेल में बन्द था, फिर भी वह उस राजकन्या के प्रति अति आसक्त बन गया। उसकी भूख मन्द पड़ गयी, प्यास जाती रही, शरीर सूखने लगा, मुख कुम्हलाने लगा। महाराजा जयवर्द्धन यदा-कदा उसे संभालने व देखने आया करते थे। एक दिन महाराजा जेल में पहुँचे और उन्होंने चण्डप्रद्योतन को व्यथित देखा।

उन्होंने चण्डप्रद्योतन से पूछा कि राजन! तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हो गयी है? क्या जेल में खान-पान की समुचित व्यवस्था नहीं है या कोई रोग उत्पन्न हो गया? क्या चिन्ता सता रही है आपको?

चण्डप्रद्योतन ने कहा- “क्या बताऊँ राजन! कह नहीं पा रहा हूँ और कहे बिना कोई दूसरा उपाय भी नहीं है। आपके राजभवन में कन्या को देखकर मेरा मन चंचल हो गया है।”

महाराजा जयवर्द्धन सोचने लगे कि राजा चण्डप्रद्योतन उज्जयिनी के नरेश हैं, शक्तिसम्पन्न हैं, लेकिन इनकी नीति ठीक नहीं है। भौतिक सुख-साधन-सामग्री की कोई कमी नहीं है। यह केवल अपने जीवन को ठीक-ठाक संभाल नहीं पाया है। यदि

यह अपनी दुर्नीति का परिमार्जन कर ले, तो राजकन्या का विवाह इनके साथ करने में कोई बाधा नहीं रहती।

उन्होंने चण्डप्रद्योतन से कहा—“राजन! यदि आप अपनी आक्रान्ता नीति छोड़ दें, यदि आप भविष्य में किसी पर आक्रमण न करने की प्रतिज्ञा करें, तो मैं राजकन्या का विवाह आपके साथ कर सकता हूँ।”

चण्डप्रद्योतन ने ऐसा प्रण किया। महाराज ने उसे जेल से मुक्तकर बड़ी उमंग के साथ मदनमंजरी का विवाह उसके साथ कर दिया। हथलेवा छुड़ाते समय उज्जयिनी का राज्य उसे लौटा दिया। उन्हें पुनः राज्याधिपति नरेश बना दिया।

महाराजा द्विमुख ने इस विवाह के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय स्तर पर इन्द्र महोत्सव मनाने का आयोजन किया। एक सप्ताह तक महोत्सव चलता रहा। इस अवसर पर एक इन्द्र-ध्वज बनाया गया। लकड़ियों के स्तंभों से उसे खूब सजाया गया था। अनके राजा-महाराजाओं को आमंत्रित किया गया था। बड़े टाट-बाट से राजकीय महोत्सव मनाया गया। महोत्सव की सानन्द समाप्ति हुई। सब अपने-अपने स्थान पर चले गये। इन्द्रध्वज की सजावट उतर चुकी थी। सजावट के काम आयी हुई लकड़ियाँ अब अस्त-व्यस्त इधर-उधर पड़ी हुई थीं।

एक दिन महाराजा द्विमुख उधर से होकर घूमने निकले। उन्होंने वे लकड़ियाँ अस्त-व्यस्त अवस्था में देखीं। उन्होंने मंत्री से पूछा। मंत्री ने कहा— ‘स्वामी! महोत्सव के समय जो इन्द्रध्वज बनाया गया था, उसकी सजावट में इनका प्रयोग किया गया था।’ महाराजा को विचार आया—‘अहो! ये लकड़ियाँ उस दिन कितनी रमणीय और सुन्दर प्रतीत हो रही थीं और आज ये कैसी कितनी विकृत लग रही हैं। अहो! मेरे जीवन की दशा भी इस प्रकार परिवर्तित हो सकती है। मैं अभी वस्त्राभूषण से अलंकृत

होकर सुन्दर लग रहा हूँ परन्तु कभी मेरी दशा में भी परिवर्तन आ सकता है। अतएव मुझे अभी से सावधान हो जाना चाहिए और ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि मेरा सौन्दर्य शाश्वत रहे। शारीरिक सौन्दर्य परिवर्तनशील और क्षणभंगुर है। मुझे आत्मिक सौन्दर्य को प्राप्त करना है, जो शाश्वत है।'

ऐसा विचार कर महाराजा द्विमुख राज्य को छोड़कर विरक्त बन गये। वे आत्मसाधना के मार्ग पर चल पड़े। उन्होंने अपनी आत्मा को स्वाभाविक सद्गुणों से सजाया। उन्होंने शाश्वत सौन्दर्य को पा लिया। वे कर्मों के बन्धनों से मुक्त हो गये।

द्विमुख महाराज की विरक्ति हमारे सामने आदर्श के रूप में उपस्थित है। उससे हमें प्रेरणा लेनी चाहिए और अपनी आत्मा को भी शाश्वत सौन्दर्य से समलंकृत करना चाहिए।

rhu izkj dh efD[k; k

आप जानते हैं कि संसार में मक्खियों के कई प्रकार हैं, किन्तु मुख्यतया तीन प्रकार की मक्खियाँ पायी जाती हैं।

1. श्लेष्म मक्खी, 2. शहद मक्खी व 3. मिश्री मक्खी।

एक मक्खी का स्वभाव होता है कि वह नासिका के श्लेष्म पर ही बैठती है। उस श्लेष्म में न तो मिठास होता है और न सुगंध ही, तदपि वह मक्खी बार-बार उड़ाने पर भी मैल पर ही बैठती है। उसमें फँसकर वह तड़फ-तड़फकर मर जाती है, परन्तु उस श्लेष्म पर बैठना वह नहीं छोड़ती।

दूसरी मक्खी स्वभावतः शहद पर बैठती है। वह शहद के मिठास पर ललचाती है और उस पर बैठती है। शहद का मिठास लेते-लेते वह मक्खी उसमें फँस जाती है और अपने प्राणों को गवाँ बैठती है। इन दोनों प्रकार की मक्खियों में स्वतंत्र रूप से उड़ने की शक्ति होती है, परन्तु आसक्ति के कारण ये

उसमें लिप्त होकर अपनी जिन्दगी बरबाद कर देती हैं।

एक तीसरे प्रकार की मक्खी होती है, जो मिश्री की डली पर बैठती है। वह उस डली पर बैठकर मिठास का आस्वादन करती है, लेकिन जरा सी आहट या ठेस लगते ही मिश्री का मोह छोड़कर आकाश में उड़ जाती है।

इन तीनों प्रकार की मक्खियों में से कौन-सी मक्खी आपकी सृष्टि में उत्तम है? जो मिठास लेकर उड़ जाती है, वह उत्तम है या मैल/शहद में फँसकर मर जाये, वह अच्छी है? आप सहज ही कह देंगे कि मिठास लेकर उड़ जानेवाली मक्खी अच्छी है।

बन्धुओं! मक्खियों के इस रूप को मानवों पर घटित कर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। अधिकांशतः मानव श्लेष्म की मक्खी की तरह संसार के विषय-कषायों में फँसकर अपने जीवन को बर्बाद कर रहे हैं। वे भिखमंगों की तरह इधर-उधर भटकते रहेंगे, किन्तु त्याग-मार्ग की ओर लगने की भावना उनमें जागृत नहीं होती। वे संसार के दुखों में फँसकर अपने जीवन को नष्ट कर डालते हैं।

संसार के नाटक बड़े विचित्र है। हमें तरह-तरह के सांसारिक दुखों के किस्से सुनने को मिलते हैं। प्राणियों के सांसारिक दुखड़े जब सुनते हैं, तो उनकी दयनीय दशा पर हमें तरस आता है। फिर भी वे लोग संसार के मायाजाल में फँसे रहते हैं। उनमें इतना सामर्थ्य नहीं जागता कि वे मायाजाल को छोड़कर निवृत्ति के मार्ग पर आ जायें। कोई विरले ही व्यक्ति त्यागमार्ग के पथिक बनते हैं।

कई चक्रवर्ती सम्राट और धन वैभव से सम्पन्न व्यक्ति शहद की मक्खी की तरह सांसारिक पदार्थों का आनन्द लेते हुए उनमें फँसकर आसक्त होकर मृत्यु को प्राप्त करते हैं। वे अन्त

समय में हाय-हाय करते रहे, लेकिन विषयों के कीचड़ से ऊपर न आ सके।

मिश्री की मक्खी की तरह थे— धत्रा और शालिभद्र। इनकी ऋद्धि-समृद्धि का कोई पार नहीं था, तदपि समय आते ही ये आत्म-साधना के लिए निकल पड़े। वर्तमान में भी उनके संत-सतीजी ऐसे हैं, जो सांसारिक मायाजाल को छोड़कर संयम-मार्ग की निर्मल आराधना कर रहे हैं। आप भी मिश्री की डली पर बैठनेवाली मक्खी से प्रेरणा लें और संसार के मायाजाल में आसक्त न होते हुए आत्मा-साधना के पथ पर अग्रसर बनें।

पर्युषण पर्व के प्रसंग से आपको आत्म-साधना का सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है। मैं देशनोक की जनता को सम्बोधित कर कहना चाहता हूँ कि पर्युषण की त्रिवेणी में अवगाहन कर अपनी आत्मा के मैल को धो डालिए। किसी भी जाति, पंथ, मजहब या व्यवसाय का भेद यहाँ नहीं है। गंगा सबके लिए पवित्र है। इसी तरह पर्युषण पर्व केवल जैनों के लिए ही नहीं है, सभी प्राणियों के लिए है। सब प्राणी इसकी आराधना करके आत्मकल्याण के अधिकारी हो सकते हैं। इन आठ दिनों में आप सप्त व्यसनों का त्याग करें, झूठ, छल-कपट फरेब से बचिये, किसी प्राणी के मन को न दुखायें। यदि कभी ऐसा प्रसंग आ जाये, तो उससे तत्काल क्षमा याचना कीजिए। आप इस प्रकार अपने जीवन को शुद्ध स्वच्छ बनाने का प्रयास करेंगे, तो आपको अलौकिक आनन्द की अनुभूति हो सकेगी और देशनोक ग्राम धन्य हो जायेगा।

यह देशनोक ग्राम देश की नाक है। इसके अनुरूप ही यहाँ धर्माराधना हो रही है और होती रहेगी, ऐसी आशा है। आप अपने जीवन को इस पावन प्रसंग से निर्मल बनाने की दिशा में प्रयत्नशील बनें। यही मेरी भावना है।

Lo; a d k n k; Ro

मेरा काम उपदेश देना है, मार्ग बताना है, परन्तु उस पर चलना तो आपका स्वयं का काम है। यह आपका दायित्व है कि अपना उद्धार स्वयमेव करें।

एक व्यक्ति कमरा बंदकर रजाई ओढ़े सो रहा है। वह आँखों पर पट्टी बांध लेता है और फिर चिल्लता है। कि इस कपड़े ने मेरी आँखें बांध दी है, रजाई ने मुझे ढक लिया है, कोई आकर मुझे बचाओ। अन्दर से सांकल लगी हुई है। दूसरा व्यक्ति अन्दर नहीं जा सकता। बाहर से कोई व्यक्ति उसे सुझाव देता है कि अरे भाई! तुमने अन्दर से सांकल लगा रखी है, रजाई तुमने ओढ़ रखी है, आँखों पर पट्टी तुमने बांध रखी है। अपने हाथों से ही पट्टी ढीली कर लो, रजाई फेंक दो, अन्दर की सांकल खोल दो, बाहर की हवा लो, स्वयमेव तुम मुक्त हो जाओगे। वह कहता है कि मैं तो यह सब नहीं कर सकता, आप ही मेरी मदद कीजिये। ऐसे व्यक्ति के विषय में आप क्या सोचेंगे? यही न कि वह मूर्ख है। ठीक इसी तरह अपने-अपने कर्मों के आवरण को हम स्वयमेव हटाने में समर्थ हैं, दूसरा कोई नहीं। दूसरा व्यक्ति केवल निमित्त बन सकता है। मूल काम तो हमें स्वयं को ही करना है। जिसने कर्म बांधे हैं, वहीं उन्हें तोड़ने की भी क्षमता रखता है। आप अनन्त शक्तिशाली हैं, आप में अनन्त पौरुष है। आवश्यकता है केवल उसे प्रकट करने की। अतएव अपना उद्धार अपने ही हाथों में हैं।

m) jnkReukRekueA

—गीता

अपने उद्धार का दायित्व हमारा ही है, अन्य किसी का नहीं।

mi l gkj

आत्मतत्त्व के अन्दर झाँककर देखिये। वहाँ आपको अनन्त सुख का महासागर लहराता हुआ दिखायी देगा। आत्मा के अन्दर गहराई में जाइये। वहाँ आपको शाश्वत सौन्दर्य के दर्शन होंगे, वहाँ आपको ज्ञान—दर्शन—सुख और शक्ति का अक्षय कोष प्राप्त होगा। आप जरा बाहर से हटकर अन्दर देखना सीखो। बाह्य दृष्टि हटते ही आपको उस विराट स्वरूप के दर्शन होंगे, जो अपने आप में अनूठा है। प्रार्थना की कड़ियों में भी यही संकेत किया गया है :—

Jh ftujkt l qk'oz ijk vk'k gekjh

सुपार्श्वनाथ प्रभु से भक्त यही कामना करता है कि प्रभो! मेरी आशा को पूर्ण करो। भक्त की आशा होती है? बाह्य पौद्गलिक पदार्थों की आशा करनेवाला भक्त नहीं है। वह तो सौदागर है। भक्त तो सर्वस्व समर्पण करता है। वह केवल यही कामना करता है कि हे प्रभो! तुमसे जो मेरी दूरी है, वह दूर हो! मैं और तुम एकाकार हो जायें! यही सच्चे भक्त की आशा होती है।

आप भी सांसारिक पदार्थों से ममता हटाकर आत्मा को देखें, उसकी अनन्त शक्तियों को पहचानें और प्रबल पुरुषार्थ द्वारा उस मंगलमय स्वरूप को प्राप्त करने का प्रयास करें। आत्मा के शाश्वत सौन्दर्य का आनन्द लें। यही पर्युषण पर्व का प्रेरक संदेश है।

देशनोक

2.6.75

vUrnĦ"V dk mn?kVU

oHkrd foKku I I he g\$ viwkZ g\$ vk/; kRed
foKku vI he g\$ iwKZ gA

ol a eh thou I k/kuk dh mRNĦ"V voLFkk gA

ol E; xnĦ"V vKek I d kj eaJgdj Hk I d kj I s
vfylr jgrh gA

ol k/k r I ekt ds I Pps ekxh'kZl gA

ovKek dks I okPp fLFkr ea igpkus ds fy,
vUrnĦ"V dk mn?kVU djuk pkfg, A

t; t; txrf'kjkef.kj gyl d us rw /k.khA

vc rkd wxk<h c.kh iHkqv'kk ijksge r.khAA

ea ij esj djksplni Hkq txthou varj; kehA

Hk nqk gk I q.k; svjt gekjh gksf=Hou LokhAA

यह चन्द्रप्रभु परमात्मा की प्रार्थना है, जिनकी चन्द्र की
ज्योत्स्ना के समान उज्ज्वल यशोराशि अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त

है, इस विशाल ब्रह्माण्ड से परे जिसने अनन्त आकाश को छुआ है, ऐसे परमात्मा को कवि ने जगत शिरोमणि के नाम से सम्बोधित किया है। जगत के सिर पर अर्थात् लोक के अग्रभाग पर स्थित सिद्ध क्षेत्र की मणि के रूप में परमात्मा का स्मरण किया गया है। वह परमात्मा लोक के सर्वोच्च स्थान पर विराजमान है। अतएव जगत शिरोमणि है। इतना ही नहीं, उन परमात्मा ने आत्मा की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त कर लिया है, इसलिए वे जगत शिरोमणि हैं, जगत के नाथ हैं। उन परमात्मा के सर्वोत्कृष्ट निर्मल केवलज्ञान रूपी दर्पण के समग्र चराचर विश्व सम्पूर्ण सूक्ष्म—बादर पदार्थ प्रतिबिम्बित होते हैं। उनकी ज्ञान—रश्मियाँ सारे लोकालोक में व्याप्त होती हैं। उसमें सम्पूर्ण जगत—समाविष्ट हो जाता है। परमात्मा का स्वरूप विराट है। उस विराट स्वरूप का चिन्तन सर्व साधारण व्यक्ति नहीं कर पाता। अतएव साधक भक्त अपनी क्षमता के अनुसार अपनी अल्पबुद्धि के अनुसार परमात्मा के अलग—अलग गुणों को लेकर अलग—अलग रूप में अपनी भावना व्यक्त करता है।

I I he vIḡ vI he

मनुष्य का मस्तिक सीमित है, सोचने की क्षमता अधूरी है और वह भी अनुभूतिपूर्वक प्राप्त की हुई नहीं है। अपूर्ण और सीमित शक्तिवाला मानव परिपूर्ण, असीम और अनुभवगम्य परमात्मा का चिन्तन भली—भांति नहीं कर पाता। मानव ससीम है, परमात्मा असीम है। मानव अपूर्ण है, परमात्मा पूर्ण है। मानव बिन्दु है, परमात्मा सिन्धु है। मानव देश काल की मर्यादाओं में आबद्ध है, परमात्मा सर्वतंत्र स्वतंत्र है। मानव क्षुद्र है, परमात्मा विराट है। मानव स्थूल दृष्टिवाला है, परमात्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभव—गम्य है। ऐसी स्थिति में परमात्मा का यथावत निरूपण करना मानव की शक्ति से परे है। इसीलिए आचारांग सूत्र में कहा गया है :—

¶ 0os l jk fu; éflur*-----

¶Ddk rRFk u foTtb*-----

&vkpkjka l #

शब्दों में यह सामर्थ्य नहीं कि वे परमात्मा के सम्पूर्ण स्वरूप को व्यक्त कर सकें। वहाँ शब्दों की गति नहीं है। सब स्वर शांत हो जाते हैं। तर्क की वहाँ पहुँच नहीं है। छदम्स्थ की बुद्धि उसे यथार्थ रूप में ग्रहण नहीं कर सकती। विकल्पों का यह विषय नहीं। इसी बात को वैदिक ग्रन्थों में भी प्रतिपादित किया जाता है :-

ufr ufr l c on iokjā

परमात्मा का स्वरूप 'ऐसा नहीं है', 'ऐसा नहीं है', इस रूप में ही व्यक्त किया जा सकता है। 'वह कैसा है', यह विषय शब्दों और विकल्पों की परिधि से बाहर है। वह केवल अनुभवगम्य है। गूंगा व्यक्ति गुड़ के स्वाद का अनुभव कर सकता है, परन्तु उस स्वाद के स्वरूप का कथन नहीं हो सकता है। यही बात परमात्मा के यथावत् स्वरूप के निरूपण के सम्बन्ध में समझनी चाहिए।

vUrrja nf"V dh vko'; drk

स्थूल दृष्टि से स्थूल पदार्थों को देखा जा सकता है। जो पदार्थ सूक्ष्म हैं, अतीन्द्रिय हैं तथा क्षेत्र एवं काल से अन्तरित (व्यवहृत) हैं, उन्हें हमारी स्थूल दृष्टि नहीं जान पाती। चमड़े की आँखें उन्हें नहीं देख पाती। उन्हें देखने के लिए अन्तरंग दृष्टि की आवश्यकता रहती है। स्थूल नेत्र स्थूल चीजों का साक्षात्कार कर सकते हैं, वे इन्द्रियातीत तत्वों को जानने में असमर्थ हैं। जगत शिरोमणि परमात्मा अतीन्द्रिय हैं, अतएव उसे जानने के लिए अन्तरंग दृष्टि की अपेक्षा होती है। जिस आत्मा के अन्तःकरण

में सम्यक्त्व भाव का उदय हुआ है, समभाव के धरातल पर जिसका चिन्तन चल रहा है, शुभ-अशुभ का विवेक जहाँ जागृत हो चुका है, उसको अन्तरंग दृष्टि प्राप्त हो जाती है, उसके हृदय के नेत्र खुल जाते हैं। उसको आभ्यन्तर दिव्य नेत्रों की उपलब्धि हो जाती है। इस आभ्यन्तर दिव्य दृष्टि से वह परमात्मा को, जगत को और स्वयं के चरम एवं परम लक्ष्य को देखने का प्रयत्न करता है और क्रमशः उसी दिशा में आगे बढ़ता हुआ अपने लक्ष्य को प्राप्त भी कर लेता है।

I enī'V dsu&us-

स्थूल शरीर में साधारणतया दो ही नेत्र होते हैं, लेकिन जब अन्तर-आत्मा में समभाव की जागृति होती है, तो उसे आन्तरिक नौ नेत्रों की उपलब्धि हो जाती है। इन आन्तरिक नेत्रों के खुल जाने से वह जगत के पदार्थों को यथार्थ रूप में जानने लग जाता है।

1- vMky fo'okl

जब सम्यग्दृष्टि आत्मा समभाव के साथ जगत शिरोमणि परमात्मा की परम उत्कृष्टता का अनुभव करने लगता है, तब उसका लक्ष्य स्थिर बनता है। वह अपनी आत्मा को सर्वोच्च स्थिति पर पहुँचाने की अभिलाषा करता है। वह मुमुक्षु बनता है। वह स्वयं जगत-शिरोमणि बनने के लिए स्पृहालु होता है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप और मोक्ष के प्रति उसे अडोल विश्वास होता है। वह अपने अन्तरंग नेत्र द्वारा आत्मा के विराट स्वरूप को देखता है। इस प्रकार का अडोल विश्वास हो जाना ही प्रथम आन्तरिक नेत्र का खुल जाना है।

2- mRñ'V J)ku

आत्म-स्वरूप के प्रति दृढ विश्वास हो जाने के पश्चात

आत्मा की विचारधारा उत्तरोत्तर आगे बढ़ती रहती है। इस अवस्था में आने पर वह विश्व के समस्त प्राणियों के साथ आत्मीय भाव स्थापित करता है। वह समझने लगता है कि जैसी मेरी आत्मा है, वैसी ही अन्य प्राणियों की भी है। विकास की दृष्टि से चाहे कोई आत्मा छोटे रूप में हो अथवा बड़े रूप में, परन्तु मूलतः सब आत्माएँ समान हैं। जैसे मुझे सुख इष्ट है, दुःख अनिष्ट है, उसी तरह अन्य आत्मा को भी सुख प्रिय है और दुःख अप्रिय है। ऐसा समझकर वह सब जीवों को 'अप्पा सो परम्प्पा' के रूप में देखता है। वह स्वयं अभय बनकर दूसरे जीवों को अभय प्रदान करता है। वह मानता है कि मेरा वह दिन धन्य होगा, जब मैं सब जीवों को अभय देनेवाले मार्ग पर चल पड़ूँगा। इस प्रकार की उत्कृष्ट भावना होना, द्वितीय आन्तरिक नेत्र का खुल जाना है।

3- I a eh thou ds ifr tkxfr

सब आत्माओं के साथ आत्मीय भाव स्थापित करने की भावना के पश्चात स्वभावतः संयमी जीवन के प्रति रुचि जागृत होती है। वह मानने लगता है कि संयमी जीवन ही साधना की उत्कृष्ट अवस्था है। सर्वज्ञ—सर्वदर्शी परमात्मा ने संयमी जीवन के लिए जो नियमोपनियम निर्धारित किये हैं, उनका वह सम्यग्ज्ञान करता है, उनको हितावह मानता है और उनके प्रति सावधानी और जागृति बरतता है। ऐसी स्थिति में उस सम्यग्दृष्टि आत्मा का तृतीय आन्तरिक नेत्र खुल जाता है।

4- ulfreÜkk

आध्यात्मिक विकास के भवन का निर्माण नीति की नींव पर हुआ करता है। यदि जीवन में नैतिकता नहीं है, तो वहाँ आध्यात्मिकता आ ही नहीं सकती। नीति—सहित आध्यात्मिकता ढोंग—मात्र है। नैतिकता आध्यात्मिक जीवन की बुनियाद है।

सम्यग्दृष्टि आत्मा नीतिमय हो और समाज के सर्वत्र नीतिमय वातावरण हो। वह स्व-जीवन और जन-जीवन में नैतिकता का भव्य रूप देखना चाहता है। जनता में यदि नैतिकता है, यदि वह एक-दूसरे से सहयोग कर ईमानदारी से चल रही है, तो सारा वातावरण शांतिमय होगा और ऐसे शान्त वातावरण में समुचित रूप से आध्यात्मिक साधना संभव हो सकती है। अतएव सम्यग्दृष्टि साधक नैतिकता को आत्म विकास का अंग मानकर चलता है। यह नीतिमय दृष्टि सम्यग्दृष्टि के चतुर्थ आन्तरिक नेत्र को विकसित करती है।

5- uŕdrk dk n<+v!xg

विश्व में मानवता के मनोहर अंकुर को पल्लवित और पुष्पित करनेवाली सामग्री नैतिकता ही है। सम्यग्दृष्टि आत्मा स्वयं के और जनता के जीवन में नैतिक नियमों को साकार रूप में देखना चाहता है। उन नियमों में यदि किसी से स्खलना या त्रुटि होती है, वह उसे असह्य होती है। वह नैतिकता का दृढ़ आग्रही होता है। वह सूक्ष्मता से स्खलना का अध्ययन करता है और उसके परिमार्जन की क्षमता भी रखता है। इस प्रकार की भावना का होना पंचम नेत्र का खुलना है।

6- uŕrd thou ds | j{k d h v!o' ; drk

संसार में विविध प्रकृति के व्यक्ति हुआ करते हैं। सबकी मानसिक और नैतिक स्थिति एकसी नहीं हुआ करती। कोई व्यक्ति प्रकृतितः सात्विक और सद्गुणी होता है, तो कोई व्यक्ति आपराधिक वृत्ति का होता है। समाज की व्यवस्था का संचालन करने हेतु यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति समाज द्वारा स्वीकृत मर्यादाओं के अन्तर्गत चले। यदि कोई व्यक्ति इस मर्यादा का अतिक्रमण करता है, तो उसको अनुशासित करने के लिए तथा समाज में सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए किसी नायक की, नेता की,

राजा की या अन्य किसी विशिष्ट व्यक्ति की आवश्यकता होती है। समाज में नैतिक मूल्यों का निष्ठापूर्वक पालन हो, समाज में सुव्यवस्था बनी रहे और सब लोग शान्ति के साथ अपने-अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करते रहें— ऐसी सुन्दर राज्य-व्यवस्था की आवश्यकता को सम्यग्दृष्टि आत्मा अनुभव करता है। नीति के विस्तार की इस भावना के कारण उसका छठा आन्तरिक नेत्र उद्घाटित हो जाता है।

सम्यग्दृष्टि आत्मा समाज की सुव्यवस्था के लिए सुयोग्य नेतृत्व की आवश्यकता को महसूस करता है, परन्तु साथ ही वह नेता को कसौटी पर भी कसता है। उसके जीवन में जनता के प्रति आत्मीय भावना है या नहीं, जनमानस को समझकर चलने की क्षमता उसमें है या नहीं, जनकल्याण के लिए उसके जीवन का सिद्धान्तों के साथ तालमेल है या नहीं, यह सब सम्यग्दृष्टि आत्मा सूक्ष्मता के साथ अवलोकन करता है। ऐसी क्षमता आ जाने पर उसका सप्तम आन्तरिक नेत्र खुल जाता है।

8- vkRe&fujh{k.k

सम्यग्दृष्टि आत्मा बाह्य-जगत का ही निरीक्षण-परीक्षण नहीं करता, अपितु वह आत्मा का निरीक्षण-परीक्षण करता है। वह अपने में रहे हुए दोषों को देखता है, उनका परिमार्जन करने का प्रयत्न करता है। यह आत्म-परीक्षण उसके संशोधन के मार्ग को प्रशस्त बनाता है। जो व्यक्ति अपने दोषों का दर्शन नहीं करता, वह उनका परिष्कार कैसे कर सकेगा? सम्यग्दृष्टि आत्मा आत्म-निरीक्षण और परीक्षण करता है। यह आत्म-निरीक्षण की दृष्टि ही अष्टम आन्तरिक नेत्र है।

9- vfylrrk

सम्यग्दृष्टि आत्मा की यह विचारधारा रहती है कि जब

तक मैं साधना के पथ पर/संयम के मार्ग पर अग्रसर न हो सकूँ, वहाँ तक जगत—व्यवहार की विविध प्रवृत्तियों को करता हुआ भी मैं उनसे अलिप्त रहूँ। कौटुम्बिक दृष्टि से विविध कर्तव्यों का निर्वाह करना आवश्यक होता है, परन्तु उनको करता हुआ भी मैं उनमें लिप्त और आसक्त न होऊँ। सम्यग्दृष्टि की इस विचारधारा को निम्न दोहे में ठीक ढंग से व्यक्त किया गया है :-

**वृक्ष इ; खनं वृक्षं दृष्ट्वा दृष्ट्वा
वृक्षं उ; कृष्णं जगत्; त; /क; फलक्योक्त्युक्त्या**

इस प्रकार की अलिप्त भावना का विकास होने पर उसके नौवें आन्तरिक नेत्र का प्रकटीकरण होगा।

सम्यग्दृष्टि आत्मा को जब ये आन्तरिक नेत्र प्राप्त हो जाते हैं, तो वह अन्तरंग दृष्टि से परमात्मा के स्वरूप को भलीभांति हृदयंगम कर लेता है और क्रमशः संयम मार्ग की साधना करता हुआ स्वयं जगत—शिरोमणि बन जाता है।

। ७; &। ७८ द्क ह्क

प्रार्थना में कहा गया है कि—

^t; t; txr f'kjkef.k] gpl ७८ usrw/k.khA*

हे जगत शिरोमणि! मैं सेवक हूँ और तू स्वामी है। यह सेवक—स्वामी का भेद साधना की अवस्था को लेकर है। जब साधना सफल हो जाती है, तो यह भेद मिट जाता है और साधक स्वयं स्वामी और जगत शिरोमणि बन जाता है।

यह सेव्य और सेवक का भेद मिटाने के लिए पर्युषण पर्व के दिन आये हैं। आज पर्युषण पर्व का द्वितीय दिवस है। इन दिनों में आप अन्तगड़ सूत्र के माध्यम से ऐसे महापुरुषों का जीवन—चरित्र श्रवण कर रहे हैं, जिन्होंने साधना करके इस

सेव्य—सेवक के भेद को मिटा दिया है और जो जगत—शिरोमणि बनकर लोक के सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित हो गये हैं।

vUrxM+ dk i q% i q% okpu D; kA

पर्युषण पर्व के आठ दिनों में अन्तगड़ सूत्र के वाचन की परिपाटी सुदीर्घ काल से चली आ रही है। इसका मूल उद्देश्य यह है कि इस सूत्र में ऐसे महापुरुषों और महा—महिलाओं का जीवन—वृत्त दिया गया है, जिन्होंने कर्म के बन्धनों को तोड़कर भव का अन्त किया है, जन्म—मरण का अन्त किया है और दुःख का अन्त किया है। हमारा भी यही उद्देश्य और लक्ष्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में इस सूत्र को पढ़ने—सुनने की परिपाटी चली आ रही है।

कहा जा सकता है कि अन्तगड़ तो प्रतिवर्ष सुनते चले आ रहे हैं, अब कोई नवीन विषय सुनाया जाये। एक ही बात सुनते—सुनते दिल उकता जाता है। नवीन के प्रति रुचि जागृत रहती है। यह बात ठीक है कि नवीनता के प्रति आकर्षण और जिज्ञासा होती है, परन्तु आप यह भी समझते हैं कि जब तक पूर्व का पाठ याद नहीं होता, तब तक आगे का पाठ नहीं दिया जाता है। अध्यापक पहले 'अ' अक्षर सिखलाता है। तब उसका कितनी बार उच्चारण करवाता है? बार—बार उच्चारण करने पर जब 'अ' अक्षर पूरी तरह मस्तिष्क में बैठ जाता है, तब आगे का अक्षर सिखाता है। वैसे ही इन आध्यात्मिक कक्षाओं के छात्र अन्तगड़ सूत्र की कथाओं को याद करने की दृष्टि से नहीं, अपितु जीवन में उतारने की दृष्टि से याद कर लें, तो आगे का पाठ सुन्दर रीति से समझाया जा सकता है। लेकिन जब तक अन्तगड़ के अन्तर्गत आये हुए कथानकों के साथ जीवन का सम्बन्ध नहीं जुड़ जाता है, तब तक बार—बार स्मृति कराने की दृष्टि से अन्तगड़ का पठन और श्रवण कराया जाता है।

vkpj.k gh l E; d-iBu gS

महाभारत में कौरव और पाण्डवों का एक प्रसंग वर्णित है। वे विद्याध्ययन कर रहे थे। गुरुजी ने सभी विद्यार्थियों को याद करने के लिए एक पाठ दिया—‘क्षमों कुरु’। साथ ही यह भी कहा कि इस पाठ को जो जल्दी याद करके लायेगा, उसे आगे का पाठ दिया जायेगा। दुर्योधन आदि छात्र बड़े प्रसन्न हुए कि अहो! इसमें क्या है? अभी सुना देते हैं। दो ही शब्द याद करने हैं। वे सब जल्दी—जल्दी पाठ सुनाने के लिए आतुर हो रहे थे और उन्होंने एक के बाद एक ‘क्षमों कुरु’ बोलकर गुरुदेव को पाठ सुना भी दिया।

धर्मराज युधिष्ठिर चुपचाप बैठे हुए थे। वे ‘क्षमों कुरु’ पाठ सुनाने की आतुरता प्रकट नहीं कर रहे थे।

अध्यापक ने पूछा—‘‘धर्मराज! क्या बात है? पाठ याद हुआ?’’

युधिष्ठिर ने कहा—‘‘गुरुदेव! अभी याद नहीं हुआ’’। शिक्षक ने थोड़ी देर बाद पुनः पूछा—‘‘युधिष्ठिर! पाठ याद हुआ?’’

‘‘अभी याद नहीं हुआ, गुरुदेव!’’

गुरुजी ने कहा—‘‘तुम बड़े राजकुमार हो। तुम्हारी बुद्धि कितनी मंद है कि छोटे—छोटे दो शब्द भी अब तक याद न कर पाये।’’

धर्मराज ने विनय से कहा—‘‘गुरुदेव! याद करने का प्रयास कर रहा हूँ। थोड़ा—थोड़ा याद हुआ है।’’

यह सुनकर गुरुजी को क्रोध आ गया और उन्होंने धर्मराज युधिष्ठिर के गाल पर चांटा लगा दिया। गाल लाल हो गया। धर्मराज मुस्कराने लगे।

गुरुजी को अचरज हुआ! वे बोले—“तू कैसा अजीब छात्र है! चांटा खाकर भी हँसता है, बड़ा ढीठ है।”

“गुरुदेव! पाठ याद कर रहा हूँ।”

फिर वही बता! दुबारा गुरुजी ने चांटा कस दिया।

“क्या अब भी याद नहीं हुआ?”

“याद हो रहा है, गुरुदेव!”

अध्यापक हैरान हो गये। उन्होंने पूछा—“कहाँ याद कर रहा है?”

“गुरुदेव! परीक्षा दे रहा हूँ। आपने कहा था—‘क्षमा कुरु’ अर्थात् क्षमा करो। क्षमा कब की जाती है? अनुकूल स्थितियों में क्षमा करने का प्रसंग नहीं आता। जब प्रतिकूल परिस्थितियाँ सामने आती हैं, तब क्षमा की कसौटी होती है। जब आपने तमाचा लगाया, तब क्षमा का पाठ थोड़ा याद हुआ। ‘क्षमा करो’ शब्द रट लेना कोई अर्थ नहीं रखता। क्षमा को जब जीवन में उतारा जाये, तो मैं समझता हूँ कि क्षमा का पाठ याद हुआ। मैं बड़ा राजकुमार हूँ। मैं आपको कह सकता था कि आप कौन होते हैं, मुझे चांटा लगानेवाले? लेकिन इस स्थिति में मैंने क्षमा को जीवन में उतारने का प्रयत्न किया। चांटा लगने पर भी क्रोध नहीं आया। मैं क्षमा की कसौटी पर उत्तीर्ण रहा। अब मैं कह सकता हूँ कि ‘क्षमाँ कुरु’—यह पाठ मुझे याद हो गया।”

यह सुनकर गुरुजी दंग रह गये। उन्हें अपने आप पर प्रतिक्रिया हुआ और उन्होंने युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए कहा कि सचमुच पाठ को आचरण में लाना ही वास्तविक पढ़ना है। तुम्हारे जैसे छात्र अति विरल हैं।

युधिष्ठिर ने जिस प्रकार ‘क्षमा कुरु’ पाठ याद किया,

उस तरह से अन्तगड सूत्र को याद करने की आपकी तैयारी हो रही है क्या? अन्तगड में जिन-जिन महापुरुषों का वर्णन आया है, क्या आपने उनका अन्तरंग दृष्टि से अवलोकन किया है? उन महापुरुषों की अन्तरंग दृष्टि खुली हुई थी। उनके चरित्र को सम्यग् रूप से समझने के लिए हमारी और आपकी अन्तरंग दृष्टि खुली होनी चाहिए।

jakadh fMfc; k esfp=

रंगों की डिबियों में विविध रंग होते हैं और उनके माध्यम से चित्रकार विविध चित्रों का निर्माण करता है। इस अपेक्षा से कहा जाता है कि रंगों की डिबिया में क्या-क्या नहीं है? उसमें हाथी है, घोड़ा है, रथ है, पैदल है, दुनिया-भर के चित्र उसमें परोक्ष रूप से रहे हुए हैं, लेकिन चित्रकार जब तक तूलिका द्वारा चित्र बनाकर नहीं बताता, तब तक रंगों का महत्व समझ में नहीं आता। वैसे ही शास्त्रीय शब्दों में बहुत ही गूढ़ रहस्य रहे हुए हैं। उनको समझने और समझाने के लिए कुशल चित्रकार की तरह अन्तरंग दृष्टि और अंतरंग कला की आवश्यकता है।

nodh dh [kyh gpl vUrnT"V

अन्तगड सूत्र के संदर्भ में छह सहोदर भाइयों का वर्णन आया है। ये सहोदर भाई कौन हैं? देवकी के अंगजात। लेकिन महारानी देवकी को इसका पता नहीं था। जब उसको यह ज्ञात हुआ, तो वह कितनी प्रसन्न हुई! देवकी सम्यग्दृष्टि आत्मा थी। उसके अन्दर समभाव की जागृति हुई थी। वह अन्तरंग नौ नेत्रों से युक्त थी।

जब वे छह सहोदर अनगार दो-दो संघाड़े (समुदाय) से भिक्षा के लिए द्वारिकाधीश के भव्य भवन में प्रवेश करते हैं, तो उनको आते हुए देखकर महारानी देवकी के भव्य भवन में प्रवेश

करते हैं, तो उनको आते हुए देखकर महारानी देवकी के मन में कितना उल्लास हुआ, वह कितनी हर्ष-विभोर हुई और किस तरह वह मुनिराजों के स्वागत के लिए उनके सम्मुख गयी! इस प्रकार की वृत्ति कब बनती है? जब पूर्व वर्णित अन्तरंग प्रथम, द्वितीय, तृतीय नेत्र खुले होते हैं, तब अवश्य ऐसी वृत्ति बनती है।

देवकी समझती थी कि इस आत्मा का परम पद पर पहुँचना संयम की साधना द्वारा ही होता है। तरुण वयवाले दोनों मुनिराज मेरे द्वार पर आये हैं, मुझे धन्य बनाने पधारे हैं। ये कल्पद्रुम के तुल्य हैं। ये सब प्राणियों को अभय देनेवाले हैं। यदि मुनि रूप में ये न होते, तो थोड़े व्यक्तियों को अभयदान या अन्यदान दे सकते थे, परन्तु जगत के समग्र प्राणियों को अभयदान नहीं दे सकते थे। आज ये आत्माएँ कितने विराट रूप में हैं। ये जगत की बहुमूल्य सेवाएँ कर रहे हैं।

D;k l ekt dsfy, l k/kqHkkjHkur g&

आजकल बहुत से लोग यह कहते रहते हैं कि साधु-संत जगत को क्या देते हैं? वे समाज के लिए भारभूत हैं। डॉक्टर मनुष्यों के शरीर के रोग को मिटाने के लिए सेवा करता है, अतः उसकी आवश्यकता है। वकील कानूनी उलझनों को मिटाते हैं, अतएव वे भी समाज के लिए उपयोगी हैं। अध्यापक छात्रों के मस्तिष्क का परिमार्जन करते हैं, अतएव वे भी समाज के अनिवार्य अंग हैं। कृषक मानवों के लिए अन्न आदि पैदा करते हैं, अतः उनकी आवश्यकता है। परन्तु साधु-संत समाज की क्या सेवा करते हैं? न तो वे राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान करते हैं, न शारीरिक चिकित्सा करते हैं, न अध्यापक की तरह छात्रों को परीक्षा में उत्तीर्ण कराते हैं, न वकील की तरह कार्य करते हैं, न कृषक की तरह अन्न का उत्पादन ही करते हैं, तो साधुवर्ग की समाज को क्या आवश्यकता है?

यह प्रश्न वही व्यक्ति करता है, जिसके अन्तरंग नेत्र बन्द हैं, जिसके दृष्टिकोण में स्थूल विषय ही आते हैं, जो कूपमण्डूक की तरह संकुचित होकर भी उसे ही सर्वस्व समझता है। यह दृष्टि का वैषम्य है, मिथ्यापन है। मिथ्यादृष्टि केवल भौतिकता को ही देखता है, उसे ही परिपूर्ण समझता है। साधु-संत समाज को वह दिव्य दृष्टि प्रदान करते हैं, जिसके प्रकाश में वह कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय कर सकता है, अच्छे-बुरे का विवेक कर सकता है। जगत के आँगन में शांति और सुख का संचार कर सकता है। उस दृष्टि के अभाव में संसार में घोर संघर्ष हो सकता है, जगत का वातावरण अशान्त, क्षुब्ध और विषाक्त हो सकता है। इस अर्थ में साधु-संत समाज की जो सेवा करते हैं, वह सर्वोत्कृष्ट सेवा है। इस तथ्य को कोई विवेकवान व्यक्ति चुनौती नहीं दे सकता।

भौतिक दृष्टि एकांगी है, अपूर्ण है। इतना ही नहीं, भौतिकता का क्षेत्र अत्यन्त छोटा है। जबकि आध्यात्मिक एवं अन्तरंग विश्व का क्षेत्र व्यापक/विस्तृत है। उस विराट अन्तरंग विश्व को समझने के लिए अन्तरंग दृष्टि की अपेक्षा है। उससे ही वह देखा और परखा जा सकता है। उससे ही वास्तविक रीति से तत्त्वों के कार्य-कारण भाव को समझा जा सकता है। उससे ही वास्तविक रीति से तत्त्वों के कार्य-कारण भाव को समझा जा सकता है। जहाँ हमारी स्थूल दृष्टि पहुँचने में असमर्थ होती है, वहीं से अन्तरंग दृष्टि का कार्य आरंभ होता है।

txr&ofp«; dk dkj.k

एक ही परिवार में रहनेवाले 5 भाई हैं। उनका लालन-पालन एकसा हुआ है, खाने-पीने की साधन-सामग्री तुल्य मिली, पैतृक संस्कार एक से मिले, फिर उनमें अन्तर क्यों होता है? एक बुद्धिमान है, दूसरा वज्रमूर्ख है, एक सम्पन्न है, एक

विपन्न है, एक स्वस्थ है, दूसरा सदा रोगी रहता है। इस विचित्रता का कोई दृष्ट-कारण प्रतीत नहीं होता। भौतिक कार्य-कारण भाव से इसका समाधान नहीं होता। भौतिक दृष्टि यहाँ हार मान लेती है। इसका समाधान हमारी अन्तरंग दृष्टि करती है।

न्यायमंजरी के रचयिता जयन्त ने इस विषय पर प्रकाश डालते हुए कहा है :-

t x r k s ; P P k o s p « ; a l q k & n q k k f n H k n r ' A
Ñ f ' k l o k f n l k E ; s f i f o y { k . k Q y k n ; ' A A
v d L e k f é f / k y k k ' p f o | ð i k r ' p d L ; f p r A
ô f p R Q y e ; R u s f i ; R u s l ; Q y r k ô f p r A A
r n s r r ~ n q k / a n " V k R d k j . k n ~ 0 ; k f H k p k f j . k ' A
r s u k n " V e j r 0 ; e L ; f d ' p u d k j . k e A A

—न्यायमंजरी

संसार में कोई सुखी है, तो कोई दुःखी है। खेती नौकरी आदि करने पर भी किसी को विशेष लाभ होता है और किसी को नुकसान उठाना पड़ता है। किसी को अचानक सम्पत्ति मिल जाती है और किसी पर बैठे हुए बिजली गिर पड़ती है। किसी को बिना प्रयत्न किये ही फल प्राप्ति हो जाती है और किसी को यत्न करने पर भी फल प्राप्ति नहीं होती। ये सब बातें किसी दृष्ट कारण से नहीं होती, अतः इनका कोई अदृष्ट कारण मानना चाहिए।

बौद्ध दर्शन के ग्रन्थ में राजा मिलिन्द और स्थविर नागसेन का एक संवाद दृष्टिगोचर होता है। राजा बोला— “भन्ते! क्या कारण है कि सभी एक ही तरह के नहीं होते? कोई

कम आयुवाले, कोई दीर्घ आयुवाले, कोई बहुत रोगी, कोई नीरोगी, कोई भद्दे, कोई सुन्दर, कोई प्रभावहीन, कोई प्रभाववाले, कोई गरीब, कोई धनी, कोई नीच कुलवाले, कोई ऊँचे कुलवाले, कोई मूर्ख और कोई—कोई बुद्धिमान क्यों होते हैं?”

स्थाविर ने कहा—“महाराज! क्या कारण है कि सभी वनस्पतियाँ एक जैसी नहीं होती। कोई खट्टी, कोई खारी, कोई तीखी, कोई कड़वी, कोई कसैली और कोई मीठी क्यों होती हैं?”

“भंते! मैं समझता हूँ कि बीजों के भिन्न—भिन्न होने से वनस्पतियाँ भिन्न—भिन्न होती हैं।”

“महाराज! इसी तरह सभी मनुष्यों के अपने—अपने कर्म भिन्न—भिन्न होने से सभी एक ही तरह के नहीं हैं कोई कम आयुवाले, कोई दीर्घ आयुवाले, इत्यादि, विविध प्रकार के होते हैं।”

इन संदर्भों में यह प्रमाणित होता है कि बाह्य साधन—सामग्री एकसी होने पर भी जो विचित्रता पायी जाती है, उसका कारण पूर्व—जन्म के शुभ—अशुभ कर्म है। बाह्य दृष्ट कारणों से यह वैचित्र्य घटित नहीं होता। वैचित्र्य है, अतएव अर्थापत्ति प्रमाण से सिद्ध होता है कि कोई अदृष्ट अन्तरंग कारण है। इस तरह आत्मा और कर्म की सत्ता सिद्ध होती है। स्थूल भौतिक संसार से परे कोई विराट अन्तरंग विश्व है और उसकी विविध प्रवृत्तियाँ हैं, यह माने बिना कोई विचार नहीं है। इसी विराट आन्तरिक विश्व का ज्ञान आन्तरिक नेत्रों के खुलने पर ही होता है।

विश्व में जो साम्यवादी समझे जाते हैं, जहाँ साम्यवाद की समाजवादी व्यवस्था है, ऐसे रूस जैसे देशों में भी यह विषमता देखने को मिलती है। रूस में प्रधानमंत्री को और मजदूर को क्या समान वेतन मिलता है? क्या सोवियत यूनियन के

प्रेसिडेन्ट का और एक मजदूर का एकसा सम्मान और गौरव है? नहीं है। थोड़ीसी समानता के बावजूद अनेक विषयों की विषमता वहाँ विद्यमान है। तारतम्य और विषमता का कारण आखिर कोई होना चाहिए। कोई माने या न माने, आज नहीं, तो कल मानना होगा कि आत्मा के शुभाशुभ कर्म इसके मूल कारण है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भौतिक विश्व और भौतिकता ही सब कुछ नहीं है। जो एकमात्र भौतिक दृष्टिकोण अपनाता है, वह धोखा खाता है। वह वस्तु का सही स्वरूप—दर्शन करने से वंचित रह जाता है। सम्यग्दृष्टि आत्मा अपने नौ अन्तरंग नेत्रों से आन्तरिक आध्यात्मिक लोक का अवलोकन करता है। उसके सम्मुख आत्मा और परमात्मा का विराट एवं व्यापक स्वरूप सदैव विद्यमान रहता है।

I k&thou dh xfjek

साधु—जीवन की स्थिति बहुत महत्त्वपूर्ण है। वह राष्ट्रपति की गरिमा से भी विशिष्ट गरिमा—सम्पन्न है। राष्ट्रपति अपने ही राष्ट्र की सेवा करता है, जबकि सन्तों का जीवन विश्व के समस्त प्राणियों की सेवा के लिए है। संत—जीवन केवल राष्ट्र के लिए नहीं, अपितु समग्र विश्व के लिए हितावह होता है।

इस बात को आप इस रीति से समझ सकते हैं। एक ऐसा व्यक्ति है, जो अपनी परवाह किये बिना अपने परिवार की सेवा में संलग्न रहता है। एक दूसरा व्यक्ति है, जो अपने परिवार की सेवा करने के साथ ही मोहल्ले और गाँववालों की भी सेवा करता है। यह निर्विवाद सत्य है कि पहले व्यक्ति की अपेक्षा दूसरा व्यक्ति अधिक सेवाभावी माना जायेगा, क्योंकि उसकी सेवा का क्षेत्र अधिक व्यापक है। इससे आगे बढ़कर यदि कोई अपनी सेवा के क्षेत्र को राष्ट्रव्यापी बना लेता है, तो वह और अधिक सेवाभावी समझा जायेगा। तो जिसने मानव मात्र ही नहीं, प्राणिमात्र

की सेवा का व्रत लिया है, वह सर्वोत्तम सेवाभावी कहलायेगा। संतजन अपने सर्वजन-हितकारी उपदेशों से प्राणिमात्र का कल्याण करते हैं। अतएव वे विश्व के परमोपकारी हैं। वे मानव-समाज के अद्वितीय सेवक और लोकहितकारी हैं। मानव-समाज के अभ्युदय में और विश्व के वातावरण को शांतिमय बनाने में संतों का असाधारण योगदान है। अतएव समाज के लिए संत भारभूत नहीं हैं, अपने आधारभूत हैं।

हाँ! यह बात अवश्य है कि सब साधु एक-से नहीं होते। साधुता की कसौटी पर कसकर देखिये। यदि वह खरा उतरता है, तो ठीक है। यदि उसमें त्रुटि दिखायी देती है, तो उसके परिमार्जन का प्रयत्न कीजिये। यदि फिर भी सुधार न हो, तो उसे साधु की कोटि में स्थान नहीं दिया जाना चाहिए। जिस प्रकार किसी व्यापारी के अप्रामाणिक व्यवहार से सब व्यापारियों को अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता, इसी तरह कदाचित् किसी साधु के जीवन में साधु-जीवन की मर्यादा न हो, तो इससे सब साधुओं को शंका की दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए। व्यक्ति की बुद्धि पैनी होनी चाहिए। सोने-चांदी की कसौटी की तरह साधु-जीवन की कसौटी की जा सकती है। उस पर जो खरे उतरें, वे वन्दनीय और पूजनीय हैं।

हाँ, तो देवकी महारानी उन दोनों को पूज्य-दृष्टि से देखने लगी। वह सोचती है कि किस भाग्यशाली माता ने कल्पवृक्ष के तुल्य उनको जन्म दिया है। ये कितने सुन्दर दिख रहे हैं! तरुण वय में साधना के पथ पर चलकर ये अपने जीवन को धन्य बना रहे हैं! मैं भाग्यशालिनी हूँ, जो इनका मेरे यहाँ पदार्पण हुआ है! वह अपने भाग्य की सराहना करती हुई उन मुनिराजों के सम्मुख गयी और उनको विधिपूर्वक वन्दन किया। सत्कार-सन्मान के साथ उनको भोजनगृह में लायी और बोली-

“भगवन! भोजन ग्रहण कीजिए! आपके पवित्र चरणों से मेरा घर पावन हुआ, भोजन ग्रहणकर मुझ पर अनुग्रह कीजिए!”

मुनियों ने भोजन पर दृष्टि डाली, यह जानने के लिए कि यह कल्पनीय है अथवा नहीं? महारानी देवकी उनके भावों को समझकर समाधान करती है कि यह आहार कल्पनीय है, त्रिखंडाधिपति के लिए बनाये गये केशरिया मोदक हैं। इनमें से ग्रहण करने की कृपा कीजिये।

मुनियों ने कल्पनीय जानकर देवकी महारानी द्वारा दिये गये केशरिया मोदकों को ग्रहण किया और गजगति से चल दिये। देवकी उन्हें द्वार तक पहुँचाने आयी। आज देवकी ने अपने आपको धन्य माना कि उसे मुनियों को प्रतिलाभित करने का सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ। वह कृतार्थ हुई।

कुछ समय पश्चात् संयोगवश देवकी की दृष्टि द्वार की ओर जाती है, तो वह देखती है कि वे ही मुनिराज पुनः पधार रहे हैं। देवकी मुनियों के नियमों को जाननेवाली थी। वह सोचने लगी कि मुनिराज सुख-समाधि रहते एक घर से एक ही बार आहार ग्रहण करते हैं। दूसरे दिन भी उस घर में नहीं जाते, तो यह क्या बात है? सही बात यह थी कि जो मुनि पहले आये थे, वे दुबारा नहीं आये, किन्तु दूसरे दो मुनि आये थे। लेकिन इन मुनियों की आकृति भी पहले आये हुए मुनियों-जैसी थी, इसलिए देवकी को ऐसा मालूम हो रहा था कि ये पहलेवाले ही मुनि हैं। देवकी को विचार अवश्य उत्पन्न हुआ, पर फिर भी उसने अपनी दृष्टि से दूसरी बार आये हुए मुनियों को सत्कारपूर्वक आहार प्रतिलाभित किया। दूसरा संघाड़ा भी आहार लेकर चला गया।

संयोगवश तीसरा संघाड़ा भी देवकी के यहाँ पहुँच गया। देवकी का चतुर्थ अन्तरंग नेत्र क्रियाशील हुआ। वह सोचने

लगी कि ये मुनिराज बारबार मेरे घर में क्यों प्रवेश कर रहे हैं? यद्यपि मेरे यहाँ किसी वस्तु की कमी नहीं, मेरी दानभावना में भी कोई कमी नहीं, कृष्ण महाराज का भंडार और खजाना भरा हुआ है, लेकिन विचार इस बात का होता है कि ये मुनिराज अपनी साधना के नियमों से विचलित हो रहे हैं, यदि साधु भी अपनी साधना से विचलित होने लगें, तो फिर किसका सहारा रहेगा? साधु पानी के समान निर्मल होते हैं। पानी के निर्मल कुण्ड में यदि विष मिलने लगा, तो सारी दुनिया जहरीली हो जायेगी। साधुओं के जीवन में पवित्रता रहनी ही चाहिए। दूसरा विचार उसे यह आया कि क्या द्वारिका की जनता में अपनी नैतिकता का परित्याग कर साधु-संतों का स्वागत करना छोड़ दिया? क्या द्वारिका की जनता नैतिकता से गिर गयी है, जो साधु-संतों को आहारादि प्राप्त करने में कठिनाई होती है। जिसके कारण संतों को बार-बार मेरे यहाँ आना पड़ा। क्या द्वारिका की जनता ने अपना अतिथि संविभाग व्रत लुप्त कर दिया है? द्वारिका की जनता में यदि ऐसा दोष आ गया है, तो इसका दायित्व राजा पर भी आता है, क्योंकि “यथा राजा तथा प्रजा” की उक्ति ठीक ही है। राजा में त्रुटि है या राजा का अनुशास ठीक नहीं है या कोई और कारण है, कुछ समझ में नहीं आता!

इस प्रकार की अनेक कल्पनाएँ देवकी के मस्तिष्क में उठी, तदपि उसने मुनिराज को आहार प्रतिलाभित किया। तत्पश्चात् उसने उन मुनिराज से ही अपना समाधान कर लेना उचित समझा। वह द्वार तक पहुँचाने गयी और वन्दना कर पूछने लगी कि भगवन! आप तीसरी बार यहाँ भिक्षा के लिए पधारे, तो क्या द्वारिका नगरी में अन्यत्र भिक्षा नहीं मिलती?

मुनिराज विचक्षण थे। वे समझ गये कि देवकी के इस भ्रम का कारण क्या है? उन्होंने स्पष्टीकरण करते हुए कहा— हम

छह सहोदर भाई भगवान नेमिनाथ के पास दीक्षित हुए हैं। अभिग्रह लेकर दो-दो के सिंघाड़े में हम भिक्षा के लिए निकले हैं। द्वारिका बड़ी नगरी है। संभव है, संयोग ऐस बना है कि दो संघाड़े यहाँ पहले आ गये हों और हम भी चले आये। हम छह भाइयों की आकृति एक ही जैसी है। अतएव तुम्हें इस प्रकार की शंका हो गयी है। देवानुप्रिये! जो संत पहले आये थे, वे हम नहीं हैं, हम दूसरे हैं। हम छह भाइयों ने एक ही माता सुलसा की कुक्षि से जन्म लिया है, हमारी आकृति तुल्य है। हमने तरुण वय में ऋद्धि-वैभव का त्याग करके प्रभु-चरणों में मुनि-जीवन अंगीकार किया है।

मुनि-जीवन कौन अंगीकार करता है? कई भाई कहा करते हैं कि जिन्हें कमाना नहीं आता, वे साधु बन जाते हैं! यह कितनी तुच्छता भरी बात है! अरे! निठल्ले तो बहुतेरे बैठे हैं वे सबके-सब साधु क्यों नहीं बन जाते? लोग निकम्मे हो जाते हैं, वृद्धावस्था में पहुँच जाते हैं, तदपि नासिका के मैल की मक्खी की तरह असंयमी जीवन से चिपके रहते हैं! जो पुण्यवान आत्माएँ होती हैं, वे ही त्याग के मार्ग पर अग्रसर होती हैं। साधारण लोगों की स्थिति तो ऐसी है कि 24 घंटों के लिए वे मर्यादा में नहीं रह पाते। पौषध करना या दया व्रत की आराधना करना भी उन्हें कठिन लगता है। अरे! धन्ना-शालिभद्र जैसे ऋद्धिशाली व्यक्ति समय आने पर सब कुछ त्यागकर संयम-मार्ग पर चल पड़े। इस प्रकार उन्होंने अपना कल्याण कर लिया। अस्तु।

मुनियों का स्पष्टीकरण सुनकर देवकी का मन प्रफुल्लित हुआ। वह सोचने लगी कि वह माता धन्य है, जिसके ये छह अंगजात हैं! वह माता वीरमाता है, जिसने अपने कलेजे के टुकड़ों को, ऐसे-ऐसे छह रत्नों को आध्यात्मिक सेवा हेतु अर्पण किया! देवकी फूली नहीं समायी। क्या देवकी महारानी की तरह

आज की माताएँ चिन्तन करेंगी? सम्यग्दृष्टि आत्मा की तरह नियमों के पालन में और पलवाने में जागृत रहेंगी? पर्युषण के दिनों में अपने जीवन को सुन्दर बनाने का प्रयास किया जाये, तो पर्व की आराधना सार्थक होगी।

nsdh dk fplru

देवकी के मन में प्रसन्नता हो रही थी। सहसा उसकी विचारधारा अतीत की ओर मुड़ी और उसे स्मरण आया कि बचपन में मुझे अतिमुक्तक अनगार ने फरमाया था कि भारत भूमि में तेरे समान गौरवशालिनी माता कोई अन्य नहीं होगी। तू जिन पुत्रों को जन्म देगी, वे अलौकिक, अनुपम और असाधारण होंगे। तू सर्वश्रेष्ठ जननी के रूप में विख्यात होगी। मैंने आज जो दृश्य देखा है, उससे मुनिराज के ये वचन मिथ्या प्रतीत हो रहे हैं, लेकिन दुनिया की कहावत है :-

tkHk[ks oj dkeh] tkHk[ks v.kxkjA

शुद्ध जीवनवाली पतिव्रता स्त्री सहज-सरल भाव से जो वचन बोलती है, वह प्रायः सही हुआ करते हैं। छल-कपट से रहित शुद्ध जीवनवाले अनगार के मुख से निकले हुए वचन असत्य नहीं होते। संतजन मन, वचन और कर्म से एकरूप होते हैं। उनके मन में कुछ और, बाहर कुछ और, ऐसा दुहरा जीवन उनका नहीं होता। संतजनों का जीवन सरल, अनुशासित और निर्दोष होता है। ऐसे ही संत प्रभु महावीर के शासन को समलंकृत करते हैं। उनके जीवन की स्थिति सहज और सरल होती है। उनके मुख से निकले हुए वचन असत्य नहीं होते। निर्दोष, अबोध और भोले बालक के मुख से सहज और अकस्मात् निकले हुए वचन प्रायः मिथ्या नहीं होते।

परन्तु मैं देख रही हूँ कि उन मुनिराज के वचन सत्य

नहीं लगते! मैंने छह पुत्रों को जन्म अवश्य दिया, परन्तु वे मरे हुए थे। कृष्ण को जन्मते ही गोकुल भेज देना पड़ा। उसका लालन-पालन करने, लाड़ लड़ाने या बाल-सुलभ लीलाओं का आनन्द लेने का सौभाग्य मुझे नहीं मिला। मैं अधन्य हूँ। धन्य तो वह माता है, जिसने इन नलकुबेर के समान छह सहोदर भाइयों को जन्म दिया है।

इस प्रकार देवकी का चिन्तन चल रहा है। उसके मन में अतिमुक्तक मुनि के वचनों के प्रति शंका उत्पन्न हो गयी। वह संशय-ग्रस्त हो गयी। लेकिन वह विचक्षण थी। उसने निश्चय किया कि क्यों न इस संशय का समाधान प्रभु अरिष्टनेमि से कर लिया जाये। संशय उत्पन्न होना बुरा नहीं है। साधक को अनेक विषयों में संशय हुआ करता है, परन्तु संशय का समाधान कर लेना चाहिए। संशय में घुलते रहना बुरा है। शास्त्रकारों ने कहा है कि संशय करनेवाले व्यक्ति का विनाश होता है। गीता में कहा है—

I ak; kRek fou' ; fr

संशय से आत्मा नष्ट होती है। जिज्ञासा को लेकर जो संशय हुआ करता है, वह आपत्तिजनक नहीं है। वह तो ज्ञान-वृद्धि का कारण होता है। परन्तु वह संशय विनाश का कारण बनता है, जो सदैव ही संशय बना रहता है और कभी समाधान की स्थिति में नहीं आता। शंका होने पर उचित स्रोत से और उचित व्यक्ति से समाधान प्राप्त कर लेना चाहिए। देवकी ने यही पद्धति अपनायी और वह अपने संशय के निवारणार्थ भगवान अरिष्टनेमि की सेवा में पहुँची।

देवकी के प्रश्न करने पर भगवान अरिष्टनेमि ने उसका समाधान करते हुए फरमाया कि ये छह सहोदर भाई तेरे ही पुत्र हैं। यह सुनते ही देवकी के हृदय में असीम उल्लास पैदा हुआ। उसका रोम-रोम विकसित हो गया। शरीर फूल गया। कंचुकी के

बन्ध टूट गये। स्तनों से दूध की धारा बहने लगी। शास्त्र में ऐसा वर्णन किया गया है। यह कोई अतिशयोक्तिपूर्ण बात नहीं है। यह वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। आप सब जानते हैं कि माता के स्तनों में दूध कब आता है? जब माता में अपनी सन्तान के प्रति तीव्र वात्सल्य पैदा होता है, तब दूध आता है।

जब देवकी ने उन छह सहोदर भाइयों को अपनी सन्तान के रूप में जाना, तो उसके हृदय में उनके प्रति इतना वात्सल्य पैदा हुआ कि उसके स्तनों से दूध निकल पड़ा। माता का सन्तान के प्रति वात्सल्य ही उसके स्तनों में दूध पैदा करता है। देवकी अपने भाग्य की सराहना करने लगी। वह अपने को धन्य मानने लगी कि उसकी कुक्षि से सात अद्वितीय लालों का जन्म हुआ। उसके छह लाल महामुनि बनकर मोक्षमार्ग की आराधना कर रहे हैं और एक लाल कृष्ण द्वारकाधिपति होने के नाते जनता के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह कर रहा है। वह अपने अहो-भाग्य पर प्रसन्न है, साथ ही वह अपने कर्तव्य को स्थिर करने के प्रति भी सावधान है। इसके पश्चात वह अपने जीवन को क्या दिशा प्रदान करती है, वह आगे का विषय है।

thou rRo

अन्तगड के माध्यम से जीवन का निर्माण करनेवाले तत्व आपके सामने रखे हैं। ये आध्यात्मिक विटामिन (जीवन तत्व) हैं। इनका पुनः पुनः सेवन करना चाहिए। सूर्य प्रतिदिन वहीं का वहीं उगता है। हजारों नहीं, लाखों वर्षों से सूर्योदय की एकसी स्थिति चली आ रही है, तो क्या सूर्योदय के प्रति आपकी रुचि नहीं रहती? अवश्य रहती है। रोज-रोज उगनेवाला सूर्य प्रभात में नयी स्फूर्ति प्रदान करता है। प्रतिदिन उगने पर भी सूर्यदर्शन के प्रति रुचि बनी रहती है। आप प्रतिदिन दूध पीते हैं, दही और घी खाते हैं। दूध, दही और घी का स्वाद क्या प्रतिदिन

नया—नया होता है या सदाकाल उनका एकसा स्वाद हुआ करता है? एकसा स्वाद होते हुए भी उन चीजों का पुनः पुनः सेवन किया जाता है, क्योंकि वे चीजें शरीर को पुष्टि देती हैं। इसी तरह अन्तगड में आये हुए जीवन—चरित्र प्राचीन होने पर भी जीवन का निर्माण करनेवाले हैं। अतएव इन्हें नये संदर्भों में नयी दृष्टि के साथ समझने का तथा आचरण में लाने का प्रयास करना चाहिए।

यदि आप अन्तरंग दृष्टि को विकसित करते हुए अपने जीवन का निर्माण करेंगे, तो आप भी आत्मा की सर्वोच्च स्थिति पर पहुँच सकेंगे, जगत शिरोमणि हो सकेंगे। इस स्थिति पर पहुँचने के लिए भौतिक दृष्टि से ऊपर उठना पड़ेगा और अन्तर्दृष्टि का उद्घाटन करना होगा। ऐसा करने पर आप मंगलमय स्वरूप को प्राप्त कर सकेंगे।

देशनोक

3—9—75

dYkD; &ckk

- 0 I E; Xn f"V vkRek vius dYkD; ds ifr I tx
jgrh gA
- 0 ekrk døy tlenk=h gh ughj vfi r q thou dh
fuek=h vkj I lckjnk=h Hh gA
- 0 iHqdk /; ku djus I siHq I si Ecu/k tM+tkrk gA
- 0 JSB i@"ka dk vkpj.k vkuokyh ih<h dsfy,
vkn'kz gkuk pkfg, A
- 0 I fof/k dh fof/k I svRek dk I kWRdkj gkstrkrk gA

dkdUnh uxjh Hkyh gks Jh I qcho uikyA
^jkek^ rl iVjkuh gk\$ rl I q ije NikyAA
Jh I fof/k ftu\$oj oAn; sgkAA oAn iki iqk;-
iHqk R; kxh jktuh gksyh/kk I æe HkjA
fut vkre vuHko Fkdh gksiE; k in vfodkjAA
Jh I fof/k ftu\$oj oAn; sgkAA

यह सुविधिनाथ भगवान की प्रार्थना है। वैसे तो परमात्मा सब प्रकार के नाम, जाति आदि विकल्पों से अतीत है, सब सिद्धि—परमात्माओं का स्वरूप एकसा है। सब सच्चिदानन्दमय और ज्योति—स्वरूप हैं। सब अजर, अमर, अगम, अगोचर, अविनाशी, निरंजन, निराकर, निर्विकल्प, निर्लेप, निरामय, निष्कलंक और निष्काम हैं। वे सब अविनाशी हैं और सुख की राशि हैं। तदपि भूतकालीन नय की अपेक्षा से तथा पर्याय की विवक्षा से परमात्मा को सुविधिनाथ कहा गया है।

जैन दर्शन की तत्व—निरूपण शैली अपने आप में अनूठी है। वह विविध दृष्टिकोणों को लेकर चलती है। प्रत्येक पदार्थ के विविध पहलू होते हैं। उन विविध पहलुओं की विविध विचार—सरणियों को जैन—दर्शन में नय कहा जाता है। वैसे तो ये नय अनन्त हो सकते हैं। वस्तु में अनन्त धर्म होते हैं, अतः उनको कहनेवाले नय भी अनन्त होते हैं। इसीलिए कहा गया है :-

^tkoê; k o; .ki gk rkoê; k gqr .k; oknk*

&I Uefr

जितने वचन मार्ग हैं, उतने ही नय हैं। तदपि उन नयों का वर्गीकरण कर दिया गया है। द्रव्य नय और पर्याय नय, निश्चय नय और व्यवहार नय, ज्ञान नय और क्रिया नय इत्यादि रूप में नयों का वर्ग—विभाजन किया गया है।

जब हम द्रव्य नय को लेकर वस्तु की विचारणा करते हैं, तब वस्तु एक, नित्य और अखंड प्रतीत होती है और जब पर्याय नय की दृष्टि को लेकर चलते हैं, तो वस्तु अनेक, अनित्य और भिन्न—भिन्न प्रतीत होती हैं। इस द्रव्यार्थिक नय को लेकर सिद्ध— परमात्मा का स्वरूप एक, नित्य, अखण्ड दृष्टिगोचर होता है। उनमें नाम, जाति आदि विकल्प—भेद नहीं रहते। जब पर्याय

नय की दृष्टि से विचार करते हैं, तो सिद्ध परमात्मा में नाम, गुण आदि को लेकर भिन्नता प्रतीत होती है। द्रव्य नित्य होता है, पर्याय परिवर्तनशील है।

प्रस्तुत स्तुति में पर्याय नय की विवक्षा है। वर्तमान में सिद्ध रूप में ही हुई आत्मा पूर्व में सुविधिनाथ तीर्थकर के रूप में थी, अतएव उस भूतभाव को लेकर सिद्ध स्वरूप परमात्मा को सुविधि जिनेश्वर कहा गया है। उन सुविधिनाथ परमात्मा को वन्दन करने के लिए कवि ने प्रेरणा दी है। साथ ही यह विश्वास दिलाया है कि यदि उन परमात्मा को वन्दन किया जाये, तो सब पाप नष्ट हो सकते हैं।

I ॐ/कुक्क D; ka 0lunh; gॐ

प्रश्न हो सकता है कि सुविधिनाथ हमारे लिए क्यों वन्दनीय हैं और उनको वन्दन करने से पापों का नाश किस प्रकार हो सकता है? इसका उत्तर स्वयं कवि ने इन पंक्तियों में दिया है :-

प्रभुता त्यागी राजनी हो, लीधो संजम भार।

निज आतम अनुभव थकी, हो पाम्या पद अविकार।।

श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिये हो।

सुविधिनाथ इसलिए वन्दनीय नहीं है कि वे एक विशाल राज्य के स्वामी थे, अपार धन-वैभव उनके चरणों में लौटता था, अपितु इसलिए वन्दनीय हैं कि उन्होंने विलासपूर्ण जीवन को छोड़कर संयम का मार्ग अपनाया था। संयम की साधना के द्वारा आत्मा के मौलिक स्वरूप का अनुभव किया। आत्मा का साक्षात्कार करके परिपूर्ण केवलज्ञान प्राप्त किया और उसके विमल आलोक में जन-कल्याण के लिए सुविधि का निर्देश दिया, धर्मतीर्थ की स्थापना की और अन्ततः अविकारी और शाश्वत सिद्ध स्वरूप को

प्राप्त हुए।

उन सुविधिनाथ भगवान ने जगत के जीवों को सुविधि बतायी, कल्याण का मार्ग बताया, कर्त्तव्य का दिशाबोध दिया और संसार-सागर से पार होने का तौर-तरीका या विधि-विधान समझाया। अतएव वे 'यथानाम तथा गुणः' के अनुसार सुविधिनाथ कहलाये।

सुविधिनाथ परमात्मा की बतायी हुई सुविधि के अनुसार चलनेवाला, उसे जीवन व्यवहार में अपनानेवाला, उसके अनुसार प्रवृत्ति करनेवाला व्यक्ति सब पाप-बन्धनों से मुक्त होकर अपने जीवन-लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। संसारवर्ती प्राणी विविध दुःखों से अभिभूत हो रहा है, पाप के संतापों से संतप्त हो रहा है, दुष्कर्मों के भार से दबा जा रहा है, मोह के अन्धकार में ठोकरें खा रहा है, लक्ष्य से भ्रष्ट होकर इधर-उधर भटक रहा है। इन सब दुर्दशाओं से छुटकारा पाने का उपाय, दुःखों से मुक्त होने की युक्ति तथा सुख प्राप्त करने की सुन्दर विधि सुविधिनाथ परमात्मा ने बतायी है। अतः वे जगज्जीवों के लिए वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं, आराध्य हैं, संसेव्य हैं। यदि जगत को दुःखों से उबरना है, सुख पाना है, तो सुविधिनाथ प्रभु की बतायी हुई सुविधि-सुन्दर विधि को अपनाना होगा। इस सुविधि से ही जगत का निस्तार संभव है। यह सुविधि ही सुख की सुविधि है।

I fof/k dh fof/k

सुविधि की विधि से तात्पर्य है- भगवान सुविधिनाथ के द्वारा प्ररूपित मार्ग। अब प्रश्न यह है कि वह कौनसी विधि है? कौनसा मार्ग है, जो उन सुविधिनाथ परमात्मा ने बताया है? इसका उत्तर है :-

I ggs i foukh] vI gkvks fof.kfoukh

इस एक सूत्र में—गागर में सागर की तरह—उस विकट प्रश्न का उत्तर दे दिया गया है। शुभ में प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति करना ही सुख की विधि हैं, सुख का मार्ग है।

fl ôs ds nks i gyw

प्रवृत्ति और निवृत्ति, विधि और निषेध, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं या एक ही रथ के दो चक्र हैं। सिक्के के दोनों ओर कुछ अंकन किया हुआ होता है। दोनों ओर का अंकन सही और ठीक—ठीक स्थिति में होने पर ही सिक्का सही माना जाता है। उसकी दोनों बाजु यथावत् होने पर ही वह अपना सही मूल्य पाता है। यही सिक्का एक तरफ से घिसा—पीटा हो, तो वह अपना सही मूल्य नहीं पा सकता है। एक चक्र के द्वारा रथ की गति संभव नहीं है। रथ के दोनों पहिये जब साथ—साथ घूमते हैं, तब रथ की गति होती है और उसके द्वारा मंजिल पर पहुँचा जा सकता है, इसी तरह प्रवृत्ति और निवृत्ति एक ही धर्मरूपी सिक्के के दो पहलू हैं। एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। ये दोनों एक—दूसरे के पूरक होते हैं, विरोधी नहीं। अशुभ से हटना निवृत्ति है और शुभ में लगना प्रवृत्ति है। विधि, प्रवृत्तिपरक है और निषेध, निवृत्ति—परक। जब अशुभ से निवृत्ति की जाती है, तो शुभ में प्रवृत्ति अवश्य होती है, शुभ में प्रवृत्ति होने पर अशुभ से निवृत्ति सहज हो जाती है। ये दोनों जीवन में साथ—साथ चलते हैं

¶ q dh l kfkdrk

वैसे तो क्रिया मात्र में, चाहे वह शुभ हो या अशुभ हो—विधि निषेध या प्रवृत्ति—निवृत्ति पायी जाती है। एक चोर अपने दूसरे चोर साथी से परामर्श कर रहा है कि अमुक स्थान पर चोरी करना। दूसरा साथी कह रहा है कि नहीं, अमुक स्थान पर चोरी न करके अन्यत्र कहीं चोरी करना। इस प्रकार एक स्थान पर

चोरी करने का निषेध किया जा रहा है और दूसरे स्थान पर चोरी करने का विधान किया जा रहा है। दोनों के मुँह से दो बातें निकल रही हैं। यह स्वाभाविक है कि एक स्थान पर चोरी करेगा, तो दूसरे को छोड़ना पड़ेगा। एक में प्रवृत्ति होगी, एक से निवृत्ति होगी। इस प्रकार बुरे कार्य में भी प्रवृत्ति-निवृत्ति का प्रसंग प्राप्त होता है, विधि-निषेध का अवसर उपस्थित होता है। इस दोष की निवृत्ति के लिए 'सु' उपसर्ग का प्रयोग किया गया है। सामान्य विधि-निषेध या सामान्य प्रवृत्ति-निवृत्ति यहाँ अपेक्षित नहीं है, अपितु सुविधि और सु-निषेध, सम्यक् प्रवृत्ति ही धर्म का मार्ग हो सकती है।

'सु' का अर्थ होता है प्रशस्त, श्रेष्ठ, सुन्दर। सुन्दर विधि के साथ यदि प्रवृत्ति की जाती है, शुभ में यदि प्रवृत्ति की जाती है, तो जीवन में प्रगति आती है, जीवन विकसित होता है और आत्मा ऊर्ध्वगामी बनती है। प्रशस्तता या सुन्दरता के अभाव में की जानेवाली प्रवृत्ति-निवृत्ति आत्मा को अधोगति में ले जाती है, संसार में रुलाती है और दुःखमय स्थिति उपस्थित करती है। इसलिए सुविधिनाथ प्रभु ने अपने सार्थक नाम के अनुसार जगत के सामने कल्याण, अभ्युदय और सुख की सुन्दर विधि निरूपित की है। उन्होंने कहा है कि शुभ में प्रवृत्ति और अशुभ से निवृत्ति करो। यह एक मात्र कल्याण का रास्ता है, सुख का स्रोत है और मोक्ष का मार्ग है। यदि मानव अपने जीवन में यह सुविधि अपनाता है, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में इस सुविधि को लागू करता है, तो उसका जीवन मंगलमय बन जाता है। इस सुविधि को अपनाकर मानव आनन्द की अक्षय निधि को हस्तगत कर लेता है।

विधि का दूसरा अर्थ होता है— कर्त्तव्य। सुविधि अर्थात् सत्कर्त्तव्य। कर्त्तव्य—शब्द बहुत व्यापक और विशाल अर्थ को लिए हुए है। कर्त्तव्य के क्षेत्र में समस्त करणीय कार्यों का समावेश

हो जाता है। जो व्यक्ति जिस स्थान पर है, जिस पद पर है, उसके अनुरूप उसका कर्त्तव्य निर्धारित होता है।

एक व्यक्ति, यदि वह साधु-जीवन व्यतीत कर रहा है, तो उसका जीवन साधु-जीवन की मर्यादा के अनुरूप होगा। यदि वह उस मर्यादा का अतिक्रमण करता है, तो वह उसका अकर्त्तव्य कहलायेगा। उदाहरण के तौर पर समझ लें कि साधु आरम्भ-समारम्भ और हिंसा का सर्वथा त्यागी होता है। वह कोई ऐसी क्रिया नहीं कर सकता, जिसमें लघुतम प्राणियों की भी हिंसा होती हो। वह गमनागमन की क्रिया ईर्या समिति (विवेक पूर्वक गमन करना) का ध्यान रखते हुए करता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो अकर्त्तव्य का सेवन करता है।

साधनामय जीवन में भाषा का बड़ा महत्व होता है। अतएव साधु भाषा का प्रयोग करते हुए भाषा-समिति (निर्वद्य वचन बोलना) का ध्यान रखता है। यदि वह इस मर्यादा का अतिक्रमण करता है, तो वह अकर्त्तव्य का आचरण करता है।

बिना दिये हुए साधु किसी वस्तु को नहीं लेता। यह उसकी आचार-विधि है। लेकिन यदि वह यहाँ लगे कलेण्डर (तिथि-पत्र) को भी बिना गृहस्थ की आज्ञा लिए हाथ लगाता है, देखता है, तो उसके लिए अकर्त्तव्य है।

विकारी भावना से यदि वह स्त्रियों से बातचीत करता है अथवा एकांत में बिना पुरुष की साक्षी के स्त्री से बोलता है, तो वह उसके लिए अकर्त्तव्य है।

यदि कोई साधु रुपयों-पैसों के विषय में या चंदे-चिट्ठे में भाग लेता है, इतने रुपये इकट्ठे होने चाहिए, इतना चंदा देना चाहिए, इतना अमुक सेठसा दें, इतना अमुक व्यक्ति दे, इस प्रकार की प्रवृत्ति यदि साधु करता है, तो वह अकर्त्तव्य की ओर

जा रहा है। कर्तव्य-मार्ग से वह दूर हट रहा है। साधु जीवन की अपेक्षा से जो अकर्तव्य हैं, वे किन्हीं प्रसंगों में गृहस्थ के लिए कर्तव्य हो जाते हैं। गृहस्थ की स्थिति में रहा हुआ व्यक्ति छोटे प्राणियों की हिंसा से, आरंभिकी हिंसा से बच नहीं सकता। वह संकल्पी हिंसा का त्याग करता है, किन्तु जीवन निर्वाह के लिए, परिवार-समाज तथा राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य को निभाने के लिए वह आरंभिकी हिंसा से बच नहीं सकता।

मान लीजिए किसी गृहस्थ के घर उसके माता-पिता बीमार हैं। पर्युषण के दिन हैं, जैसे कि अभी चल रहे हैं। संवत्सरी का दिन आ गया। इस दिन जैन समाज में परिपाटी है कि छोटे-छोटे बच्चे भी उपवास करते हैं, पौषध करते हैं, आरम्भ-समारम्भ से बचते हैं, चौके-चूल्हे की छुट्टी रहती है। यदि वह गृहस्थ अपने बीमार, अशक्त और वृद्ध माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा के लिए आरम्भ-समारम्भ करता है, भोजन बनता है-खिलाता है, तो वह अपने कर्तव्य का निर्वाह करता है। यदि वह ऐसा न करते हुए, उनकी समुचित देखभाल की अन्य व्यवस्था न करके माता-पिता को उनके भाग्य-भरोसे छोड़कर अष्ट प्रहर का पौषध करने स्थानक में चला जाता है, तो वह गृहस्थ अपने कर्तव्य-मार्ग से पतित होता है। जो व्यक्ति उसके आश्रित हैं, उनके खानपान की व्यवस्था किये बिना यदि वह पौषध कर लेता है, तो उसके भत्तपानविच्छेद (आहार पानी का विच्छेद) नामक अतिचार लगता है। यदि वह अपनी जवाबदारी किसी सुयोग्य व्यक्ति को संभला कर पौषध करता है, तो वह कर्तव्य की श्रेणी में है। तब अकर्तव्य की स्थिति नहीं बनती। इस तरह साधु जीवन और गृहस्थ-जीवन के कर्तव्य अधिकारी-भेद के कारण पृथक-पृथक होते हैं। जो साधु-जीवन के कर्तव्य हैं, वे सब गृहस्थ के भी कर्तव्य हों, ऐसा एकान्त नहीं हो सकता। उनमें अन्तर आ जाता है। सम्यग्दृष्टि, गृहस्थ अवस्था में रहता हुआ

समताभाव से परिवार के सदस्यों के प्रति अपने दायित्व को निभाता हुआ कर्त्तव्य का आराधक होता है।

सम्यग्दृष्टि आत्मा अपने अन्तरंग नेत्रों को उद्घाटित रखता है, यह बात कल के व्याख्यान में बतायी गयी थी। आपको वह बात याद रही हो या न रही हो, यह तो आप जानें, क्योंकि प्रायः कई लोग एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देनेवाले होते हैं। आप सम्यग्दृष्टि हैं और आपके अन्तरंग नेत्र खुले हैं, यह बात तो कसौटी करने पर ही ज्ञात हो सकत है।

न०४१ द० क० द०१०; क०१०

महारानी देवकी का प्रसंग चल रहा है। महारानी देवकी शयनकक्ष में पलंग पर बैठी हुई अपने कर्त्तव्य का अनुसंधान कर रही है। वह सोच रही है कि मैंने गृहस्थ अवस्था की दृष्टि से कठोर व्रत का निर्वाह किया, पतिव्रत धर्म में दृढ़ रहकर कर्त्तव्य को ठीक तरह से निभाया। पतिदेव भी मुझे ऐसे मिले, जिन्होंने अपने वचनों की रक्षा के लिए प्राणप्रिय पुत्रों को कंस को सौंप दिया। मेरे पति बड़े सत्यनिष्ठ हैं। उन्होंने अपने कर्त्तव्य का निर्वाह किया। लेकिन जब मैं माता के कर्त्तव्य और दायित्व का विचार करती हूँ, तो मुझे दुःख होता है कि मैं उस दायित्व और कर्त्तव्य को निभाने में असमर्थ रही।

१०१० द० क० न०१; १०

सन्तान के प्रति पिता की अपेक्षा माता का दायित्व विशेष होता है। माता केवल जन्म देनेवाली मशीन नहीं है, अपितु वह सन्तान के जीवन का निर्माण और संस्कार करनेवाली कुशल शिक्षिका है। वह सन्तान के जीवन की निर्मात्री और संस्कार-दात्री होती है। सन्तान रूपी कच्ची मिट्टी को सुन्दर कलश का रूप दे देना, उसकी ही कला है। बालक के गर्भ में आते ही माता की

जवाबदारी शुरू हो जाती है। विवेकवती गर्भवती माताएँ अपने विचारों और रहन-सहन को इस प्रकार का मोड़ देती हैं कि जिससे गर्भस्थ बालक पर सुन्दर संस्कार पड़ते रहें। उसकी कोख से जन्म लेनेवाला बालक तेजस्वी, बलिष्ठ, निर्भीक, न्याय-नीति-सम्पन्न और राष्ट्रीय चारित्र की गरिमा को लिए हुए हो, ऐसी भावना प्रत्येक माता की रहनी चाहिए। इस भावना को साकार करने हेतु माता को कई मर्यादाएँ अपनानी होती हैं। खान-पान में तथा रहन-सहन में संयमशील होना पड़ता है। ऐसी कई मर्यादाओं का शास्त्रों में उल्लेख मिलता है।

गर्भावस्था में माता की दुहरी जवाबदारी होती है। यदि वह उस अवस्था में विकारी भावना लेकर चलती है, तो इससे उसका तो अहित होता ही है, गर्भस्थ बालक पर भी प्रभाव पड़ता है। गर्भवत स्त्री यदि झूठ बोलती है, गुस्सा करती है, झगड़ा करती है, तो उसकी सन्तान में भी असत्य, क्रोध और क्लेश-कलह की बहुलता होगी। माता की प्रक्रियाओं का असर गर्भस्थ सन्तान पर पड़ता है। अतएव माताओं को इस विषय में पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिए।

देवकी महारानी सोच रही है कि मैंने इन सब बातों का ध्यान रखा, इन सब अनमोल लालों को सवा नौ मास तक गर्भ में संरक्षण दिया, परन्तु इससे आगे के कर्तव्यों को पूर्ण करने में मैं लाचारीवश असमर्थ रही। यह मेरे अशुभ कर्मों की कैसी विडम्बना है कि मैं सात-सात लालों की जननी होते हुए भी उनके प्रति मातृत्व के कर्तव्यों को निभा न सकी। आज जो त्रिखंड का अधिपति है, भरत क्षेत्र में जिसकी बराबरी का कोई नहीं, उस कृष्ण को जन्म मैंने दिया, लेकिन उसके लालन-पालन और संस्कार प्रदान करने के मेरे दायित्व को मैं निभाने में असमर्थ रही।

देवकी की विचारधारा आगे चली, मैंने उन छह सहोदर बन्धुओं को जन्म दिया। यह मेरा बड़ा सद्भाग्य है कि ऐसे नलकुबेर के समान सुन्दर छह लाल मेरी कोख से जन्मे। परन्तु सचमुच क्या यह मेरा दुर्भाग्य नहीं कि मैं इन छह पुत्रों का लालन-पालन न कर पायी, इनमें अपने संस्कार न डाल पायी? क्या ही अच्छा होता, यदि मैं इन्हें वात्सल्य भाव से, माता की ममता से अपने स्तनों का पान कराती और दूध पिलाती हुई उनमें सुन्दर संस्कार डालती। क्या ही अच्छा होता, यदि मैं इन्हें सुसंस्कारित, सुशिक्षित और धार्मिक बनाकर स्वयं अपने हाथों से भगवन अरिष्टनेमि के चरणशरण में जिनशासन की सेवा के लिए समर्पित करती।

यों चिंतन करती हुई देवकी महारानी बहुत गहराई में उतर गयी। मातृत्व के कर्तव्यों को निभाने में मिली हुई असफलता के प्रति उसे शोक हो आया। उसके बाह्य स्वरूप को सीधे-सादे शब्दों में कवि ने इस प्रकार प्रकट किया है—

**be >jsno dh jku] eārs i q̄ fcuk fcy [kuh thAA be-
eās | krlauhu tk; k̄] fi .k , d u xln [kyk; k thAA be-
uglaLru i ku djk; k̄ : Brk usugheuk; ks jAA be-**

महारानी देवकी के कर्तव्य-भावों की अभिव्यक्ति को साधारण जन इन कड़ियों द्वारा समझ सकते हैं, इस दृष्टि से इनका यहाँ उच्चारण किया गया है। देवकी सोचने लगी कि मैंने सात पुत्रों को जन्म दिया, परन्तु विधि की कैसी विडम्बना है कि एक को भी गोद में खेला न पायी, स्तनपान न करा सकी और रूठते हुए को मनाने का सौभाग्य न पा सकी। यहाँ देवकी की यह भावना कर्तव्य-निष्ठा को लेकर है, माता के दायित्व की दृष्टि से है। माता का दायित्व गुरुतर है। ममता और वात्सल्य

की धारा से संतान को सिंचित करती हुई उसमें संस्कारों का बीजारोपण करती है। वे बीज अंकुरित और पल्लवित होकर संतान के जीवन का निर्माण करते हैं।

दुःख का विषय है कि आजकल माताएँ सन्तानों को जन्म तो देती हैं किन्तु उन्हें संस्कारित करने की ओर ध्यान नहीं देती। वैसे तो मादा पशु-पक्षी भी अपने बच्चों को जन्म देती ही हैं। अपनी क्षमता के अनुसार अपनी भाषा में संकेतों द्वारा वे भी सन्तति को शिक्षित करते हैं। आप समझ पायें या न समझ पायें, गाय की आवाज को बछड़ा पहचान लेता है और बछड़े की आवाज को गाय पहचानती है। पक्षी अपने घोंसलों में किस प्रकार शिशुओं को सुरक्षित रखते हैं, चुग्गा चुगाते हैं और किस प्रकार उन्हें स्वावलंबी बनाकर गगन में स्वतंत्र रूप से उड़ सकने की क्षमता प्रदान करते हैं। वे अपनी क्षमता के अनुपात से सन्तान को योग्य बनाने का प्रयत्न करते हैं। मानव पर्याय में रही हुई माताएँ क्या आपने ज्ञान के अनुरूप सन्तान को संस्कारित करने का प्रयत्न करती हैं? खाने-पीने के साधन भले ही जुटा देती हैं, प्रातःकालीन नाश्ता करा देती हैं, सुन्दर वस्त्र पहना देती हैं और इसमें अपने कर्त्तव्य की समाप्ति मान लेती हैं। कुछ माताएँ बालकों की शरारतों से तंग आकर उन्हें जल्दी स्कूल में प्रविष्ट करा देती हैं, ताकि वे बच्चों की शरारतों से छुट्टी पा जायें। विद्यालयों में प्रविष्ट करा देने के पश्चात् माता-पिता प्रायः लापरवाह देखे जाते हैं। पुरुष वर्ग को अपने धंधे के आगे यह सब देखने की फुर्सत नहीं है, माताओं को अपने घर के धंधों और पराये घर की बातों से अवकाश नहीं रहता, तो सन्तान को सुसंस्कार कहाँ से और कैसे मिलेंगे?

सुसंस्कारों के अभाव में बालक उद्वण्ड, स्वच्छंद और उद्धत बन जाते हैं, व्यसनों के चक्कर में पड़ जाते हैं। माता-पिता

की लापरवाही के कारण बच्चों में बाहर से आये हुए कुसंस्कार दृढ़ बन जाते हैं और उसका दुष्परिणाम कालान्तर में उन्हें स्वयं को भोगना पड़ता है। कई लोग हमारे पास ऐसे किशोरों और नवयुवकों को लाते हैं और हमसे उनके सुधार की आशा रखते हैं। परन्तु यह बड़ी कठिन बात है। कोमल वय ने उन्हें सुसंस्कार नहीं दिये गये, उस समय उनकी ओर ध्यान नहीं दिया गया। अब वे कुसंस्कार रूढ़ और दृढ़ बन गये। अब उनका परिमार्जन होना कठिन हो जाता है। अतएव माता-पिता को संतान के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह ठीक रीति से करना चाहिए, क्योंकि बालक कोमल वय में ही संस्कारों का ग्रहण करता है। मिट्टी जब तक मुलायम और गीली है, तभी तक कुम्भकार उससे इच्छित पात्र बना सकता है। बचपन के संस्कार ही बालक के जीवन का निर्माण करते हैं। लोरियाँ सुनाकर माताएँ अपनी संतान को वीर, तेजस्वी और कर्तव्यनिष्ठ बना सकती हैं। मारवाड़ी भाषा में एक प्रसिद्ध लोरी बड़ी मर्मस्पर्शी है—

ckyks i k[ka ckgj vk; k[ekrk cSk l qkkoS ;

Egkjh dk[k fl ykbt sckySeaFkus l [kjh ?q/h n[

xksh l rks ckyk p[ks ekrk cSk l qkkoS ;

/kGk n[ka ea dk; jrk dks dkGks n[ka u ykbt s r[

वीर माता अपने पुत्र को दूध पिलाती हुई कहती हैं—रे पुत्र! मैं तुझे अपने स्तनों का स्वच्छ, सुन्दर, निर्मल, और मधुर दूध पिला रही हूँ। तू जैसा सफेद और स्वच्छ दूध पी रहा है, उसके अनुरूप ही अपने जीवन को स्वच्छ और साफ-सुथरा रखना। दुनिया के रंगमंच पर तुम्हारी कीर्ति इस श्वेत दूध के समान तथा चन्द्रमा की चाँदनी की तरह फैले। तुम्हारे जीवन में दिव्यता प्रकट हो। याद रखना, तुम ऐसा कोई कार्य मत करना, जिससे

मेरे सफेद दूध में काला दाग लगने का प्रसंग आये। तू अपने जीवन को बेदाग रखकर मेरे दूध को बेदाग रखना। तू अपने जीवन—व्यवहारों से जगत में यशस्वी बनकर मेरी कोख को गौरव प्रदान करना। तू ऐसी कायरता या अनैतिकता का आश्रय मत लेना, जिससे मेरी कोख लज्जित हो, मुझे नीचा देखना पड़े। हे वीर बालक! तू अपने निर्मल जीवन से निर्मल यशोराशि अर्जित करना और मेरे निर्मल दूध को निर्मल बनाये रखना। मुझे वीर—जननी का गौरव प्रदान कराना।

इस प्रकार की उदात्त शिक्षाएँ देनेवाली माताएँ जगत का कायाकल्प कर सकती हैं।

enky| k dh f'k{k, j

ऐसा कहा जाता है और कई व्यक्ति कहते भी हैं कि माता केवल मोहवश अपनी संतान का पालन—पोषण करती है। परन्तु यह कथन भ्रमपूर्ण है। विवेकवती माताएँ मोह के वशीभूत होकर नहीं, अपितु कर्तव्य बुद्धि से शिशु का संगोपन करती है। ऐसा करते हुए वह अनेक स्थितियों में मोह का परित्याग करती हैं, मोह को छोड़े बिना माताएँ अपनी सन्तति को सुसंस्कारित नहीं बना सकती। मोहमूढ़ माताएँ सन्तान को सुशिक्षित और सुसंस्कारित नहीं कर सकतीं। जब वे मोह से ऊपर उठती हैं और कर्तव्य भावना से अनुप्राणित होती हैं, तभी संस्कार और शिक्षाएँ दे सकती हैं। पुरणों में मदालसा का वर्णन आता है।

मदालसा अपनी कोख में आयी संतति को मोह—निवृत्ति की शिक्षा देती थी। मोह—निवृत्ति की शिक्षा देनेवाली माताएँ स्वयं मोहग्रस्त कैसे हो सकती हैं? वह कर्तव्य भावना से—शुभ भावना से प्रेरित होकर सन्तति को संस्कार प्रदान करती थी। उसने अपने पुत्रों को ऐसी शिक्षा दी, जिससे वे सांसारिक मायाजाल से आबद्ध न होकर आध्यात्मिक साधना में लगे। कुटुम्ब की आसक्ति

और सांसारिक मोह का परित्याग कर वे परमात्मा की भक्ति में लग गये।

महारानी मदालसा की इस प्रवृत्ति का जो परिमाण सामने आया, उससे महाराज विह्वल हो गये और कहने लगे कि 'महारानी! सब साधु बन जायेंगे, तो राज्य के उत्तरदायित्व को कौन संभालेगा? मैं क्या अन्तिम दम तक संसार के प्रपंचो में ही उलझा रहूँगा? मैं आत्मकल्याण की साधना कब करूँगा?

महारानी मदालसा बोली— प्राणनाथ! आप चिन्ता न करिये। बच्चों को घड़ना मेरे हाथ का खेल है। कुम्भकार अपनी इच्छानुसार पात्र बना लेता है। मैं अपनी भावना के अनुसार संतान को घड़ सकती हूँ। मुझ में इतना आत्माविश्वास है। इस बार मैं अपने पुत्र को ऐसी शिक्षा दूँगी, जिससे वह आपको निवृत्ति दे सकेगा और आप आत्मकल्याण के मार्ग पर चल सकेंगे। वह राज्य की धुरा को वहन करेगा और अंत समय में वह भी अपनी सन्तान को राज्य सौंपकर आत्मकल्याण हेतु निकल पड़ेगा। महारानी ने अपने एक पुत्र को वैसे ही संस्कार दिये।

मदालसा महारानी मोहभाव के ऊपर उठी हुई थी, अतः वह अपनी संतान को कर्त्तव्य भावना से प्रेरित होकर सुन्दर संस्कार दिया करती थी। वह दूध पान कराते समय, झूला झुलाते समय तथा अन्य रीति से शिशुओं का संगोपन करते हुए कैसे संस्कार देती है, इसका चित्रण इस श्लोक में किया गया है—

'kṛ ks fi cṛ ks fi fujaṭ ukṣi A

हे पुत्र! तू शुद्ध है, निरंजन है, निराकार है और संसार के बन्धनों से मुक्त है। मोह की निद्रा का परित्याग कर। जागृत होकर जीवन में समुज्ज्वल बना।

महारानी मदालसा इस प्रकार के संस्कार अपनी सन्तान

में उड़ेला करती थी। क्या कोई मोह—ग्रस्त माता ऐसा कर सकती है? मोह से ऊपर उठी हुई माताएँ ही कर्त्तव्य भावना से अपनी संतति को सुसंस्कारित बनाती हैं।

महारानी देवकी का भी इस तरह का चिन्तन चल रहा है। वह सोच रही थी कि मैंने अपनी—अपनी सन्तानों को इस प्रकार के संस्कार नहीं दिये। यदि मैं भी अपने पुत्रों को मदालसा की तरह संस्कारित करती और भगवान नेमिनाथ के चरणों में समर्पित करती, तो कितनी पुण्यशालिनी होती। जिनेन्द्र देव के शासन की सेवा के लिए यदि मैं अपने हृदय के टुकड़े इन छह अद्भुत रत्नों को अपने हाथों से अर्पण करती, तो मेरा जीवन कितना धन्य हो जाता।

D; k ; g >juk vkr̥; ku g&

कोई कह सकता है कि देवकी महारानी का यह झूरना आर्तध्यान की कोटि में आता है। परन्तु यह कथन यथार्थ नहीं है। जो झूरना मोह को बढ़ानेवाला होता है, मोह से जन्य है या मोह में परिणत होता है, वह आर्तध्यान की कोटि में है। कर्त्तव्य दृष्टि को लेकर किया गया शोक—संताप आर्तध्यान की श्रेणी में नहीं आता। धर्म, गुरु या तीर्थ के प्रति जो राग का प्रसंग होता है, वह प्रशस्त राग कहा जाता है। इसकी पुष्टि में यदि आप शास्त्रीय प्रमाण चाहते हैं, तो भगवती सूत्र में वर्णित सिंह अनगार का वृत्तान्त देखें।

जब प्रभु महावीर के शरीर में अतिसार (खून की दस्तें लगना) रोग उत्पन्न हो गया, तब मुनिगण चिन्तित हो उठे। सिंह अनगार तो इतने विह्वल हो उठे कि वे रुदन करने लगे। प्रभु महावीर ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा कि सिंह! तुम चिन्ता न करो। मेरा अभी कुछ बिगड़नेवाला नहीं है। तुम चाहो, तो इस रोग के निवारण हेतु औषधि ला सकते हो। उनको औषधि लाने

भेज दिया। सिंह अनगार का यह रुदन आर्तध्यान में नहीं है। यह प्रशस्त स्थिति है। देवकी महारानी का यह झूरना उत्तम जीवन की भावना-कर्तव्य दृष्टि को लेकर था, अतः उसको प्रशस्त समझना चाहिए।

duk; fu"Bk

महारानी देवकी कर्तव्यनिष्ठ थी। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उसने अपने पति के वचनों की रक्षा के लिए अपने पुत्रों को कंस को सौंप दिया। महारानी देवकी चाहती, तो वह कह सकती थी कि वचन महाराज ने दिया है, मैंने कोई वचन नहीं दिया है। मैं अपने पुत्रों को क्यों कर सौंपू? लेकिन महारानी देवकी ने ऐसा कोई विचार नहीं किया। पति ने जोर दिया, वह उसे मान्य हुआ। उसने अपने पति की प्रतिज्ञा का पालन करने के लिए अपने हृदय के टुकड़ों को कंस को सौंप दिये। यह कर्तव्य भावना है। मोह पर विजय प्राप्त किये बिना ऐसी कर्तव्य-निष्ठा नहीं आ सकती।

N".k okl qo dk fou;

कर्तव्यनिष्ठ महारानी देवकी का प्रभाव उनके अंगजात कृष्ण वासुदेव पर पड़ना स्वाभाविक है। कृष्ण त्रिखंड के अधिपति थे। कर्तव्यपरायणता में वे बहुत आगे बढ़े हुए थे। तीन खंड के नाथ होते हुए भी वे कर्तव्यों के प्रति बहुत जागरुक थे। वे प्रतिदिन अपनी माताओं को नमन करने आया करते थे। कितना विनय भाव था कृष्ण वासुदेव में! क्या आप लोग भी अपने माता-पिता के चरणों में प्रतिदिन नमन करते हैं?

आजकल तो थोड़ा-बहुत अक्षर ज्ञान हो जाने पर अथवा बी.ए., एम.ए. की डिग्री प्राप्त कर लोग अभिमान से फूले नहीं समाते। वे न जाने अपने-आपको क्या समझने लगते हैं?

माता—पिता को नमन करने में उन्हें लज्जा का अनुभव होता है। मैं पूछना चाहता हूँ कि त्रिखंडाधिपति बड़े थे या ये उपाधिधारी? यह सोचने की बात है। उपाधियों के साथ जब पद की प्राप्ति हो जाती है, तो कहना ही क्या? वकील, डॉक्टर या मिनिस्टर बन जाने पर तो आकाश में उड़ने लगते हैं। उनके पैर जमीन पर नहीं टिकते। वे भला माता—पिता का क्यों विनय करें। यह दुष्परिणाम है असंस्कारों का। यदि माताओं ने प्रारम्भ से ही सुसंस्कार दिये हों, तो यह स्थिति नहीं आ सकती।

कृष्ण वासुदेव आज नमन के लिए माता देवकी के पास पहुँचे। उस समय देवकी अपने कर्तव्य के विषय में गहन चिन्तन कर रही थी। वह उदास मुद्रा में बैठी थी। अन्यथा जब कृष्ण वासुदेव वन्दन के लिए आते, तब माता उनको देखकर बड़ी प्रफुल्लित होती थी और उन्हें आर्शिवाद देती थी। लेकिन आज कृष्ण ने देखा कि माता उदास बैठी है। मेरे आगमन की बात भी उन्होंने न जानी। नजदीक आकर कृष्ण ने माता के चरणों में मस्तक झुकाया। बन्धुओं! क्या आप भी इस प्रकार विनयपूर्वक गुरुजनों के सन्मुख मस्तक नमाते हैं। क्या संतों को भी विधिपूर्वक उठ—बैठकर वंदना करते हैं या खड़े—खड़े ही 'मत्थरण वंदामि' कर लेते हैं? शरीर को कष्ट कौन दे? संतों को आपकी वन्दना की कामना नहीं है, लेकिन यह वन्दना की विधि नहीं है। यह अविनय और अविधि है। मुँह के आगे रुमाल या दुपट्टा लगाकर उठ—बैठकर वन्दना करने और चरण छूने से संतों के प्रति विनय प्रकट होता है और आपको अभिमान गलता है। माता—पिता आदि गुरुजनों को मस्तक नमाकर वन्दन करना चाहिए।

कृष्ण वासुदेव ने अपना मस्तक माता देवकी के चरणों में झुकाया। प्रगाढ़ स्पर्श से माता का ध्यान आकर्षित हुआ। माता बोली— कन्हैया! आ गया रे!

कृष्ण बोले— हाँ, माताजी! मैं आ गया। परन्तु आज आप उदास क्यों हैं? क्या बात है? आपका पुत्र त्रिखंडाधिपति कहलाता है, सारे राज्य की जनता की सुधि लेनेवाला है, प्रत्येक व्यक्ति के आंसू पोंछनेवाला है, उसकी माता दुःखी और उदास हो, यह मैं नहीं देख सकता। मुझ से या परिवार के किसी सदस्य से या अन्य किसी व्यक्ति से कोई त्रुटि हुई हो, तो उसका निवारण करने को तैयार हूँ। आप बताइये, आप उदास क्यों हैं? माता बोली— कृष्ण! तू बड़ा विनयी और गुणी है। किसी से कोई त्रुटि नहीं हुई है, न किसी साधन—सामग्री की ही कमी है। तदपि विधि की विडम्बना है कि तेरी माता बड़ी दुःखी है।

कृष्ण—मेरी माता दुःखी है, तो दुनिया में सुखी कौन होगा?

माता—लाल! मेरा दुःख कुछ और ही प्रकार का है! मुझे सारी सुख—सुविधा की सामग्री प्राप्त है, सारा परिवार विनयपूर्वक मेरी सेवा में रत है, परन्तु लाल! मैंने तुम्हारे जैसे सात लालों को जन्म दिया, लेकिन मातृत्व के कर्तव्य का निर्वाह करने का आनन्द मैं प्राप्त न कर सकी। यही मेरी चिन्ता का विषय है। तेरा लालन—पालन गोकुल में हुआ, तेरे जन्म से पहले तेरे छह भाई जन्मे, जिनके विषय में मैं समझती थी कि वे कंस के द्वार मार दिये गये। परन्तु अब ज्ञात हो गया कि वे सुरक्षित हैं और मुनि बनकर आध्यात्मिक साधना कर रहे हैं। ऐसी असाधारण अद्वितीय सात सन्तानों को जन्म देने के बावजूद मैं मातृत्व के दायित्व से वंचित रही, यही मेरी उदासी का कारण है।

कृष्ण ने सोचा—माता मातृत्व के कर्तव्यों को न निभा पाने के कारण चिन्तित है, उन्हें ऐसा प्रसंग प्राप्त नहीं हुआ, तो क्यों न मैं बालक बनकर उनकी इच्छा की पूर्ति कर दूँ। उन्होंने कहा—माता! आप चिन्ता न करें। मैं अभी आपकी इस अभिलाषा

की पूर्ति कर देता हूँ। ऐसा कहकर कृष्ण ने अपनी वैक्रिय लब्धि से छोटे शिशु का रूप धारण कर लिया और माँ की गोद में बैठ गये।

माता अपने छोटे शिशु को, छोटे से कन्हैया को मातृत्व स्नेह से सिंचित करने लगी अर्थात् विविध प्रकार से लाड़ लड़ाने लगी। माँ की ममता उमड़ पड़ी और वात्सल्य की सरिता बहने लगी।

कृष्ण अपनी बाल लीला बताने लगे। वे बोले—माँ! दूध। माता कटोरे में दूध भर लायी और पिलाने लगी। दूध का एक घूँट लेते हुए बच्चा बोला—माँ मीठा नहीं है। यह तो फीका है। माता ने दूध मीठा करने के लिए शक्कर डाली। फिर एक घूँट लेकर बच्चा बोला—माँ! यह तो बहुत मीठा हो गया, मैं नहीं पीता। शक्कर निकाल लो। माँ! शक्कर निकाल लो।

माता—दूध में से शक्कर नहीं निकाली जा सकती, बेटा! दूसरा दूध ले आती हूँ।

बालक—नहीं, माँ! मैं दूसरा दूध नहीं पीऊँगा। इसी में से शक्कर निकालो, माँ।

बच्चा मचलने लगा। हठ करने लगा। बाल हठ प्रसिद्ध ही है। माता हैरान हो गयी! बोली—लाल! तुम्हारी लीला समेटो।

कृष्ण ने वैक्रिय लब्धि समेट ली। वे अपनू मूल स्वरूप में माता के समाने खड़े हो गये, माता से पूछा—माँ तुम्हारी तुष्टि हुई?

देवकी मात बोली—लाल कृत्रिम तो कृत्रिम ही है और कृत्रिमता से तुष्टि कैसे हो सकती है? मेरी तुष्टि तो तब हो, जब तुम्हारा छोटा भाई जन्म ले और मैं उसके प्रति सहज और स्वाभाविक रूप से मातृत्व के कर्तव्यों को निभाने का आनन्द ले

सकूँ। कृष्ण बोले—माता! तुम चिन्ता न करो। मैं यह प्रयत्न करूँगा। आपको सन्तुष्ट करना मेरा कर्तव्य है। इस कर्तव्य को निभाने का मैं पूरा—पूरा प्रयत्न करूँगा।

यह कहकर कृष्ण वहाँ से चले गये। उनके सामने एक समस्या खड़ी हो गयी। लघु भ्राता कहाँ से लाऊँ? सोचते—सोचते उन्हें ध्यान आया कि माता के कथन से ज्ञात होता है कि अतिमुक्तक मुनि ने जो कहा था कि आठ पुत्रों को जन्म देनेवाली तुम्हारी सरीखी अन्य माता न होगी।

सात भाई हम हो चुके हैं, तो अवश्य ही आठवें की संभावना है। मुनि के वचन अन्यथा नहीं हो सकते। अतएव प्रयत्न करना चाहिए। इस कार्य में उन्होंने अपने पूर्व सांगतिक देव की सहायता लेने का विचार किया।

food'khyrk

वे पौषधशाला में आये। वहाँ आकार स्वयंमेव भूमि का प्रमार्जन किया। ध्यान देने की बात है। त्रिखंड के नाथ अपने हाथों से भूमि को बुहारते हैं। इसके लिए उनके यहाँ नौकर—चाकरों की कमी थी क्या? नहीं। सम्यग्दृष्टि आत्माओं का प्रत्येक व्यवहार विवेक के लिए ही रहता है। हाथ से काम करने में विवेक और यतना का पालन विशेष रूप से होता है। नौकरों के द्वारा कराये गये काम में विवेक और यतना का कोई ख्याल नहीं रखा जाता है। धर्म स्थान में विशेष रूप से विवेक और यतना का उपयोग रखा जाना चाहिए।

हाथ से काम करना अपनी पोजीशन के खिलाफ नहीं, अपितु अपनी सही पोजीशन को बढ़ानेवाला होता है। जीवन में यदि सात्विकता लानी है, जीवन को साफ—सुथरा रखना है, तो सादगी का अवलम्बन लेना होगा। यह तड़क—भड़क, आडम्बर,

दिखावा, मिथ्या बड़प्पन छोड़ना होगा। जब बड़े समझे जानेवाले व्यक्ति हाथ से विवेकपूर्वक काम करना शुरू करेंगे, तो उनका जीवन तो सुधरेगा ही, साथ ही दूसरों के समक्ष आदर्श उपस्थित कर सकेंगे। श्रेष्ठ पुरुष जैसा आचरण करते हैं, वैसा ही आचरण अन्य लोग भी करने लगते हैं। इसलिए समाज में बड़े समझे जानेवाले जाने-माने व्यक्तियों की बहुत बड़ी जवाबदारी होती है। वे अपने व्यवहार के द्वारा समाज को ऊँचा भी उठा सकते हैं और नीचे भी गिरा सकते हैं। यदि वे अनैतिक बनते हैं, अविवेकपूर्ण कार्य करते हैं, आडम्बर और दिखावा करते हैं, तो समाज विकृत बनता है। यदि वे सुधरते हैं, तो समाज सुधरता है। अतएव बड़े लोगों की बड़ी जिम्मेदारी हुआ करती है। बड़े लोगों को विवेक सदा जागृत रखना चाहिए।

धर्मस्थान की भी अपनी मर्यादा होती है। विवेक के साथ उसका निर्वाह होना चाहिए। संतों के साथ बात-चीत करते समय यतना का ध्यान रखना चाहिए। खुले मुँह नहीं बोलना चाहिए। मुँह के सामने रूमाल लगाना चाहिए। यह अपनी धार्मिक मर्यादा है। साथ ही यह शिष्टाचार भी है। कई बार बोलते समय मुँह से थूक भी निकल पड़ता है, यह अशिष्टता है। अतएव विवेक का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए। धर्मस्थान में गमनागमन करते समय ईर्या समिति का भी उपयोग करना चाहिए। रात्रि को पूंजकर चलना चाहिए। इसके लिए उपकरणों की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए। धर्मस्थानकों में बैठकें, पूंजणियाँ, रजोहरण, मुखवस्त्रिका, माला आदि उपकरणों की उपादेयता रहती है, ताकि बाहर से धर्माराधना करने हेतु आनेवाले भाई-बहनों को भी उनका लाभ मिल सके। कई स्थानों पर ऐसी व्यवस्था देखने को मिलती है। देशनोक का संघ भी धर्म प्रभावना में विचक्षण और विवेक-सम्पन्न है।

कृष्ण ने पौषधशाला में जाकर भूमि का प्रमार्जन किया। शय्या संस्तारक बिछाया और तीन दिन का पौषधोपवास अंगीकार किया। अपने पूर्व सांगतिक देव को आह्वान करने हेतु उसका एकाग्रचित से ध्यान करने लगे।

ध्यान की महिमा अपार है। एकाग्रचित से जब मन के तार जुड़ते हैं, तो देवता तो क्या, प्रभु के साथ भी संबंध जुड़ सकता है। आप लोगों को फोन पर बात-चीत करने का अभ्यास है ही! जब आप डायल घुमाते हैं या आपरेटर से नम्बर माँगकर तार जोड़े जाते हैं, तब बम्बई, कलकत्ता आदि दूर-दूर के स्थानों से आप बातचीत करते हैं। फोन करते समय सब ओर से अपना ध्यान हटाकर आप केवल सम्बंधित व्यक्ति से ही बात करने में तन्मय रहते हैं, तब बात हो पाती है। इसी तरह जब चित्त के तार जुड़ते हैं, तब दूर-दूर के पदार्थों से सम्पर्क किया जा सकता है।

कृष्ण ने एकाग्र होकर देव का चिन्तन किया। तीन दिन की आराधना से देव संतुष्ट होकर उनके पास आया और बोला कि कहिये, मुझे क्यों याद किया गया है? आप क्या चाहते हैं? कृष्ण ने अपना अभिप्राय उसके सामने रखा। देव ने तथाऽस्तु कहा और अन्तर्धान हो गया।

यथासमय देवकी ने आठवीं सन्तान को जन्म दिया। वह अत्यन्त सुकोमल और सुन्दर बालक था। उसका नाम गजसुकुमार रखा गया। महारानी देवकी ने अपने अरमानों ने अनुसार उसमें सुसंस्कार भरें। मातृत्व के कर्तव्यों का सम्यग् निर्वाह करते हुए उसने गजसुकुमार के जीवन को एक अनोखे ढाँचे में ढाला। कर्तव्य-दृष्टि को लेकर देवकी ने अपने-जीवन में जो कमी महसूस की थी, उसकी पूर्ति गजसुकुमार के जीवन-निर्माण के माध्यम से कर रही है। उसकी चिर-साधना, उसके अरमान, उसके मनोरथ परिपूर्ण हुए। उसने अपने को धन्य

माना! वह कृतार्थ हुई।

माता देवकी के संस्कारों से गजसुकुमार के जीवन ने नयी दिशा पायी। वह विरक्त हो गये और अनुपम आत्मसाधना में लीन हुए।

आज तो बड़ी विचित्र स्थिति है। यदि कोई व्यक्ति धर्म—साधना के मार्ग में लगना चाहता है, तो उसके मार्ग में रोड़े अटकाये जाते हैं, अवरोध खड़े किये जाते हैं, उसमें साधना से हटाने के प्रयास किये जाते हैं। यदि वह व्यक्ति व्यसनों में लग जाये, उन्मार्ग पर चलने लगे, बुरे रास्ते पर चल पड़े, तो कोई आकर हस्तक्षेप नहीं करेगा, कोई उसे आकर पूछेगा भी नहीं। परन्तु ज्योंही वह साधना के पथ पर चलने को उत्सुक होता है, उसके मार्ग में अवरोध उपस्थित करते हैं। विरले ही व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो उस आत्मा को साधना के पथ पर चलते हुए प्रोत्साहित और अनुप्रणित करते हैं।

बन्धुओं! सम्यग्दृष्टि आत्मा अपने नौ अन्तरंग नेत्रों को सदा खुला रखता है। वह अपने कर्तव्य बोध को जागृत रखता है, सुविधि से चलता है और सुविधि को ही अपनाता है। इसलिए प्रार्थना की कड़ियों से कहा है :-

Jh I fof/k ftuśoj oān, gks onr iki igk;A

आप भी सुविधिनाथ परमात्मा को वन्दन करिये। उनकी बतायी हुई सुविधि पर चलिए। आपका भी जीवन मंगलमय बनेगा।

pru! vius?kj vkvk

- 0 pŕU; vkRek dh e(ä rHh gkxh] tc ekj&efnjk
dk iHko nij gkxkA
- 0 rhFkdjksdsiFk ij ohj i#k gh py I drsgA
- 0 I e; &ek= dk iækn I d kj eaHKVdk nrk gA
- 0 Lo- tokjpk; Zdh vnHkq I fg".kqk vkj I gu&
'knyrk gekjsfy, vkn'kz mnkj .k gA
- 0 HknfoKku&vkRek vkj 'kjhj dsHkn dks I e>ukA
- 0 JhÑ".k dh d#.kk , oafucy dks I g; kx dh Hkouk
I k/ku&I Ei é 0; fä; kadsfy, ijd I msk gA

Jh I fof/k ftuŕoj oän; sgkŕ onr iki iŕk; AA
dkdlh uxjh Hkyh gkŕ Jh I qho uikyA
jkek rl iVjkuh gkŕ rl I q ije ÑikyAA
iHkq R; kxh jktuh gkŕ yh/kk I a e HkjA
fut vkre vuŕko Fkdh gkŕ ikE; k in vfodkjA

v"V deZ uks jktoh gkḥ ekḥ i fke {k; dhuA
I qk I efd r pkfj= uks gk i je {kk; d xqk yhuAA
Kkukoj.k n'kukoj.k gkḥ vūrjk; fd; ks vūrA
Kkun'kū cy ; s frgḡ gk i dV; k vuūrkuūrAA
I qof/k ftu'oj oān; s gk-----

प्रभु सुविधिनाथ के चरणों में प्रार्थना की कड़ियों के माध्यम से वन्दन करने के लिए कवि प्रेरणा दे रहा है। प्रभु के वन्दन करने से पाप के पुंज नष्ट हो जाते हैं। क्षीण हो जाते हैं। यह सही है कि प्रभु का वन्दन पापों का नष्ट करनेवाला है। लेकिन यह इतना सस्ता सौदा नहीं है। केवल हाथ जोड़ लिए या मस्तक नमा लिया, इतने मात्र से प्रभु का वन्दन नहीं हो जाता, न इतना कर लेने मात्र से पाप के पुंज नष्ट होते हैं। जब सुविधिनाथ परमात्मा और उनकी बतायी हुई सुविधि (सन्मार्ग) मन की गहराई में उतरती है, तब सहज रूप से परमात्मा के प्रति जो समर्पण भावना पैदा होती है, वही वास्तविक वन्दन है और ऐसा वन्दन ही पाप पुंज को नष्ट करने में समर्थ होता है।

अत्मा अपने मूल रूप में स्फटिक मणि के समान निर्मल है, परन्तु बाह्य उपाधियों को लेकर वह विकारी भावों से मलिन हो रही है। उस पर अनादिकाल से कर्मों की परतें चढ़ी हुई है। इनके कारण वह आत्मा संसार की विविध विडम्बनाओं का अनुभव कराती हुई विभिन्न दशाओं को प्राप्त होती रहती है। विकारी भावों के कारण आत्मा की पवित्रता कलंकित हुई, उसका चैतन्य अवरुद्ध हुआ, मोह—माया के बन्धनों में वह कैद हुई और मोह की प्रगाढ़ निद्रा ने उस पर अपना आधिपत्य जमाया।

ekg dh efnjk

विकारी भावों से परिणत आत्मा की ज्ञान—ज्योति को मोह की काली घटाओं ने आवृत कर लिया, मोह की प्रगाढ़ निद्रा ने उसके सहज विवेक को विलुप्त कर दिया और मोह की मदिरा ने उसे उस स्थिति में ला पटका, जहाँ वह अपना घर छोड़कर दूसरे के घर को अपना मानने लगी, वह स्व—तत्त्व को छोड़ पर—तत्त्व में रमण करने लगी! वह अपने चैतन्य स्वरूप को छोड़कर जड़ पुद्गलों की परिणति को अपना मानने लगी।

यह शरीर मेरा है, यह भौतिक साधन—सामग्री मेरी है, मकान मेरा है, आभूषण और वस्त्र मेरे हैं। मोह की इस मादक मदिरा ने आत्मा को केवल बेभान ही नहीं बनाया, वरन उसे इतना सम्मोहित कर लिया कि उसे जड़ पुद्गल ही अच्छे लगने लगे, वह उनमें ही रमण करने लगी, पुद्गल ही पुद्गल उसकी दृष्टि में चढ़ने लगे, वह अपने स्वरूप को तो सर्वथा भूल ही गयी! कितनी मादक है यह मोह की मदिरा! बड़ी दुर्दशा की है इसने आत्मा की! अपना घर छोड़कर जो दूसरे के घर में जाता है, उसकी कैसी दुर्दशा होती है, यह आप सब समझते ही हैं!

आत्मा की इस दुर्दशा से मुक्ति तभी हो सकती है, जब मोह की मदिरा स्व—भाव को समझने लगेगी, जब उसका पुद्गल के प्रति सम्मोहन हटेगा, जब उसकी दृष्टि सही को समझने लगेगी, जब उसे अपने मूलस्वरूप का ध्यान आयेगा, जब वह पुनः अपने घर लौटेगी, तब वह दुर्दशा से छूट सकेगी। यदि आत्मा को इस दुर्दशा से छुटकारा पाना है, तो उसे अपने घर आना पड़ेगा, पुद्गलों के सम्मोहन को भगाना पड़ेगा, मोही प्रगाढ़ निद्रा को छोड़ना होगा और अपने मौलिक स्वरूप को पहचानना होगा, पौद्गलिक सम्मोहन के विरुद्ध सतत जागृति रखनी होगी। पूर्वाचार्यों ने इस जागृति का संदेश देते हुए कहा है :-

tkxjg! .kjk f.kPa
tkxjek.klI oM<rs oM<

—वृहत् कल्पभाष्य

मनुष्यों! जागो! निद्रा को छोड़ो। जो जागता है, उसकी बुद्धि भी जागती है। उसके विकास की अनन्त सम्भावनाएँ सामने खड़ी रहती हैं।

प्रभु सुविधिनाथ ने मोह की प्रगाढ़ निद्रा को भंग करने और आत्मा को जागृत करने के लिए सुविधि बतायी है। न केवल उन्होंने सुविधि ही बतायी, परन्तु उस विधि पर स्वयं चलकर जगत के जीवों के सम्मुख आदर्श उपस्थित किया। वे आत्मानुभव से निर्विकार स्वरूप को प्राप्त हुए।

प्रभु सुविधिनाथ ने आत्मा के यथातथ्य स्वरूप को समझा और पौद्गलिक पदर्थों की चुम्बकीय आकर्षण शक्ति को आत्मानुभूति से निष्फल कर दिया। वे राज्य का परित्याग कर स्व-स्वरूप की साधना में लगे। सत्ता और सम्पत्ति में अजीब मादक शक्ति हुआ करती है, यही मधु के बिन्दु हैं, जिनमें संसारी प्राणी ललचा रहे हैं। सत्ता और सम्पत्ति का नशा मानव को मदहोश बना देता है, वह अपने आप पर नियन्त्रण खो देता है, उसकी विवेक-दृष्टि विलुप्त हो जाती है, उसके अन्तर-नेत्र बन्द हो जाते हैं, आध्यात्मिक दृष्टि से वह अंधा बन जाता है। सत्ता और सम्पत्ति से आसक्ति हटे बिना मानव को सही रास्ता नहीं दिखायी देता। इस तथ्य को सुविधिनाथ परमात्मा ने समझा और दुनिया के लोगों को यह तथ्य समझाने के लिए उन्होंने राज्य का परित्याग कर दिया।

न केवल सुविधिनाथ प्रभु ने अपितु सभी तीर्थकरों ने इस पद्धति को अपनाया है। उन तीर्थकरों के द्वारा उपदिष्ट मार्ग पर

चलने की इच्छावाले तथा उनके अनुशासन में रहनेवाले अनेकों महापुरुष इस मार्ग पर अग्रसर हुए हैं। आचारांग में कहा गया है :-

i .k; k ohjk egkolfgA

वीर पुरुष इस मार्ग पर/ इस महापथ पर चले हैं, चलते हैं और चलते रहेंगे। जो इस महापथ पर बढ़ते हैं, वे सुविधिनाथ परमात्मा की तरह निर्विकार पद को प्राप्त करते हैं। इसीलिए कहा है :-

i Hkqk R; kxh jktuh gkḥ fy/kks l æ e Hkja

fut vkre vulko Fkdh gkḥ i kE; k in vfodkjA

Jh l fof/k ftuḥoj oān; sgkḥ olhr iki i yk; A

कवि जिनको वन्दन करने की प्रेरणा दे रहा है, वे सुविधिनाथ राजसिंहासन पर आसीन सुविधिनाथ नहीं हैं, अपितु जिन्होंने राजसिंहासन को छिटकाया और जिन्होंने अपने आत्मानुभव के आधार पर निर्विकार स्वरूप प्राप्त किया, उन सिद्ध स्वरूपी भगवान को वन्दन करने के लिए प्रेरणा दे रहा है। वन्दन करनेवाले जो भक्तजन परमात्मा के इस स्वरूप को अपने सामने रखते हैं और अपनी आत्मा के स्वरूप को भी वैसा ही जानते हैं, वे कर्मों के आवरणों से मुक्त हो सकते हैं।

v"V dekḥdk jktk %ekg

अनन्त ज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी परमात्मा ने आत्मा के प्रबल विरोध और प्रमुख प्रतिद्वन्दी आठ कर्मों का निरुपण किया है। आत्मा की अनन्त शक्ति को प्रतिहत करनेवाले ये कर्म बड़े प्रबल हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय—ये आठ कर्म आत्मा को अपने घेरे में कैद किये हुए हैं। स्वतन्त्र और सार्वभौम चेतनराज, पराये घर

जाकर—पर परिणति में पड़कर—कर्मों के चंगुल में फँस गया है। उसकी स्वतन्त्रता, सार्वभौमता, अनन्त शक्ति—सम्पन्नता छीन ली गयी है। कर्म—लुटेरों ने उसके वैभव को लूट लिया है। वह अभी दीन—हीन—अवस्था में कर्मों की कैद में पराधीन दशा भोग रहा है। इन कर्म—लुटेरों का सरदार मोह बड़ा दुर्दान्त हैं। वह आठ कर्मों का राजा है। संसार में इस मोहराज का बड़ा वर्चस्व है। चारों तरफ इसका प्रभाव फैला हुआ है। गजब की मोहनी शक्ति है इस में! इसके बन्धनों को तोड़ना आसान नहीं, बहुत टेढ़ी खीर है। दृढ़ फौलाद और लोहे की जंजीरो को तोड़ना आसान है, परन्तु मोह के कच्चे धागे को तोड़ना बहुत कठिन है! कैसी मोहनी शक्ति है मोह की! अपने पराक्रम से धरातल को कंपा देनेवाले बड़े—बड़े शूर—वीर इस धरातल पर आये हैं, दुनिया में उन्होंने तहलका मचाया है, परन्तु वे भी मोह की मोहनी शक्ति के सामने श्वान की तरह दुम हिलाते रहते हैं।

मोह की प्रबल शक्ति का रहस्य उसका विकराल स्वरूप नहीं, अपितु उसकी सम्मोहनी शक्ति है, मोह के विविध मायावी स्वरूप है। इन मायावी लुभावने विधि—रूपों से वह जगत के जीवों की—चेतन की—मति को भ्रान्त करता है। मति के भ्रान्त होते ही सब मिथ्या प्रतीति होने लगती है, वस्तु का स्वरूप भ्रान्त दिखायी देने लगता है। चेतन मिथ्यादृष्टि बन जाता है। उसकी निर्णायिका शक्ति लुप्त हो जाती है। वह सम्यक्—असम्यक् का निर्णय नहीं कर पाता, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का विवेक नहीं हो पाता। अतएव उसके सारे प्रयत्न विपरीत दिशा में होते रहते हैं। अपने मूल स्वरूप के प्रति वह असावधान रहता है और पर—पदार्थों को प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। यह मिथ्यादृष्टि ही उसे अनन्तकाल तक संसार—चक्र में परिभ्रमण कराती है। यह सब मोह की ही माया है। अतएव उसे सब कर्मों का राजा और संसार का मूल कहा जाता है।

सुविधिनाथ भगवान ने इस मोह का सर्वप्रथम क्षय किया। इसी बात का कवि ने प्रार्थना में संकेत देते हुए कहा :-

v"VdeZ uks jkt oh gks ekj i Fke {k; dhuA

I qk I efd r pkj = uks gks i je {kk; d xqk yhuAA

प्रभु सुविधिनाथ ने अष्टकर्मों के राजा मोहनीय कर्म का पहले क्षय किया और इसके फलस्वरूप उन्हें क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र की प्राप्ति हुई।

जिस प्रकार राजा के परास्त हो जाने पर सेना बिखर जाती है, उसी तरह मोहनीय कर्म के नष्ट हो जाने पर अन्य कर्म भी शिथिल बन जाते हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म रूप शेष बचे हुए घाती कर्म अन्तर्मुहूर्त—मात्र समय में नष्ट हो जाते हैं और आत्मा में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तशक्ति प्रकट हो जाती है। यही बात कवि ने इन पंक्तियों में कही है :-

Kkukoj .k] n'kukoj .k gkḥ vUrjk; fd; ks vUrA

Kku n'ku cy eafrgqgkḥ i xV; k vuUrkuUrA

Jh I fof/k ftuḥoj ofn; s gks-----

यह अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति ही आत्मा का अपने घर में लौट आना है। अपनी स्वाभाविक स्थिति को पा लेना है। यही सब संसारी आत्माओं का लक्ष्य और साध्य है।

HkUr /kj .k

कई व्यक्तियों की यह अभिलाषा रहती है कि माल भी खाना और मोक्ष में भी जाना। वे दोनों हाथ लड्डू रखना चाहते हैं, परन्तु ऐसा सम्भव नहीं है। कई अधूरे—अधकचरे विचारकों ने यह सस्ता नुस्खा भोले जीवों को भ्रमित करने के लिए पकड़ा दिया है। ऊपर—ऊपर से वह नुस्खा बड़ा मोहक और लुभावना

लगता है। हर कोई ऐसा सीधा—सरल तरीका अपनाना चाहता है। परन्तु बन्धुओं! याद रखना चाहिए कि एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती। पदार्थों का मोह भी बना रहे और मोक्ष भी मिल जाये—ऐसा कभी न हुआ है और न होगा। यदि ऐसा सीधा रास्ता होता, तो अतीत काल के तीर्थंकर और महापुरुष राज्य और वैभव—विलास के परित्याग का और वनों में रहकर कठोर तप और साधना करने का कठिन मार्ग न अपनाते।

भोग—विलास और ऐश्वर्य के वातावरण में रहकर केवल भावना के बल पर मोक्ष की साधना की बात जितनी सरल है, उसका आचरण उतना ही कठिन है। सत्ता और सम्पत्ति को, चाहे वह व्यक्तिगत हो या राष्ट्रीय हो, अपने अधीन रखनेवाला व्यक्ति अपनी भावना को सात्विक रख सके, यह अत्यन्त ही कठिन और दुःशक्य है। यदि भावना की शुद्धि से ही आत्मा को ऐसी परम उपलब्धि हो जाती होती, तो सुविधिनाथ भगवान या अन्य तीर्थंकर और दूसरे हजारों महापुरुष राज्य—वैभव को न छोड़ते और तपश्चर्या के कठोर मार्ग का अवलम्बन न लेते और न ऐसा करने का उपदेश ही देते। अतः इस मिथ्या धारण को दिमाग से हटा देना चाहिए। इस सस्ते नुस्खे के चक्कर में नहीं आना चाहिए। यदि इस नुस्खे का सहारा लिया जायेगा, तो यह आत्मवंचना होगी।

आत्मा की वर्तमान विडम्बनापूर्ण स्थिति पर—पदार्थों के संसर्ग के कारण ही तो है। इस संसर्ग को हटाये बिना आत्मा का उद्धार कैसे हो सकता है? पदार्थों की ममता—मूर्छा ही तो आत्मा को मलिन कर रही है। यदि हम आत्मा रूपी दर्पण को स्वच्छ करना चाहते हैं, तो इस ममता के मैल को धोना ही पड़ेगा। अतएव बाह्य पदार्थों की ममता का परित्याग करके ही साधना के मार्ग में आगे बढ़ा जा सकता है। अनेक महापुरुषों ने यही अपनाया है और इसी आत्मा को कर्मों की कैद से मुक्त किया है। अन्तगड सूत्र के

माध्यम से ऐसे ही महापुरुषों के चरित्र श्रवण कर रहे हैं।

xtl p̄k̄j ēq̄

त्रिखण्डाधिपति वासुदेव महाराज के भव्य भवन में जिनका जन्म हुआ, राजसी वैभव के बीच जिनका लालन-पालन हुआ, उस आत्मा ने अरिष्टनेमि भगवान का एक ही उपदेश सुना और उससे ही उसके जीवन ने नया मोड़ ले लिया।

भगवान अरिष्टनेमि ने ऐसा क्या उपदेश सुनाया होगा? गजसुकुमार को कोई अनोखा ही उपदेश दिया हो, ऐसी बात नहीं है। उपदेश तो वही होता है, जो आमतौर पर दिया जाता है। तीर्थकर उपदेश देने में कोई भेदभाव नहीं रखते। आचारंग में कहा गया है :—

tgk iq.klI dRFkb rgk r̄NLI dRFkA

tgk r̄NLI dRFkb rgk iq.klI dRFkA

—आचारंग

तीर्थकर सब जीवों को समान रूप से उपदेश प्रदान करते हैं। पुण्यवन्त और श्रीमन्त को जिस भाव से उपदेश देते हैं, उसी भाव से सामान्य व्यक्ति को भी उपदेश देते हैं। सामान्य व्यक्ति को जिस भाव से हितोपदेश देते हैं, उसी भाव से अभिजात्य-श्रेष्ठ वर्ग को भी उपदेश देते हैं।

भगवान नेमिनाथ की देशना सब जीवों के लिए समान रूप से हुई थी। गजसुकुमार के लिए कोई विशेष प्रकार का उपदेश नहीं दिया गया था। पात्र के अनुसार उपदेश का प्रभाव हुआ करता है। गजसुकुमार सुयोग्य पात्र था। उसकी आत्मा सुसंस्कारित और निर्मल थी। स्वच्छ हृदय पर उपदेश का प्रभाव विशेषतया अंकित होता है। जिसका हृदय स्वच्छ नहीं होता,

जिसके मन में सरलता नहीं होती, उस पर हजारों उपदेशों का भी कोई असर नहीं होता। गजसुकुमार की आत्मा विशिष्ट संस्कारों से सम्पन्न थी, उसका हृदय स्फटिक के समान निर्मल था। अतएव प्रभु की वाणी उसके अन्तर-तर में उतर गयी। वह एक ही उपदेश से प्रतिबुद्ध हो गया। प्रभु का उपदेश सीधा-सादा था—

**‘cgq i q; dj k i q; Fkh uj ng ekuo ukseY; kA
rks i .k vjsHko pØ uks , ds ufg v lA/ks VY; kA**

भाइयों! बहुत पुण्य के पुंज एकत्रित होते हैं, तब मानव का शरीर प्राप्त होता है। यह अत्यन्त दुर्लभ उपलब्धि है। ऐसे सुन्दर सुअवसर को प्राप्त करके यदि भवचक्र को मिटाने का प्रयास नहीं किया और आत्मा की वही स्थिति बनी रही, भवचक्र का एक भी चक्र कम नहीं हुआ, तो बहुत पुण्य से प्राप्त मानव-भव अकारथ ही चला जायेगा। चिन्तामणि रत्न पाकर कौए को उड़ाने में यदि उसे फैंक दिया, तो चिन्तामणि का पाना-न पाना एकसा ही हो जाता है। मानव-भव चिन्तामणि रत्न के समान है। इसका सदुपयोग आत्मा के कल्याण के लिए कर लेना चाहिए।

प्रभु की इस आशय की देशना गजसुकुमार के कानों में ही नहीं, हृदय में उतर गयी। उसे तीन खण्ड का आधिपत्य भी तुच्छ प्रतीत होने लगा। उन्होंने प्रभु के पास संयम अंगीकार करने का संकल्प कर लिया।

घर आकार गजसुकुमार ने माता-पिता और परिजनों के समक्ष अपना संकल्प प्रस्तुत किया और संयम अंगीकार करने हेतु अनुमति चाही है। गजसुकुमार की प्राप्ति जिन परिस्थितियों में हुई, उनको दृष्टि में रखते हुए माता-पिता का विशेष अनुराग उनके प्रति होना स्वाभाविक था। देवकी महारानी, महाराज वसुदेव तथा त्रिखण्ड के अधिपति कृष्ण वासुदेव ने गजसुकुमार

को अपनी-अपनी पद्धति से समझाने का प्रयास किया। उन्होंने उन्हें त्रिखण्ड का स्वामी बनाने की अभिलाषा व्यक्त की और उनको सिंहासन पर अभिषिक्त भी कर दिया।

गजसुकुमार का वैराग्य कच्चा नहीं था, जो सिंहासन पाकर उतर जाये। वैराग्य उनके अन्तःकरण में जागृत हुआ था। राज्य-वैभव को उन्होंने तृण के समान तुच्छ समझा। अन्ततोगत्वा उन्होंने समग्र राज्य वैभव और विलास की साधन-सामग्री को नासिका के मैल की तरह छिटका दिया। उन्हें यह भी ज्ञात था कि उनके विवाह-सम्बंध-हेतु अनेक कन्याएँ कन्याओं के अन्तःपुर में एकत्रित थीं। उन सबको छोड़कर और कुटुम्ब के मोह-बन्धनों को तोड़कर वे उमंगपूर्वक भगवान अरिष्टनेमि के चरणों में पहुँच गये। वे संयम पथ के पथिक बन गये।

vflre vkjk/kuk

गजसुकुमार अपने साथ पूर्वभव की कुछ विशिष्ट योग्यताओं और उपलब्धियों को लेकर आये थे। वे चरम शरीरी आत्मा थे। उनकी आत्मा की गहराई में कोई अनोखे ही बीज रहे हुए थे, जिन्हें अनन्त ज्ञानी नेमिनाथ प्रभु ही जानते थे। उनकी आत्मा में रहे हुए उन अदृष्ट संस्कारों के कारण दीक्षा ग्रहण करने की प्रथम दिन ही उन्हें अन्तःप्रेरणा हुई कि “मैं शीघ्र से शीघ्र, जिस प्रयोजन को लेकर दीक्षित हुआ हूँ, उसे पूर्ण कर लूँ। मैं इसी जन्म में जन्म-मरण का रोग मिटा डालूँ। सम्पूर्ण वासनाओं और शरीर तक के मोह का निवारण शीघ्र से शीघ्र कर डालूँ।” यह भावना लेकर वे प्रभु अरिष्टनेमि के पास पहुँचे और उनसे विनयपूर्वक निवेदन करने लगे कि “भंते! मुझे ऐसा मार्ग बताइये, जिससे मैं शीघ्रताशीघ्र अन्तिम उपलब्धि को प्राप्त कर सकूँ। मैं परम पद को प्राप्त करने हेतु लालायित हूँ। विलम्ब मुझे सह्य नहीं है। मैं शीघ्र ही साध्य को प्राप्त करना चाहता हूँ।”

भाइयों! कितनी तीव्र और उदात्त भावना है गजसुकुमार मुनि की! बात करना सहज है, कथा कह देना सरल है, लेकिन जीवन में मुक्ति के प्रति इतनी उत्कृष्ट अभिलाषा, इतनी तीव्र उमंग हो, यह बड़ा कठिन कार्य है। आत्मसाधना के प्रति इतनी उत्कृष्ट लगन होना एक अभूतपूर्व घटना है। गज के तलुवे के समान सुकोमल और सुकुमार शरीर होते हुए भी मोक्षप्राप्ति के कठोर मार्ग के प्रति तत्पर हो जाना, क्या कम विस्मयजनक है? सचमुच गजसुकुमार मुनि का चरित्र गजब की प्रेरणा देनेवाला आदर्श है।

भाइयों! यदि आपकी ही भालाई के लिए आपसे कहा जाये कि आप अपने इस दुर्व्यसन को छोड़ दीजिए, तो आप झट कह देंगे—“महाराज! एकदम तो नहीं, थोड़ा—थोड़ा करके छोड़ने का प्रयास करेंगे। यदि यों थोड़ा—थोड़ा करने में ही रह गये और अगले जन्म का आयुष्य बंध गया, तो जीवन की स्थिति कुछ और ही हो जायेगी। इसलिए जो करना हो, सो शीघ्रता से कर लो। प्रभु महावीर ने कहा :—

! e; axkş e! ek iek; ,

—उत्तराध्ययन सूत्र

“गौतम! समय—मात्र का भी प्रमाद न करो!” जीवन का कोई ठिकाना नहीं! एक श्वास के बाद दूसरा श्वास आयेगा भी या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। ऐसी स्थिति में आज का काम कल पर डालना मूर्खता है। कल—कल करते जीवन का प्रवाह बहता चला जाता है और न जाने किस क्षण यह रुक जाये? क्या भरोसा है जीवन का? अतएव धर्म—साधना में तनिक भी प्रमाद नहीं करना चाहिए।

अरिष्टनेमि भगवान सर्वज्ञ थे। उन्होंने गजसुकुमार मुनि के भवितव्य को अपने ज्ञान द्वारा जान लिया था। उन्हें ज्ञात था

कि यह असाधारण आत्मा असाधारण रीति से असाधारण पराक्रम द्वारा अपने लक्ष्य को अविलम्ब प्राप्त करेगा। इसलिए उन्होंने कहा—“मुनिवर! अति शीघ्र मुक्ति—लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भिक्षु की बारहवीं प्रतिमा का आराधन करना पड़ता है।”

गजसुकुमार—“भंते! मुझे इस प्रतिमा का स्वरूप समझाइये। मैं इसका आराधन करूँगा।”

प्रभु बोले—“देवानुप्रिय! इस प्रतिमा का श्मशान में आराधन किया जाता है। वहाँ अकेले ध्यानमग्न रहना होता है। साथ में दूसरा कोई नहीं रहता। एक रात्रि का उसका कालमान है। इस स्थिति में देव—दानव—मानव—पशु सम्बन्धी कोई भी उपसर्ग आये, तो उससे भयभीत न होते हुए समभाव से सहन करना होता है। यदि इस प्रतिमा को यथारीति से साध लिया जाता है, तो अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान अथवा केवलज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। यदि कोई साधक साधना से विचलित हो जाये, तो वह पागल हो जाता है, दिमाग का नियंत्रण खो देता है और जीवन का रूपक बदल जाता है। ऐसी विकट है यह साधना!”

गजसुकुमार मुनि—“भंते! मुझे आज्ञा दीजिये। मैं महाकाल श्मशान में जाकर बारहवीं भिक्षु प्रतिमा का आराधन करूँगा।”

प्रभु सर्वदर्शी अरिष्टनेमि भावि—भाव के ज्ञाता थे। त्रिकाल की बात उनके ज्ञान में झलकती थी। उन्होंने आज्ञा प्रदान कर दी। शास्त्रीय दृष्टि से श्मशान में वही साधना कर सकता है, जिसकी 29 वर्ष की अवस्था और 20 वर्ष की दीक्षा पर्याय हो। गजसुकुमार मुनि में ये दोनों बातें नहीं थीं। वे तो उसी दिन के दीक्षित थे। परन्तु केवलज्ञानी प्रभु अपने ज्ञान में समस्त भावी घटना चक्र को देख रहे थे। विशेष योग्यता, विशेष परिस्थिति, विशेष द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की परिणति को लक्ष्य में रखकर उन्होंने इस प्रतिमा को साधने की अनुमति दी।

गजसुकुमार मुनि प्रतिमा-आराधन हेतु उस रात्रि में श्मशान में जाकर ध्यानस्थ खड़े हो गये। सूर्यास्त के समय सोमिल नामक ब्राह्मण उधर से होकर निकला। मुनि को देखकर उसके मन में वैर की भावना जागृत हुई। पूर्वजन्म के कर्मों का सम्बन्ध अनेक जन्मों तक साथ में रहता है। पूर्व-वैर की तीव्र भावना ने सोमिल को पागल बना दिया। पागल भी अनेक प्रकार के होते हैं। आवेश में भी पागलपन होता है। क्रोध जब उबलता है, तो इन्सान बेभान और पागल बन जाता है। पूर्व वैर ने सोमिल को पागल और अन्धा बना दिया। उसने सोचा-यह राजकुमार, जिसके लिए मेरी कन्या की याचना की गयी थी-साधु बनकर श्मशान में खड़ा हो गया। यह अकारण मेरी कन्या को मझधार में छोड़ आया है। अब मैं इस मजा चखाता हूँ। यह सोचकर अपने पास में पड़ी हुई गीली मिट्टी से गजसुकुमार के मस्तक पर पाल बाँधी और चिता में से खैर के दहकते अंगारे ठीकरी में भरकर उस दुष्ट ने उसके मस्तक पर उड़ेल दिये। कितनी भयंकर क्रूरता, कितनी नृशंसता और कितनी नीचतम दुष्टता! इससे बढ़कर दुष्टता और क्या हो सकती है? पाप की कितनी पराकाष्ठा, प्रतिशोध की कितनी भयंकरता! इन्सान का कैसा दानवी रूप!

बन्धुओं! कितना रोमाँचक प्रसंग है। सुनते ही रौंगटे खड़े हो जाते हैं, दिल दहलने लगता है। कोई जादूगर का खेल नहीं है! मस्तक पर अंगारे धधक रहे हैं, परन्तु मुनिराज का चित्त एकदम शान्त! न क्रोध है, न द्वेष है, न आकुलता है, न व्याकुलता। वे अडोल ध्यानमुद्रा में अवस्थित हैं! धन्य है! गजसुकुमार की यह अद्भुत सहनशीलता! कितना अद्भुत है यह पौरुष! कितनी उत्कृष्ट है यह निर्माह-दशा!

fuektj dh i jkd"Bk

मस्तक पर अंगारे धधक रहे हैं। उधर मुनि के शान्त

हृदय में चिन्तन की अजस्र धारा बह रही है। वे सोच रहे हैं—जो जल रहा है, वह मैं नहीं हूँ। जो मैं हूँ, वह जल नहीं सकता! यह शरीर तो एक दिन जलने ही वाला है, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो कालान्तर में, उसकी अन्तिम परिणति इसी रूप में होनी है। यदि वह आज ही इस स्थिति में पहुँच रहा है, तो दुःख किस बात का? पुद्गल पुद्गल में मिल रहा है! मेरा चेतन तो शाश्वत है, वह अजर—अमर है। वह जल नहीं सकता। वह तो इस आग में पड़कर स्वर्ण के समान निखर रहा है! बड़ा उपकारी है सोमिल, जो मेरी आत्मा को इस पुद्गल पिंड से सदा के लिए मुक्त करने में सहायक बना है! यह सांसारिक सम्बन्ध से मेरा भावी श्वसुर होता और मुझे उस नाते पगड़ी बंधवाता। वह पगड़ी सांसारिक स्थिति को बढ़ानेवाली बनती! परन्तु आज यह मुझे ऐसी पगड़ी पहना रहा है, जिसे पहनकर मैं मुक्ति का वरण करने जा रहा हूँ। बड़ा उपकार है सोमिल का।

कितनी उत्कट है निर्मोह दशा! कितनी उज्ज्वल है चिन्तन धारा! कितना गहरा है आत्मा और शरीर के भेद—विज्ञान का यह साक्षात् अनुभव! कितनी उदात्त है यह जीवन्मुक्त अवस्था! शरीर जल रहा है, आत्मा निखर रही है! समभाव की साधना चल रही है! न शरीर के प्रति मोह है, न सोमिल के प्रति द्वेष! साधना की यह सर्वोच्च स्थिति है। गजसुकुमार मुनि समभाव की पराकाष्ठा पर पहुँच गये और केवलज्ञान—दर्शन प्राप्त कर मुक्त हो गये, सिद्ध हो गये। उन्होंने जीवन का जो लक्ष्य निर्धारित किया था, उस ओर अद्वितीय पौरुष के साथ चले और असाधारण शीघ्रता से मंजिल पर पहुँच गये। वे अजर अमर हो गये और ज्योति में ज्योति की तरह परमात्मास्वरूप में लीन हो गये।

बन्धुओं! कितना प्रेरक, कितना बोधदायक और कितना हृदयस्पर्शी चरित्र है गजसुकुमार मुनि का! हम प्रतिवर्ष उनके इस

समुज्ज्वल चरित्र को सुनते चले आ रहे हैं, लेकिन इससे शिक्षा ग्रहण करने का प्रयत्न नहीं करते! महापुरुषों के चरित्र इसीलिए सुनाये जाते हैं कि उनसे हम भी बोध प्राप्त करें और उनके जीवन की रोशनी से अपने जीवन में भी प्रकाश करें।

गजसुकुमार मुनि का जीवन सहनशीलता, दृढ़ता और समता का ज्वलंत आदर्श है। उस आदर्श तक हम और आप भले ही एकदम न पहुँच पायें, परन्तु उस लक्ष्य को, आदर्श को सामने रखकर जीवन में सहनशीलता, दृढ़ता और समता का अभ्यास किया जाना चाहिए। जीवन में यह प्रयत्न—साध्य है। असम्भव नहीं। इस काल में भी ऐसे उदाहरण सामने आते हैं, जिनमें आत्मिक दृढ़ता और शारीरिक कष्टों के बीच सहिष्णुता की अद्भुत क्षमता का परिचय मिलता है।

I fg".kqk dh {kerk

सन 1915 की घटना है। काशी—नरेश के पेट का ऑपरेशन किया जाना था। ऑपरेशन के पूर्व आमतौर पर रोगी का बेहोश किया जाता है। काशी नरेश ने कहा—डॉक्टर! मुझे बेहोश मत करिये। मैं होशो—हवास में ऑपरेशन करवाना चाहता हूँ। डॉक्टर ने कहा—बड़ा ऑपरेशन है, दो घंटे लगेंगे। इतने समय तक वेदना सहन नहीं की जा सकती। पेट चीरना है, मामूली काम नहीं है। इतनी वेदना इन्सान नहीं सह सकता। वह छटपटाने लगेगा, हिलेगा—डुलेगा ही नहीं, उछलने लगेगा; जीवन खतरे में पड़ेगा और डॉक्टर का पटिया गोल हो जायेगा। मैं यह खतरा लेने को कतई तैयार नहीं हूँ।

काशी नरेश ने कहा—मैं दो घंटे चूं तक नहीं करूँगा। आप ऑपरेशन करके देखिये। मैं बेहोश होना नहीं चाहता।

डॉक्टर को विश्वास नहीं हुआ। उसने नरेश की कसौटी

के लिए प्रयोग करना चाहा। नरेश ने कहा—प्रयोग करके देख लो। प्रयोग शुरू हुआ। नरेश ने ध्यान लगा लिया। होश—हवास की स्थिति में उनके हाथ पर चाकू का प्रयोग किया गया। खून बहा। नरेश बिल्कुल शान्त थे! दो घंटों तक उन्होंने चूं तक नहीं की। डॉक्टर हैरान था! दो घंटे के बाद डॉक्टर ने पूछा—वेदना हो रही है?

उत्तर मिला—इतनी देर तक तो नहीं थी, किन्तु अब वेदना का अनुभव हो रहा है। पहले मेरी दृष्टि अन्यत्र थी, मेरी वृत्ति अन्यत्र लगी हुई थी, मेरा ध्यान अन्यत्र केन्द्रित था!

डॉक्टर आश्चर्यचकित था! आखिर काशी नरेश की इच्छानुसार बिना बेहोश किये उनके पेट का ऑपरेशन किया गया। वे असाधारण रूप से शान्त रहे। दो घंटे तक बिल्कुल चुपचाप, बिना हिले—डुले शान्तभाव में स्थिर रहे। यह अपने ढंग का पहला उदाहरण है। यह एक ऐतिहासिक प्रसंग है। कालान्तर में उन्होंने राज्य त्यागकर आध्यात्मिक साधना में अपना जीवन लगाया।

Lo- Jh tokjpkp; Zt h l fg".kpk

स्वर्गीय आचार्य श्री जवाहरलालजी म. के जीवन की घटना का मुझे स्मरण आ रहा है। आचार्य श्री जब जलगाँव में विराजमान थे, तब उनके हाथ में विषैला फोड़ा हो गया था। डॉक्टर मुलगावकर ने ऑपरेशन को अनिवार्य बताया। ऑपरेशन निश्चित हुआ। डॉक्टर ने उन्हें बेहोश करना चाहा। पूज्यश्री ने दृढ़ता से कहा—बेहोश करने की आवश्यकता नहीं है। आप मेरी होशो—हवास की स्थिति में भी ऑपरेशन कर सकते हैं। डॉक्टर हैरान था! उसने पुनः आग्रह और निवेदन किया, परन्तु आचार्य श्री अपनी बात पर दृढ़ रहे। उन्होंने अपना हाथ लम्बा कर दिया। ऑपरेशन किया गया और वे उसे इस रीति से देखते रहे,

मानो कोई अन्य व्यक्ति देख रहा हो! चूं तक उनके मुख से न निकली! कितनी दृढ़ता और सहिष्णुता है यह! यह तो अभी-अभी कुछ वर्षों पूर्व की घटना है। आपमें से कइयों को उस महान विभूति के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ होगा।

उनके जीवन का एक और ऐसा ही प्रसंग मेरी स्मृति में उभर रहा है। बीकानेर में आचार्य श्री के अदीठ फोड़ा हो गया था! वे स्वयं उठ नहीं पाते थे। संत सहारा देकर उठाते थे। एक बार संत उन्हें उठा रहे थे कि असावधानी से अंगुली फोड़े पर लग गयी और खून निकल आया। संत घबरा गये। उस समय आचार्य श्री ने कहा—कोई बात नहीं। क्यों घबरा रहे हो? जान—बूझ कर तुमने ऐसा नहीं किया है। तुम्हारी कोई गलती नहीं है। सब ठीक हो जायेगा। उन्होंने यह भी नहीं कहा कि कितने असावधान हो! जरा भी ध्यान नहीं रखते। उन महापुरुष की ऐसी अद्भुत सहिष्णुता थी। आज तो जरा—सा कांटा चुभ जाता है, तो हाय! हाय! करते हैं। स्वर्गीय आचार्य श्री के चरित्र से भी दृढ़ता और सहिष्णुता की सीख लेनी चाहिए।

Lokesh jkerhKZ dk , d çl x

स्वामी रामतीर्थ जब अमेरिका गये थे, तब वहाँ के लोग उनके जीवन को देखकर आश्चर्य करते थे। वे अपने लिए उत्तम पुरुष का प्रयोग नहीं करते थे। उनसे पूछा जाता कि आपको भूख लगती है या नहीं? यह पूछे जाने पर वे कहते—राम को भूख लगती है। लोग उनसे पूछते कि राम का तात्पर्य क्या है? आप ऐसा क्यों कहते हैं? यह राम कौन है? वे कहते, इस शरीर का नाम राम है। शरीर को भूख लगती है, मेरी आत्मा को नहीं लगती! मैं अपने शरीर से परे हूँ। शरीर का ट्रस्टी होकर इसकी देख-रेख करता हूँ। इस प्रकार स्वामी रामतीर्थ शरीर और आत्मा के भेद को व्यवहार में उतार कर बताते थे।

fLFkrçKk

ये घटनाएँ तो अभी की कतिपय वर्ष पूर्व की हैं। मानव यदि प्रयत्न करे, तो अपने जीवन में ऐसे भेद—विज्ञान को लेकर चल सकता है। यदि मानव आत्मा और शरीर के इस भेद को समझता रहे, तो जीवन में दृढ़ता आ सकती है और मोह का आवरण हल्का हो सकता है। मानव ऐसी साधना के बल से मृत्युंजय बन सकता है। मृत्युंजय बनने का तात्पर्य यह है कि वह मृत्यु के भय से ऊपर उठ जाता है। मृत्यु उसे डरा नहीं सकती, कर्त्तव्य—मार्ग से उसे विचलित नहीं कर सकती। शरीर का मोह उसे भ्रमित नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति आने पर आत्मा स्थित—प्रज्ञ हो जाता है। क्रमशः साधना के पथ पर आगे बढ़ता हुआ वह अनन्त चतुष्टय का स्वामी बन जाता है। वह अपनी अनन्त शक्ति—सम्पन्नता को प्राप्त कर लेता है।

Ñ".k dk ç'u vlg Hxoku dk I ek/ kku

गजसुकुमार मुनि ने उत्कृष्ट साधना के द्वारा एक ही दिन में अनादिकाल से चली आ रही भव—परम्परा की परिसमाप्ति कर दी और सोमिल ने उत्कृष्ट वैर भाव के कारण जन्म—मरण की परम्परा में असंख्य भावों की वृद्धि कर ली। सुदीर्घ काल तक वह संसार चक्र में भटकता रहेगा। उसका भव—भ्रमण का चक्र लम्बे समय तक चक्कर लगाता रहेगा। गजसुकुमार मुनि ने अनन्त सुख को प्राप्त कर लिया; सोमिल भव—भवान्तर में रुलता रहेगा। एक ने अनन्त प्रकाश पा लिया, दूसरा घने अन्धकार में भटक गया।

इधर त्रिखण्डाधिपति कृष्ण वासुदेव प्रातः काल होने पर अपने लघुभ्राता के संयमी जीवन को देखने की आकांक्षा से प्रभु

अरिष्टनेमि के दर्शन और वन्दन हेतु आये। वन्दना करने के पश्चात कृष्ण ने प्रश्न किया— भंते! गजसुकुमार मुनि दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं, वे कहाँ हैं?

भगवान ने समाधान करते हुए फरमाया— “उन्होंने अपना प्रयोजन सिद्ध कर लिया। जिस प्रयोजन को लेकर वे दीक्षित हुए, वह उन्होंने अत्यल्प काल में ही परिपूर्ण कर लिया। उन्हें एक व्यक्ति का सहयोग मिल गया, जिससे उनके आवागमन का चक्र सदा के लिए बन्द हो गया। वे सिद्ध—बुद्ध हो गये, सब बन्धनों से मुक्त हो गये! उन्होंने अपना लक्ष्य साध लिया। वे कृतार्थ और सिद्धार्थ हो गये।”

“हे कृष्ण! मेरे दर्शन हेतु आते समय जैसे तुमने उस वृद्ध, जर्जर और क्षीणकाय व्यक्ति को ईट उठाकर सहयोग दिया और उसके हजारों चक्करों को मिटा दिया, जिस प्रकार तुम उसके सहायक बने हो। ठीक इसी प्रकार वह व्यक्ति गजसुकुमार मुनि के आवागमन को मिटाने में सहयोगी बना है। उसके प्रति तुम अन्यथा भाव न लाना!”

यह समाधान सुनकर कृष्ण के हृदय में विचित्र—सी भावानुभूति हुई। हर्ष व शोक की मिली—जुली अनुभूति से वे विभोर और गद्गद् हो गये।

Ñ".k dk bV mBkuk

त्रिखंडाधिपति कृष्ण वासुदेव अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ भगवान अरिष्टनेमि को वन्दन करने के लिए जब आ रहे थे, तब एक दृश्य की ओर उनका ध्यान गया। उन्होंने देखा कि एक पुरुष, जो जरा (बुढ़ापा) से जर्जरित है, जिसका शरीर जीर्ण—शीर्ण है, गर्दन डगमग हिल रही है, मुँह से लार टपक रही है, आँखों में गीड़ आ रहा है, वह बड़ी कठिनाई से धीरे—धीरे चल

रहा है। मकान के बाहर ईंटों का एक विशाल ढेर पड़ा है। वह उस ढेर में से एक-एक ईंट उठाकर घर में रख रहा है। ढेर में से ईंट उठाता है, धीरे-धीरे चलता हुआ उसे घर में रखता है, फिर बाहर आकर ईंट उठाता है और घर में रखता है। वृद्ध की यह स्थिति देखकर कृष्ण के दिल में करुणा जागृत हुई। उसके प्रति आत्मीय भावना जागृत हुई और उन्होंने हाथी पर बैठे-बैठे ईंटों के उस विशाल ढेर में से एक ईंट उठायी और उस बूढ़े के घर में डाल दी। कृष्ण महाराज के इस व्यवहार का साथ में रहे हुए अनुचरों, सैनिकों और अन्य लोगों ने अनुकरण किया और देखते-देखते वे सारी ईंटें वृद्ध के घर में पहुँचा दी गयी। वृद्ध का कार्य आसानी से शीघ्रता से पूरा हो गया। इस प्रकार कृष्ण ने एक ईंट उठाकर उस वृद्ध पुरुष के पहाड़ जैसे मुश्किल कार्य को सरल बना दिया। कृष्ण के सहयोग से वृद्ध का भार हल्का हो गया। कितनी अनुपम है कृष्ण की करुणा, कैसी अनूठी है निर्बलों को, कमजोरों को सहयोग देने की उनकी कोमल भावना! यदि ऐसी भावना समाज के सम्पन्न और सबल वर्ग में उत्पन्न हो जाये, तो समाज का सारा नक्शा, सारा चित्र ही बदल सकता है।

कृष्ण के इस प्रसंग से यह प्रेरणा भी मिलती है कि हुकूमत करने की अपेक्षा स्वयं काम करने का उदाहरण पेश किया जाये, तो वह ज्यादा प्रभावोत्पादक होता है। कृष्ण महाराज चाहते, तो सेवकों को, नौकरों को, सेना को आदेश देकर काम करवा सकते थे, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया और स्वयं ने ईंट उठाकर रख दी। इसका कितना अच्छा परिणाम निकला। दूसरे सब लोगों ने स्वयंमेव उनका अनुकरण कर लिया। बड़े व्यक्ति जो काम करने लगते हैं, दूसरे भी उसका स्वयंमेव अनुसरण करते हैं। अतएव यदि समाज में आप अच्छी रीतियाँ स्थापित करना चाहते हैं, बुराइयों को हटाना चाहते हैं, तो उसका शुभ

आरम्भ बड़े घरों से—प्रतिष्ठित समझे जानेवाले घरों से किया जाये, तो वह शीघ्र ही समाज में प्रचलित हो जाता है। इस दृष्टि से समाज के लब्ध—प्रतिष्ठ व्यक्तियों की बहुत बड़ी जिम्मेदारी होती है। कृष्ण के इस महान आदर्श से अवश्य ही प्रेरणा लेनी चाहिए।

देशनोक

5.9.1975

vk/; kRed thou dk vuđ U/kku

- 0 ckgj I sgVdj vlređ dh rjQ >kđuk gh
vkRe vuđ akku gđ
- 0 ekđ dks thruk gh I eLr dek dks thruk gđ
- 0 ekđ dks thrus dsfy, n`+I dYi vkđ çcy
i@"kFkZ gksuk pkfg, A
- 0 Hkđrd ođko u'oj gđ blga/keZ I k/kuk dk I k/ku
ekudj I nđ; kx djka
- 0 ekđ o efnjk euđ; dh cđ) dksHfer djrh gđ
viuh vkykpkuk vkRe vuđ akku gđ

Jh I fof/k ftuđoj ođn; sgđ onr iki iđk; A
çHkR; kxh jktuh gđ yh/kks I a e HkđAA
fut vkre&vuđko Fkdh gđ i kE; k tn vfodkjAAJhAA
v"VdeZ uks jktoh gđ ekđ çFke {k; dhuA
I đk I efdR pkj= uh gđ i je {kk; d xqk yhuAAJhAA

Kkukoj.kh n'kukoj.kh gkṣ vUrjk; fd; ks vUrA

Kku n'kū cy frgṁgkṣ ṛdV; k vuUrkuUrAAJhAA

श्री सुविधिनाथ भगवान की प्रार्थना की कड़ियों का आपके समक्ष उच्चारण किया है। प्रभु की प्रार्थना हृदय को आनन्द-विभोर बनाती है। भक्त का रोम-रोम प्रभु की प्रार्थना से पुलकित हो उठता है, उसका अन्तःकरण प्रमुदित, हर्षित और उल्लसित हो उठता है। प्रार्थना के माध्यम से भक्त के हृदय-तंत्री के तार झंकृत हो उठते हैं। इतना ही नहीं, प्रार्थना के समय भक्त के हृदय के तार परमात्मा के साथ जुड़ जाते हैं, जिससे उसका हृदय प्रकाशमान हो जाता है। पावर हाउस (बिजलीघर) से तारों के माध्यम से संबंधित होते ही जैसे बल्ब रोशनी से जगमगाने लगता है, वैसे ही प्रार्थना के द्वारा परमात्मा का सम्पर्क होते ही भक्त का हृदय भी प्रकाशमान हो उठता है, पाप की कालिमा नष्ट हो जाती है और वासनाओं की गंदगी मिटकर हृदय साफ-सुथरा बन जाता है। प्रार्थना वह पथ्य है, जो हृदय के रोगों को मिटाकर उसे आरोग्य और आनन्द प्रदान करता है।

विश्व के वातावरण पर विचार करते हुए प्रतीत होता है कि पापमय वासनाओं से आत्मा का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर गिरता चला जा रहा है, मानव-समाज विकारों की गन्दगी से बुरी तरह ग्रस्त होता चला जा रहा है। जहाँ गन्दगी का विस्तार है, वहाँ स्वास्थ्य का ह्रास अवश्यम्भावी है। बाहर की गन्दगी अधिक से अधिक एक जीवन के लिए खतरनाक होती है, लेकिन आभ्यन्तर गन्दगी एक नहीं, अनेक जन्म-जन्मान्तर के लिए खतरनाक होती है। इस आभ्यन्तर विकृति की भयंकर परिणति सैकड़ों-हजारों जन्मों तक अशुभ फल-परम्परा के रूप में होती है। अतएव यह गन्दगी अत्यन्त भयंकर है। इस गन्दगी को दूर हटाने के लिए मनुष्य को पहले यह देखना होगा कि यह गंदगी कहाँ से आ रही

है? गन्दगी के उद्गम का सूक्ष्मता से विश्लेषण किये बिना उसको मिटाया नहीं जा सकता। बाह्य गन्दगी तो स्पष्ट मालूम होती है। कपड़े मैले हैं, शरीर पर मैल जमा है, घर में कूड़ा-कचरा इकट्ठा हो रहा है, मक्खियाँ भिनभिना रही हैं, डांस-मच्छरों की बहुलता है। इन सबसे बाहरी गन्दगी को जान लिया जाता है और उसके निवारण के उपाय भी आसानी से किये जा सकते हैं, परन्तु आभ्यन्तर गन्दगी के विषय में ऐसी बात नहीं है। उस आभ्यन्तर गन्दगी को पकड़ पाना आसान नहीं है। बाह्य गन्दगी के सूक्ष्म कीटाणुओं को तो सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा देखा जा सकता है, परन्तु आन्तरिक विकृति के सूक्ष्म अंश आत्मा की भीतरी तहों में इस प्रकार छिपे रहते हैं कि उन्हें पकड़ने की शक्ति किसी सूक्ष्मदर्शक यंत्र में भी नहीं है। उन्हें पकड़ने के लिए तो उनके अनुरूप यंत्र की आवश्यकता रहती है। वह यंत्र हो सकता है :-

vk; kRed thou dk vuq W/ku

जब व्यक्ति बाहर से हटकर अन्दर की तरफ झँकने लगता है, इधर-उधर बाहर भटकना छोड़कर जब वह अपने अन्दर देखना आरम्भ करता है, तब उसे अन्दर की गन्दगी के कीटाणुओं की हरकत मालूम पड़ती है और वह आत्म-अनुसन्धान से उनके उद्गम को जानकर उसके निवारण हेतु प्रयत्नशील होता है।

ey dks i dMks

यह आत्मा वासनाओं से त्रस्त है। आज से नहीं, कल-परसों से नहीं, वर्ष-दो वर्ष से नहीं, हजारों-लाखों वर्षों से नहीं, अपितु संख्यातीत अनादिकाल से आत्मा वासना की भूल-भूलैया में फँसकर चौरासी लाख जीवयोनियों में भटक रहा है। उसकी इस दुर्दशा का, विडम्बना का, बीमारी का मूल क्या है? उस मूल को पकड़ना आवश्यक है। ध्यान के सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म यंत्र के द्वारा उस मूल को

पकड़ा जा सकता है। सुविधिनाथ भगवान ने ध्यान के माध्यम से आत्मा की दुर्दशा के मूल को पकड़ा और उसे अपनी आत्मा से अलग हटाकर सच्चिदानन्दमय स्वरूप को प्राप्त किया।

श्री सुविधिनाथ परमात्मा ने ध्यान के सूक्ष्म यंत्र से आत्मानुसंधान किया और पाया कि यह आत्मा वासनाओं के गूढ़ और रूढ़ संस्कारों से संतंत्रस्त है। यह इसकी दुर्दशा का मूल है। इस मूल को उन्होंने पकड़ा। टहनियों और पत्तों को नोंचने की अपेक्षा मूल को उखाड़ना ही कारगर और सार्थक होता है। ऊपर की निष्पत्ति हटा दी जाने पर भी यदि मूल शेष रह जाता है, तो वह पुनः पनप उठता है। सुना जाता है कि बाजरे की टहनी कोमल अवस्था में काट दी जाती है, तो पुनः फूट जाती है। मेवाड़ और मारवाड़ में रिजका (रजका) नाम का पौधा होता है, जिसे काटने पर वह पुनः पनपता रहता है। उसकी समाप्ति तभी होती है, जब उसे जड़ से उखाड़ दिया जाता है। अतएव वासनाओं को जड़—मूल से उखाड़ने का प्रयास करना चाहिए।

अफसोस इस बात का है कि मानव अपनी आत्मा को शुद्ध करने के लिए ऊपर—ऊपर से उपचार करता है, लेकिन जड़ को नहीं पकड़ता है। जड़ को पकड़कर उसे उखाड़ने का प्रयत्न नहीं करता है। मूलतः सोचने का विषय यह है कि आत्मा की दुर्दशा का मूल क्या है? उस मूल को ही पकड़ने का प्रयत्न किया जाये; पत्तों और टहनियों को नोंचने का निरर्थक श्रम क्यों किया जाये?

आत्मानुसंधान के द्वारा श्री सुविधिनाथ भगवान और अन्य तीर्थकर भगवन्तों ने फरमाया है कि आत्मा की दुर्दशा का मूल कारण है मोह! मोह वह मादक मदिरा है, जो आत्मा को बेभान बना देती है। केवल इतना ही नहीं, मोह की मदिरा में दोहरी शक्ति होती है। मदिरा तो व्यक्ति की चेतना को केवल

आच्छादित करती है, जबकि मोह आत्मा की चेतना को आच्छादित करने के साथ ही साथ उसे विपरीत दिशा में— मिथ्यात्व में—पटक देता है। जिसके फलस्वरूप आत्मा सत्य को असत्य, असत्य को सत्य, हित को अहित एवं अहित को हित समझने लगता है। अपना स्वरूप भूलकर वह पर—रूप में रमण करने लगता है, पर—रूप उसे लुभावना लगता है, अपना अनन्त वैभव उसे तुच्छ लगने लगता है और पौद्गलिक पदार्थों के क्षणिक सुखाभास में सुख की अनुभूति करने लगता है। यह आत्मा की भयंकर दुर्दशा और विडम्बना है। इसका एकमात्र कारण मोह ही है। अतएव कवि ने प्रार्थना की कड़ियों में कहा है कि :—

v"VdeZ uks jkt oh gkṣ ekṣ çFke {k; dhuA

I qk I efd r pkfj= uh gkṣ i je {kk; d xqk yhuAA

Kkukoj .kh n'kūkoj .kh gkṣ vūrjk; fd; ks vūrA

Kku n'kū cy ; s frg gkṣ çdV; k vuūrkuūrAA

मोहकर्म आठों कर्मों का राजा है। सुविधिनाथ प्रभु ने सर्वप्रथम उसको क्षय किया और फलस्वरूप शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र की उपलब्धि हुई। इसके पश्चात ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म का क्षय किया, जिसके परिणामस्वरूप अनन्तानन्त ज्ञानदर्शन और बल की प्राप्ति हुई।

आत्मा की शक्तियाँ अनन्त हैं। उसके अनन्त गुण हैं। परन्तु मुख्यतया आत्मा में आठ गुण कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं:—

1. अनन्तज्ञान, 2. अनन्तदर्शन, 3. अव्याबाधसुख, 4. क्षायिक सम्यक्त्व, 5. स्वतंत्रता—निर्बन्धता, 6. अमूर्तत्व, 7. अगुरुलघुत्व और 8. अनन्त बलवीर्य। ये आठ गुण आत्मा के सहज एवं स्वभाविक गुण हैं। यह आत्मा की मौलिक स्थिति है। जिस प्रकार

प्रकाश सूर्य की सहज स्थिति है, परन्तु वह मेघों के आवरण से आवृत हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा में ये आठों गुण सहज हैं, परन्तु अनादिकालीन कर्मों के आवरण से ये आठ गुण आच्छादित हो जाते हैं। इन गुणों को आच्छादित करनेवाले आठ कर्म हैं:—
1. ज्ञानावरणीय, 2. दर्शनावरणीय, 3. वेदनीय, 4. मोहनीय, 5. आयु, 6. नाम, 7. गोत्र और 8. अन्तराय। ये आठों कर्म क्रमशः आत्मा के आठों मूल गुणों को आच्छादित करते हैं।

इन आठ कर्मों में मोह कर्म सबसे अधिक शक्तिशाली है, अतएव वह आठ कर्मों का राजा कहलाता है। मोह कर्म की जब तक प्रबलता रहती है, तब तक अन्य सब कर्म भी शक्तिशाली बने रहते हैं। मोह कर्म के शिथिल होते ही अन्य कर्म भी शिथिल पड़ जाते हैं। जिस प्रकार राजा के पराजित होकर भाग जाने पर सेना भी स्वयं भाग खड़ी होती है, इसी प्रकार मोह के पराजित होते ही अन्य कर्म स्वयं पराजित हो जाते हैं। अतएव मोह को उखाड़े बिना आत्मा का उद्धार होनेवाला नहीं है। मोह को हटाने का प्रयास ही आत्मा का उद्धार होनेवाला नहीं है। इसीलिए सुविधिनाथ प्रभु ने आठ कर्मों के राजा मोह को सर्वप्रथम क्षय किया और फलस्वरूप क्षायिक सम्यक्त्व और आत्म-रमणता प्राप्त की। आपका और हमारा लक्ष्य भी मोह को हटाकर आत्मा के उद्धार का द्वार खोलना है, परन्तु यह काम आसान नहीं है। मोह की प्रबल शक्ति को तोड़ना साधारण काम नहीं है। इसके लिए दृढ़ संकल्प और अदम्य पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है।

हृदय एवम्; र्क

साधना के मार्ग पर चलते हुए जो बाधाएँ—कठिनाइयाँ आती हैं, उनसे अनेक साधक हार जाते हैं। वे अपनी कमजोरी के कारण साधना-पथ से विचलित होते हैं। परन्तु ऐसे कई साधक अपनी कमजोरी को स्वीकार करने के बजाय उस पर

सुनहरा पर्दा डालने की कोशिश करते हैं। वे प्ररुपणा करने लगते हैं कि आत्मोद्धार के लिए कठिन साधना की कोई आवश्यकता नहीं है। अनासक्ति आ जाना ही पर्याप्त है। घर-संसार और एश्वर्य के बीच रहकर भी आत्मसाधना हो सकती है। मोह-ममता को जीतना हमारा प्रयोजन है और यह प्रयोजन संसार की प्रवृत्तियों में रहते हुए भी सिद्ध किया जा सकता है। इसके लिए घर-द्वार छोड़कर साधु बनने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह प्ररुपणा यदि सदुद्देश्य से प्रेरित है, तो किसी अंश से यथार्थ हो सकती है, परन्तु यह मार्ग कहने में जितना आसान है, उतना ही उस पर चलना कठिन है। यदि अनासक्ति की साधना और मोह-ममता को जीतना इतनी सरलता से सम्भव होता, तो तीर्थकर भगवान राज्य-वैभव का परित्याग करके संयम की साधना और कठोर तपश्चर्या का मार्ग क्यों अपनाते?

तीर्थकर गर्भ से ही तीन ज्ञान के धनी अर्थात् मति, श्रुत और अवधि ज्ञान से सम्पन्न होते हैं। दीक्षा धारण करने के बाद मनःपर्याय ज्ञान भी उन्हें प्राप्त हो जाता है। इतनी लब्धि और शक्ति से सम्पन्न होने पर भी वे कठिन तपोमय मार्ग पर चलते हैं। महीनों और वर्षों तक वे कठोर तप का आचरण करते हैं। तब कहीं जाकर मोहकर्म को पराजित करने में वे सफलता प्राप्त करते हैं। हम तो चाहते हैं कि हमें कठोर तप और श्रम न करना पड़े और सहज ही मोह को जीत लें। यह कदापि सम्भव नहीं है। हम भले ही उक्त भ्रान्त धारणा के चक्कर में पड़कर अपने आपको धोखा दे लें, आत्म-वंचना कर लें, परन्तु इस तरीके से मोह पर विजय पाना कदापि सम्भव नहीं है।

तीर्थकर-तुल्य महती शक्ति के धारक महापुरुषों ने भी जब मोह पर विजय पाने हेतु कठोर साधना का मार्ग अपनाया, तो आपकी और हमारी क्या बिसात, जो हम सहज ही बिना किसी

कठोर साधना के मोह को परास्त कर सकें? उन महापुरुषों ने अपने जीवन में कितनी कठोर जीवन-चर्या अपनायी? कितने महीनों तक निराहार रहे? कितने वर्षों तक परीषह-उपसर्गों को स्थिर-चित्त से सहन करते रहे? ध्यान की कितनी कठोर प्रक्रिया अपनायी? हम और आप तो चार लोगस्स का ध्यान करने बैठते हैं, तब भी मन इधर-उधर दौड़ने लगता है। जरा-सा मच्छर आकर बैठ जाता है, तो उसे हटाने का प्रयास किया जाता है। ध्यान की धारा खण्डित हो जाती है! ऐसी स्थिति में बिना विशेष प्रयत्न के सहज ही मोह को जीतने की बात करना आत्म-प्रवंचना-मात्र है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मोह को जीतना असंभव है। मोह को जीता जा सकता है, परन्तु उसके लिए आवश्यक है कि दृढ़ संकल्प और प्रबल पुरुषार्थ!

पर्युषण पर्व के इन दिनों में आप अन्तगड़ सूत्र का श्रवण कर रहे हैं। इस सूत्र में उन महान साधकों का और साधि काओं का वर्णन है, जिन्होंने दृढ़ संकल्प और प्रबल पुरुषार्थ के द्वारा मोहकर्म पर विजय प्राप्त की और सकल कर्मों का क्षय करके जन्म-जरा-मरण-रूप संसार-चक्र का अन्त किया। उन महान आत्माओं का वर्णन इन माँगलिक दिवसों में इसीलिए सुनाया जाता है कि उनके जीवन से प्रेरणा लेकर हम भी अपने जीवन को उसी दिशा में मोड़ें।

L=h&i@#k dk Hkn vi f{kr ugha

साधना के क्षेत्र में स्त्री-पुरुष का भेद अपेक्षित नहीं है। साधना का सम्बन्ध आत्मा के साथ है, शरीर के साथ नहीं। आत्मा तो न स्त्री है, न पुरुष। अतः पुरुषत्व का अभियान वृथा है। संस्कृत के कवि ने कहा है :-

xqkk% i t k L F k u a x f . k ' k q u p f y x u p o ; %A

गुणों का महत्व होता है। लिंग या वय का महत्व नहीं। जिस प्रकार वस्त्रों का शरीर की शक्ति के साथ सम्बन्ध नहीं है, यदि पहलवान स्त्री-वेश धारण करले, तो इससे उसकी शक्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ता, इसी प्रकार आत्मा के लिए स्त्री-पुरुष का शरीर वस्त्र-तुल्य है। स्त्री-शरीर हो या पुरुष-शरीर, इससे आत्मा की शक्ति में कोई अन्तर नहीं आता है। पुरुष के समान ही अनेक महिलाओं ने साधना के क्षेत्र में अद्वितीय पौरुष बतला कर सिद्धि प्राप्त की है। आजकल तो प्रायः देखा जाता है कि पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ साधना के क्षेत्र में, तपस्या के क्षेत्र में, धर्म के मामलों में विशेष प्रगतिशील हैं।

अन्तगड़ सूत्र का वाचन-श्रवण चल रहा है। इसमें अनेक पुरुष-साधकों द्वारा आत्म-कल्याण करने का उल्लेख किया गया है, वैसे ही अनेक महिला-साधकों का भी विस्तार से उल्लेख है। त्रिखण्डाधिपति कृष्ण की पटरानियों ने भी संयम का मार्ग अपनाया था।

Ñ".k dk dYk; &iky

अन्तगड़ सूत्र के माध्यम से द्वारिका नगरी की भव्यता और त्रिखण्डाधिपति महाराज कृष्ण के वैभव का वर्णन आप सुन चुके हैं। मैं आपका ध्यान कृष्ण के वैभव से हटाकर कृष्ण के द्वारा किये गये कर्तव्य-पालन की ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। उन्होंने अन्याय के प्रतिकार के लिए, राजा के नाते प्रजा के हित के लिए एवं अपने परिवार और जनता को त्यागमार्ग पर चलने की प्रेरणा देने के लिए जो कदम उठाये, वे सब अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और दूरदर्शिता से भरे हुए थे। आप जानते हैं कि शिशुपाल ने रुक्मिणी को वरने हेतु कितना षड्यंत्र रचा, रुक्मकँवर भी रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ करना चाहता था। लेकिन रुक्मिणी का दृढ़ संकल्प था कि वह कृष्ण के चरणों में

ही अपने को समर्पित करेगी, अन्य किसी का वरण कभी नहीं करेगी। शिशुपाल और रुक्म के पास सैन्य—बल था, ताकत के बल पर वे अपना मनोरथ सिद्ध करने के लिए कृत—संकल्प थे। रुक्मिणी असहाय थी। परन्तु उसके पास दृढ़ संकल्प बल था। उसके आधार पर उसने एक स्त्री पर होनेवाले इस अन्याय के प्रतिकार के लिए कृष्ण के पास सन्देश पहुँचाया और अपने मनोरथ को व्यक्त किया। अन्याय के प्रतिकार के लिए कृष्ण ने जो कुछ किया और जिस रीति से उन्होंने रुक्मिणी के मनोरथ को पूर्ण किया, वह सर्वविदित है।

रुक्मिणी अद्वितीय लावण्यवती सुन्दरी थी। वह महारानी सत्यभामा से भी अधिक सुन्दर थी। यदि ऐसा न होता, तो नारद जैसा ऋषि सत्यभामा के अभिमान को चूर करने के लिए रुक्मिणी को आधार न बनाते। ऐसी लावण्यवती रुक्मिणी, जो उन्हें बहुत कठिनाइयों का सामना करने के पश्चात् प्राप्त हुई थी, जब संसार से उद्विग्न होकर संयम के मार्ग पर चलने को उद्यत हुई, तब उसे सहर्ष अनुमति प्रदान करके कृष्ण महाराज ने यह सिद्ध कर दिया कि भोगों की आसक्ति के कारण उन्होंने रुक्मिणी का वरण नहीं किया था, अपितु कर्तव्य पालन की दृष्टि से ही नारी पर होनेवाले अन्याय के प्रतिकार के लिए रुक्मिणी का वरण किया था।

}kfjdk ds fouk'k dk dkj .k vkg

Ñ" .k dh mn?kšk.kk

जगत के पदार्थ कितने परिवर्तनशील हैं! जिस द्वारिका के भव्य स्वरूप का आपने भी वर्णन सुना है व जिसका निर्माण देवों ने किया था, वह भी अपने स्वरूप में सदा के लिए स्थिर रहनेवाली नहीं है। कृष्ण महाराज को यह तथ्य मालूम था। अतएव उन्होंने सर्वज्ञ—सर्वदर्शी प्रभु अरिष्टनेमि से प्रश्न किया कि

भगवान! इस मनोहर भव्य द्वारिका का विनाश किस निमित्त को लेकर होगा? प्रभु अरिष्टनेमि ने अनेक भव्य आत्माओं के कल्याण का निमित्त जानकर इस प्रश्न के उत्तर में फरमाया कि यादवी राजकुमार मदिरा के नशे में उन्मत्त होकर द्वैपायन ऋषि को परेशान करेंगे, जिससे क्रुद्ध होकर वह द्वारिका के विनाश का निदान (नियाणा) करेगा। उस निदान के कारण वह देव बनकर द्वारिका का विनाश करेगा।

द्वारिका के विनाश का कारण जानकर कृष्ण को मोह या क्षोभ उत्पन्न नहीं हुआ। पदार्थों की परिणमनशीलता और क्षणभंगुरता को वे समझते थे। वे क्षायिक सम्यक्त्वी थे। सम्यक्त्व तभी प्राप्त होता है, जब मोह की जड़ टूटती है। मोह के उपशम, क्षयोपशम और क्षय से ही सम्यक्त्व का आविर्भाव होता है। कृष्ण वासुदेव क्षायिक समकित के स्वामी थे। वे जगत के पदार्थों की नश्वरता को हृदयंगम कर चुके थे। अतएव उन्हें द्वारिका के विनाश के वृत्तान्त को जानकर खेद नहीं हुआ। उन्होंने उसे आत्मकल्याण के अवसर के रूप में लिया। उस प्रसंग पर गहराई से विचार करते हुए उन्होंने जनता के नायक के रूप में अपने कर्तव्य का निर्धारण किया। उनकी विचारधारा जनता के कल्याण की ओर मुड़ी। वे सोचने लगे—मैंने जगत के स्वरूप को समझा है, परन्तु सर्वसाधारण जनता इस तथ्य को गहराई से नहीं समझती है, अतएव जनता को सचेत और सावधान करना मेरा कर्तव्य है। मैं द्वारिका का आधिपत्य लेकर चल रहा हूँ। अतएव जनता को जागृत करना और इस वृत्तान्त की सूचना देना मेरा कर्तव्य है।

किसी भी देश का शासक जब अपने देश पर आनेवाले खतरे को जान लेता है, तो वह अपनी जनता को समय से पूर्व ही सावधान कर देता है। हिन्दुस्तान—पाकिस्तान का संघर्ष जब छिड़ा, तब सरकार की ओर से ऐसा यांत्रिक प्रबन्ध किया गया

था, जिससे शत्रु के विमानों की गतिविधियाँ ज्ञात हो जाती थी और जनता को समय से पूर्व उसकी सूचना दे दी जाती थी, ताकि जनता सावधानी बरत सके और संभावित खतरे से बचने का प्रयास कर सके। जब सामान्य शासक भी इस कर्त्तव्य का निर्वाह करता है, तो त्रिखण्डाधिपति और क्षायिक सम्यक्त्व के स्वामी कृष्ण वासुदेव अपने कर्त्तव्य के पालन में पीछे कैसे रह सकते हैं? उन्होंने अपनी जनता को द्वारिका पर आनेवाली आपत्ति और मंडरानेवाले संकट की सूचना देने हेतु तथा इस संकट के दौरान अपने कर्त्तव्य का बोध देने हेतु इस प्रकार उद्घोषणा करवायी :-

प्रिय द्वारिकावासियों! आपके अपार स्नेह और विश्वास के आधार पर मैं द्वारिका के शासन-तंत्र का संचालन कर रहा हूँ। मेरे भरोसे आप सब निश्चिन्त हैं। मुझे आप अपने हितचिन्तक के रूप में मानकर चल रहे हैं और समझ रहे हैं कि मेरे रहते आप सुरक्षित हैं। परन्तु मैं द्वारिका पर आनेवाले संकट की पूर्व-सूचना आपको दे रहा हूँ। भगवान अरिष्टनेमि ने मेरे प्रश्न के उत्तर में फरमाया है कि जिस द्वारिका के सौन्दर्य और वैभव पर हम सबको गौरव है वह सदा स्थिर रहनेवाली नहीं है और उसका विनाश निकट भविष्य में ही होनेवाला है। अतएव जनता के नायक के नाते-शासक के नाते-मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं जनता को आसन्न संकट की सूचना दूँ और संकटकाल में विचलित न होते हुए अपने कर्त्तव्य के पालन में विशेष सावधानी रखने हेतु प्रेरणा प्रदान करूँ।

प्रिय नागरिकों! आपने द्वारिका में रहकर भौतिक समृद्धि और बाह्य ऐश्वर्य तो पर्याप्त अर्जित किये हैं, परन्तु यह शाश्वत नहीं है। यह सब विनश्वर हैं और नष्ट होनेवाला है। यह भव्य और दिव्य द्वारिका नगरी भी अग्नि की लपटों में भस्मीभूत हो

जानेवाली है। अतएव समय रहते हुए आशाश्वत से मोह हटाकर शाश्वत तत्व की आराधना में जुट जाना हितावह है। भौतिक सम्पदा नष्ट हो जानेवाली है। अतएव आत्मिक सम्पदा को जुटाने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

/keɪ dh iːh dekys dekys thok!

thou cu tk; xkAA

thou iV ij jɔ gʃdc l ʃ

l ɔ e jɔ p<k yʃ

p<k ys thokj thou cu tk; xkA

“भव्य प्राणियों! धर्म की पूंजी कमाओ और जीवन पट पर संयम का रंग चढ़ाओ। ऐसा करने से ही जीवन सफल हो सकेगा। संकटकाल सामने खड़ा है। यदि भौतिक मद-मस्ती में या सांसारिक मोह दशा में जकड़े रहे और वैसी अवस्था में अगले जन्म की आयु का बन्ध पड़ गया, तो फिर चौरासी के चक्कर में भटकना पड़ेगा, कहीं ठौर-ठिकाना नहीं लगेगा। अतएव मैं तीन खण्ड के स्वामी और आपके हितैषी होने के नाते सब तरुणों और तरुणियों को, पुरुषों और महिलाओं को, प्रौढ़ और वृद्धों को सूचित करता हूँ कि वे संकट को समझें और मोह के बन्धनों को शिथिल करके आध्यात्मिक साधना के लिए कटिबद्ध हो जायें। प्रभु अरिष्टनेमि की पावन और तारक निश्रा में आकर जीवन को सफल और धन्य बनायें।”

“प्रिय नागरिकों! सांसारिक उत्तरदायित्व के कारण यदि कोई व्यक्ति या व्यक्तियों का समुदाय संयम पथ पर चलने का इच्छुक होने पर भी रुकावट का अनुभव करता हो, तो मैं स्पष्ट आश्वासन देना चाहता हूँ कि उनके योगक्षेम की व्यवस्था मैं

करूँगा। यदि कोई तरुण संयम की साधना के लिए संसार के बन्धनों से बाहर निकलना चाहते हैं, किन्तु उनके सामने यदि वृद्ध माता—पिता की सेवा की समस्या है, तो मैं उनके माता—पिता की सेवा करने का उत्तरदायित्व लेता हूँ। कदाचित् कोई व्यक्ति या परिवार आर्थिक अभाव की स्थिति में चल रहे हों और उनके सामने परिवार के भरण—पोषण का प्रश्न हो, तो उसकी जवाबदारी भी मैं अपने ऊपर लेता हूँ। उनके जीवन—निर्वाह हेतु जो भी सामग्री अपेक्षित है, उसकी पूर्ति मैं स्वयं करूँगा। सबके योग—क्षेम की जवाबदारी भी मेरी अपनी है। इस विषय में जरा भी विचार न करते हुए वे संयम के महान मार्ग में अग्रसर हो सकते हैं। मैं इसके लिए सबको अनुमति प्रदान करता हूँ।”

“यह अनुमति केवल जनता के लिए ही नहीं है, अपितु मेरे परिवार के लिए भी है। राजकीय परिवार का कोई भी व्यक्ति चाहे राजकुमार हो, राजकुमारियाँ हों, महारानियाँ या पटरानी हो, जो संयम के मार्ग पर चलने के लिए उद्यत हों, उसे मैं अपनी अनुमति प्रदान करता हूँ। जीवन की सफलता का यही मार्ग है। जनता के नायक और शासक के नाते मैं यह पूर्व—सूचना प्रसारित करता हूँ।”

उक्त अभिप्राय की उद्घोषणा कृष्ण वासुदेव ने द्वारिका नगरी में करवायी। बन्धुओं! इस घोषणा से कृष्ण वासुदेव का कितना महान व्यक्तित्व और कृतित्व झलकता है! इस उद्घोषणा के पद—पद से उनका सम्यग्दर्शन मुखरित हो रहा है। उन्होंने जड़ और चेतन का, शाश्वत और अशाश्वत का, अन्तर्दृष्टि और बहिर्दृष्टि का अन्तर समझा था। ऐश्वर्य और वैभव में रहते हुए भी वे उसमें रचे—पचे नहीं थे! जिस महारानी रुक्मिणी के लिए उन्हें भीषण संघर्ष करना पड़ा, उसके प्रति मोह की स्थिति को समाप्त करना आसान काम नहीं है।

साधारण तौर पर देखा जाता है कि चाहे घर में अभाव की स्थिति हो, दो समय भोजन भी पूरा न मिलता हो, घर में स्त्री कुरुपा और कर्कशा हो—रात—दिन घर में महाभारत छिड़ा रहता हो, तदापि संसार से विरक्ति नहीं होती! घर से और घरवाली से ममता नहीं छूटती! द्वारिकाधीश कृष्ण को देखिये, जो अपार ऐश्वर्य के स्वामी थे और जिनके अन्तःपुर में रुक्मिणी, सत्यभामा जैसी अनिन्द्य सुन्दरियाँ थी, वे उनसे अपना ममत्व हटाकर उन्हें संयम की साधना हेतु अनुमति प्रदान करते हैं! कैसा अद्भुत था वह युग!

D; k nh{k dk | k{k gks | drk gS

आज सरीखा युग होता, तो शायद अपरिपक्व बुद्धि के लोग सोचते कि त्रिखंडाधिपति कृष्ण वासुदेव लोगों को खरीद कर साधु—साध्वी बनाना चाहते थे! क्या दीक्षा भी सौदे की वस्तु है, जो ली—बेची जा सकती है? क्या संयम खरीदा जा सकता है? यह बुद्धि का दिवालियापन है! ज्ञान—दर्शन—चारित्र अनमोल है। इनका मोल नहीं हो सकता। हजारों द्वारिकाएँ देकर भी त्यागी के त्याग का मोल नहीं चुकाया जा सकता! आपने सुना ही है कि मगध का सम्राट् श्रेणिक, पूनिया श्रावक की एक सामायिक का मूल्य देने में असमर्थ रहा। उसकी 52 डूंगरियों की सम्पत्ति तो उसकी दलाली में ही चली जाती। मगध का सम्राट एक सामायिक की कीमत भी न दे पाया, तो जो जीवन—भर की सामायिक अंगीकार कर रहा है, उसके त्याग का मोल करने में कौन समर्थ हो सकता है? जो मोह के नशे में दीवाना बन रहा है, वह इस तथ्य को नहीं समझ सकता है! कृष्ण वासुदेव क्षायिक सम्यक्त्वी थे, वे दर्शन—मोह पर विजय प्राप्त कर चुके थे। अतः संयम और साधना के महत्व को वे भली—भांति हृदयंगम किये हुए थे। यही कारण है कि वे अपनी उक्त उद्घोषणा के माध्यम से द्वारिकावासियों को संयम के पथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान कर रहे हैं!

बन्धुओं! कृष्ण ने अपनी घोषणा में ऐसी कोई बात नहीं कही थी, जिससे खरीदकर साधु-साध्वी बनाने की चर्चा खड़ी की जा सके। उन्होंने इतना ही कहा कि यदि कोई संयम अंगीकार करने की भावना तो रखता है, परन्तु अर्थाभाव से या और किन्हीं कारणों से उसको बाधाओं का सामना करना पड़ रहा हो, तो मैं उन बाधाओं का निवारण कर सकता हूँ। वह व्यक्ति निश्चिन्त और निर्बाध होकर संयम-पथ का पथिक बन सकता है। संयम-पथ में आनेवाली बाधाओं का निवारण करना तो सम्यग्दृष्टि का कर्त्तव्य है। इसी कर्त्तव्य के नाते कृष्ण ने उक्त उद्घोषणा करवायी थी। यदि कोई व्यक्ति संयम अंगीकार करना नहीं भी चाहता और वह दुःखी या अभावग्रस्त होता, तो उसकी भी सहायता कृष्ण वासुदेव करते थे। कल के व्याख्यान में कृष्ण द्वारा ईंट उठाकर वृद्ध की सहायता करने का उल्लेख किया जा चुका है। क्या उस वृद्ध के परिवार में से कोई दीक्षा लेनेवाला था? नहीं! केवल कर्त्तव्य के नाते उन्होंने उसे वृद्ध की सहायता की थी। कमजोर व्यक्ति की सहायता करना समर्थ व्यक्ति का कर्त्तव्य हो जाता है।

कृष्ण वासुदेव ने सोचा कि यह भौतिक वैभव रहनेवाला नहीं है, द्वारिका भी नष्ट होनेवाली है, तो मेरा यह वैभव यदि धर्म की साधना का साधन बने, तो इससे बढ़कर इसका और सदुपयोग क्या हो सकता है? मुझे धर्म की दलाली का लाभ लेना ही चाहिए। इस प्रकार के उदात्त अध्यवसायों से उन्होंने तीर्थकर नामकर्म का उपार्जन किया। कितना महान है कृष्ण का यह कृतित्व और व्यक्तित्व! साधारण व्यक्ति अपनी सामान्य बुद्धि से महापुरुषों के जीवन को सही रूप में नहीं समझ पाते। कृष्ण के असाधारण और बहुरंगी जीवन को समझने की क्षमता सर्व-साधारण में नहीं है। पर्याप्त क्षमतावाला व्यक्ति ही उनके जीवन की सफलताओं को आंक सकता है। त्रिखण्डाधिपति कृष्ण वासुदेव

की उक्त घोषणा सुनने के पश्चात जिन भव्य आत्माओं की भवस्थिति पक चुकी थी, वे प्रभु अरिष्टनेमि के समीप संयम अंगीकार करने हेतु तत्पर बनीं। सम्बन्धित-पारिवारिक जनों की अनुमति लेकर वे प्रभु की चरण-शरण में आकर प्रव्रजित हो गये।

कृष्ण की महारानियों ने भी प्रव्रज्या अंगीकार करने हेतु अनुमति माँगी, तो कृष्ण ने उन्हें सहर्ष अनुमति प्रदान की। यदि कृष्ण की मोहदशा प्रबल होती, तो वे अपनी महारानियों को संयम अंगीकार करने की अनुमति नहीं देते।

भाइयों! कल्पना करिये, उस भव्य दृश्य की, जब कृष्ण की पटरानी और अन्य महारानियाँ साध्वी-वेश को धारण करके प्रभु की सेवा में उपस्थित हुई होंगी! कितना मर्मस्पर्शी हुआ होगा वह दृश्य! जब हजारों की संख्या में राजकुमार और राजकुमारियाँ, सेठ और सेठानियाँ, युवक और युवतियाँ, निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थी के रूप में प्रभु अरिष्टनेमि के पावन पाद-पद्मों की शरण में पहुँचे होंगे! आध्यात्मिक उत्क्रान्ति का वह दृश्य कितना भव्य और रम्य रहा होगा!

e | iku dk fu"kk

त्रिखण्डाधिपति कृष्ण ने इस प्रकार आध्यात्मिक जीवन की दलाली का लाभ तो लिया ही, साथ ही नैतिकता की दृष्टि से भी द्वारिका की जनता को सावधानी रखने के संकेत दिये। उन्होंने कहा कि जिन लोगों में संयम-पथ पर चलने की क्षमता न हो, वे कम से कम दुर्व्यसनों का त्याग तो अवश्य करें। खास करके कोई मदिरा का पान करें। यह मदिरा आपत्ति का कारण बन सकती है। यादवीय राजकुमारों को विशेष रूप से सावधान करते हुए उन्होंने कहा कि अब तक चाहे जिस स्वच्छंद वृत्ति के साथ रहे हों, परन्तु अब अपने आप पर नियंत्रण और अनुशासन रखना होगा। यदि द्वारिका की और अपने आपकी सुरक्षा चाहते

हो, तो मदिरा और अन्य व्यसनोँ का परित्याग करना आवश्यक है। जब तक यह नियंत्रण और अनुशासन रहेगा, तब तक ही द्वारिका की और हम सब की सुरक्षा है। अतएव इस विषय में पूरी जागरुकता और सर्तकता रखी जानी चाहिए।

कृष्ण वासुदेव ने सावधानी की दृष्टि से सम्पूर्ण राज्य में मद्य-निषेध की घोषणा करवायी और जितना भी मदिरा का संग्रह जहाँ कहीं भी थी, उसे द्वारिका से बहुत दूर जंगल में पहाड़ी पर फिँकवा दिया।

समय बड़ा विचित्र होता है। भवितव्यता होकर ही रहती है। सतत सावधानी रखने के बावजूद भी होनहार को कोई टाल नहीं सकता। द्वारिका के विषय में भी वही हुआ।

भावी भाव की प्रबलता के वश होकर कतिपय यादवी राजकुमार जंगल में गये। स्वेच्छानुसार क्रीड़ा करते हुए उन्हें प्यास लगी। समीप ही झरना बह रहा था। उसका पानी उन्होंने पीया। उस झरने के पानी में पहाड़ पर डाली गयी मदिरा का रस मिल चुका था। उस झरने के पानी को पीने से यादवी राजकुमारों पर मदिरा का असर होने लगा। वे मदिरा के नशे में चूर हो गये।

वहीं जंगल में द्वैपायन ऋषि साधना में लीन थे। नशे में उन्मत्त वे राजकुमार उन ऋषि को परेशान करने लगे। तरह-तरह के अनुचित शब्दों और ब्यंग्यों से तथा कायिक चेष्टाओं से वे ऋषि का तिरस्कार करने लगे। ऋषि काफी समय तक शान्त रहे। राजकुमारों ने अधिक छेड़खानी शुरू की। अन्ततः ऋषि का धैर्य समाप्त हो गया। वे क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने क्रोध के आवेश में निदान कर लिया कि मेरी तपस्या का फल इन राजकुमारों और इनकी द्वारिका नगरी के विनाश के रूप में हो! उस शरीर को छोड़कर वह ऋषि अग्निकुमार देव हुए और उन्होंने निदान के फलस्वरूप द्वारिका नगरी को अग्नि की लपटों से भस्मीभूत कर दिया!

बन्धुओं! मदिरा के कारण देवनिर्मित द्वारिका नगरी आग की ज्वालाओं से जलकर राख हो गयी। कितना घातक परिणाम होता है मदिरा-पान का!

बन्धुओं! यह कहते हुए बड़ा दुःख होता है कि आज के सभ्य कहे जानेवाले इस युग में न केवल निम्न वर्ग में ही, अपितु कुलीन कहे जानेवाले वर्ग में भी मदिरापान का प्रचलन बड़े पैमाने पर हो चला है! पहले तो निम्न समझी जानेवाली जातियों में ही मदिरापान का प्रचलन था, परन्तु अब तो इसने फैशन का रूप ले लिया है। समृद्ध और आधुनिकता की दृष्टि से प्रगतिशील समझे जानेवाले घरों में मदिरा-पान का प्रवेश हो चुका है। स्कूल, कॉलेज और क्लबों में मदिरा के दौर चलते हैं! उगती उम्र के नवयुवक और नवयुवतियाँ तथाकथित प्रगति और आधुनिकता की हवा में बहकर इस दुर्व्यसन के शिकार बन जाते हैं! यह कितनी घातक प्रवृत्ति है?

सरकारी आंकड़े यह बता रहे हैं कि मदिरा के द्वारा होनेवाली राजकीय आय प्रतिवर्ष कई गुणा अधिक बढ़ रही है। यह इस बात का द्योतक है कि मदिरा-पान की प्रवृत्ति देश में बढ़ रही है, जो अत्यन्त घातक और हानिप्रद है।

भाइयों! यादवी राजकुमारों ने मदिरा-पान किया, तो द्वारिका नगरी जलकर राख हो गयी, उसी तरह मदिरा-पान की आदत कई परिवारों की सुख-शान्ति और समृद्धि में आग लगा देती है। इस आदत के कारण कई परिवार बर्बाद हो गये हैं! उनकी सम्पत्ति मदिरा के ठेकेदारों की जेब में चली जाती है! मदिरा के नशे में वे चेतना भी गँवा देते हैं और सम्पत्ति से भी हाथ धो बैठते हैं! बाल-बच्चे स्त्री आदि भयंकर मुसीबत में फँस जाते हैं! परिवार बर्बाद हो जाता है, नतीजा कुछ हासिल नहीं होता। अतएव मदिरा-पान की बुरी आदत से छुटकारा पाने से

ही परिवार की सुख-शान्ति बनी रह सकती है! मैं समझता हूँ कि इस सभा में तो कोई व्यक्ति इस आदत का शिकार नहीं होगा। परन्तु यदि कोई हो, तो उसे आज और अभी ही मदिरापान के त्याग की प्रतिज्ञा (प्रत्याख्यान) ग्रहण कर लेनी चाहिए। 'जब जागा तभी प्रभात' के अनुसार अपनी आदत का परिमार्जन कर लेना चाहिए। यदि किसी में सबके सामने प्रतिज्ञा लेने का सामर्थ्य न हो, तो एकान्त में आकर प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिए। जीवन में सुख-शान्ति का संचार और परिवार में समृद्धि तभी तक संभव है, जब तक मदिरा-पान की आदत न लगी हो! यह आदत एकबार पड़ जाती है, तो वह घर और परिवार को बर्बाद किये बिना नहीं रहती। अतएव बुद्धिमानों और विवेक-सम्पन्न व्यक्तियों का कर्त्तव्य है कि वे मद्यपान आदि दुर्व्यसनों से बचकर नैतिकतापूर्ण जीवन बितायें।

efnj&fuek k dh ?kf .kr çfØ; k

मदिरा-पान की आदतवाले भाई भी यदि मदिरा के बनने की प्रक्रिया पर ध्यान दें, तो संभव है कि उन्हें भी स्वयंमेव मदिरा से घृणा हो जाये! मदिरा बनानेवाले महुवों को सड़ाते हैं, उनमें लम्बे-लम्बे कीड़े पड़ जाते हैं! उन कीड़ों का रस भी उसमें मिल जाता है। चाहे आज के वैज्ञानिक युग में शराब तैयार करने की कोई नयी प्रक्रिया हो, परन्तु यह भी निर्माणाधीन दशा में घृणित और दुर्गन्धपूर्ण होती है। तैयार हो जाने के बाद आकर्षक बोतलों में विविध नामों के साथ भले ही वह प्रस्तुत की जाती हो, परन्तु वह अत्यन्त घातक और हानिप्रद है। अतएव मदिरा-पान से प्रत्येक सद-गृहस्थ को अवश्यमेव बचना चाहिए।

जिस प्रकार यह मदिरा गृहस्थ जीवन को झकझोर देती है, इसी प्रकार मोह की मदिरा आत्मा को झकझोर देती है, जिससे आत्मा चतुर्गति में भटकता रहता है। अतएव मोह को हटाकर

अपने जीवन रूपी कपड़े को धर्म के रंग में रंग लेना चाहिए। संयम के रंग में रंगने से जीवन की सार्थकता है। विचक्षण और प्राज्ञ द्वारिका के निवासियों ने प्रभु के चरणों में संयम अंगीकार कर अपने जीवन को कृतार्थ किया। इसी तरह आप भी मोह की प्रबलता को हटाकर संयम की साधना की दिशा में आगे बढ़ें। यदि इतना सामर्थ्य न हो, तो गृहस्थावस्था में भी मर्यादित और त्याग-प्रत्याख्यानमय जीवन बितायें। यदि यह भी संभव न हो, तो कम से कम धर्म-दलाली का लाभ तो आप ले ही सकते हैं। जो व्यक्ति सहज रूप से त्याग मार्ग के पथिक बनने को तैयार हों, उन्हें आप प्रोत्साहित करें या न करें, परन्तु उनके मार्ग में बाधा डालने की कोशिश तो न करें। जो मोह से बचने के लिए तैयार हो रहे हैं, उन्हें मोह में डालने का यत्न न करें अन्यथा आप स्वयं महा-मोहनीय कर्म के बन्धन से बंध जायेंगे।

भाइयों! आप अपने जीवन का अनुसंधान करें। अपने जीवन के अदर झाँककर देखें। जीवन में व्याप्त मोह-मदिरा के प्रभाव से अपने को मुक्त करें। आलोचना द्वारा जीवन का शुद्धिकरण करें। यह पर्युषण पर्व का सुन्दर अवसर है, इस अवसर पर सुविधिनाथ भगवान को विधिवत वन्दन करें। उन्होंने मोहनीय कर्म और अन्य कर्मों का क्षय करके अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख और शान्ति प्राप्ति की, इसी तरह आप और हम भी उनका अनुसरण कर जीवन को मंगलमय बना सकते हैं।

देशनोक

6.7.75

pfj= dk eW; kdu

- 0 चरित्र ओर सद्व्यवहार ही सच्चा सौन्दर्य है।
- 0 उन्नति के लिए जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनुशासन की आवश्यकता है।
- 0 सुखी परिवार के लिए प्रत्येक सदस्य अपने कर्तव्यों का पालन करे।
- 0 भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक जीवन की जननी है।
- 0 अधिकार सदुपयोग के लिए होते हैं।
- 0 सदगृहस्थ वही है, जो सुदर्शन सेठ की तरह सदाचार पर दृढ़ रहे।

Jh I fof/k ftu'oj o'ān; } gks onr iki i'qk; A

v"VdeZ uks jktoh gk} ekj i fke {k; dhuA

I qk I efdr pkj= uks gk} i je {kk; d xqk yhuAA

Jh I fof/k ftu'oj o'ān; s gkAA

यह प्रभु सुविधिनाथ परमात्मा की प्रार्थना है। प्रार्थना जीवन का महत्वपूर्ण अंग और प्रसंग है, क्योंकि प्रार्थना के माध्यम से जीवन का वेग सही दिशा की ओर प्रवाहित होता है। जीवन विश्व का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। बल्कि यह कहना चाहिए कि विश्व की समस्त प्रवृत्तियों का संचालन करनेवाला तत्व, जीवन ही है। जीवन जितना महत्वपूर्ण है। उतना ही वह रहस्यों से परिपूर्ण भी है। विश्व के विद्वानों, विचारकों और दार्शनिकों के सामने यह प्रश्न चिरन्तकाल से खड़ा है कि जीवन क्या है? क्या यह केवल भौतिक पिण्ड है, जो जड़ भूतों से उत्पन्न होता है और जड़-भूतों में विलीन हो जाता है? अथवा यह एक शाश्वत चेतन तत्व है, जो सदा से है और सदा बना रहनेवाला है?

सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तीर्थकर परमात्मा का कथन है कि जीवन शाश्वत और सनातन तत्व है। अनन्त अतीत काल में भी कोई ऐसा समय नहीं था, जब जीवन का अस्तित्व न रहा हो और अनन्त भविष्य काल में भी ऐसा कोई समय नहीं होगा, जिसमें जीवन का अस्तित्व नहीं रहेगा। वर्तमान में जीवन का प्रवाह गतिमान है। इस तरह जीवन त्रिकालवर्ती शाश्वत सनातन तत्व है। वह अनायास प्रकट हो जानेवाला या अनायास ही विलीन हो जानेवाला नहीं है। इस दृष्टि से हमारा यह दृश्यमान जीवन केवल इसी जन्म का परिणाम नहीं है। अपितु इसका अस्तित्व अनन्त अतीतकाल में था और अनन्त भविष्यकाल में भी रहेगा। आचारांग सूत्र में तीर्थकर प्रभु फरमाते हैं :-

I q aesvml á rsklhx0; k , oed[kk; &bgexfl a .kks I . .kk Hkob i gjfRFkekvs ok fnl kvks vlxvks geál] nkfg.kkvs fnl kvks ok vlxvks vgeál] i PpfRFkekvs ok fnl kvks vlxvks vgeál] mÙkfjYykvks ok fnl kvks ok

**वखवख वगेई] व . .k; jhvks ok fnl kvks fofnl kvks ok
वखवख वगेई A ds ga vki h ds ok bg pqs i p
HfoLI kfeA**

—आचारांग—1श्रुत.1अ.1उद्दे.

अर्थ:—“हे आयुष्मन् जम्बू! भगवान ने इस प्रकार फरमाया है कि इस संसार में कतिपय व्यक्तियों को यह ज्ञान नहीं होता कि मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, दक्षिण दिशा से आया हूँ, पश्चिम दिशा से आया हूँ, उत्तर दिशा से आया हूँ, अथवा किसी भी दिशा—विदिशा से आया हूँ। मैं कौन था और यहाँ से चलकर परलोक में क्या होऊँगा।”

तीर्थकर परमात्मा के इस कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि हमारा वर्तमान जीवन पूर्ववर्ती जीवन का परिणाम है। जीवन की वर्तमान स्थिति पूर्व जीवन के आधार से बनी है और इस जीवन के आधार से हमारे अगले जीवन की स्थिति बननेवाली है। जीवन का प्रवाह कई जन्मों से चला आ रहा है और जन्म—जन्मान्तर तक चलता रहेगा, जब तक कि सिद्धावस्था प्राप्त न हो जाये। वैसे तो सिद्धावस्था में भी विशुद्ध जीवन को प्राप्त करना ही होना चाहिए। प्रार्थना के माध्यम से उस विशुद्ध स्वरूप को प्राप्त करने की हमारी अभिलाषा को हम व्यक्त करते हैं। हम यह मानकर चलते हैं कि यह शरीर ही सब कुछ नहीं है। इससे परे एक विराट एवं वास्तविक जीवन है, जिसे हमें उपलब्ध करना है।

अनेक व्यक्ति इस लक्ष्य को ओझल किये हुए हैं या यों कहना चाहिए कि वे लक्ष्य—भ्रष्ट हो गये हैं। वे जीवन को सही दृष्टिकोण से नहीं देख पा रहे हैं। जीवन का स्वरूप उन्होंने कुछ और ही समझ रखा है। उनका मानना है कि —

fic [kn p tkr 'kkuſ ; nrhraojxkf= ré u rā
ufg flk#! xrafuor7rs l enk; ek=fene~dysjeAA

—षड्दर्शन कारिका 82

शारीरिक और भौतिक सुख—सुविधाओं को प्राप्त करने को ही उन्होंने जीवन का लक्ष्य मान रखा है। निस्संदेह शरीर और उसको टिकाये रखने के लिए अन्न, जल आदि भौतिक पदार्थ भी अपना महत्व रखते हैं। मानव जीवन की ये बुनियादी आवश्यकताएँ हैं। परन्तु इसी को जीवन का लक्ष्य मान लेना नितान्त भ्रमपूर्ण है।

आज मानव जीवन के सारभूत तत्वों को भूलाकर इधर— उधर लक्ष्य—हीन बनकर भटक रहा है। भौतिक साधनों की उपलब्धि ही उसका एकमेव लक्ष्य बन गया है और उसके पीछे वह पागलों की भांति भाग रहा है। इन्हें प्राप्त करने हेतु वह नीति, सदाचार और धर्म को भी दाँव पर लगा देता है। जीवन के सारभूत तत्वों को खोकर भी वह अधिक से अधिक भौतिक साधन बटोरना चाहता है। यह कितना बड़ा व्यामोह है! कितना भारी भ्रम है। जीवन की कैसी अद्भुत विडम्बना है कि मानव अपनी जीवन—नौका को हल्की रखने के बजाय धन—दौलत के असार कंकर—पत्थरों को बटोर—बटोरकर भारी बना रहा है! दुख है कि मानव ने जीवन के सही महत्व को नहीं समझा। जीवन का महत्व धन—दौलत की प्राप्ति से नहीं, जीवन का महत्व सत्ता या अधिकारों को हस्तगत करने में नहीं, जीवन का महत्व शारीरिक बल या सौन्दर्य से नहीं, जीवन का महत्व होता है—सदाचार से, सद्व्यवहार से।

मानव ने अपने जीवन का सही मूल्यांकन नहीं किया है। सदाचार से मानव—जीवन की महत्ता है, इस तथ्य को उसने भुला दिया है। यही कारण है कि व्यक्ति, परिवार, समाज, देश

और विश्व में विकृतियाँ फैल रही हैं, अशान्ति उभर रही है और चारों ओर उच्छृंखलता का वातावरण बन रहा है। धार्मिक और नैतिक मर्यादाएँ लुप्त हो रही हैं, कर्तव्य-भावना निकल चुकी है, सर्वत्र स्वार्थान्धता और लोलुपता का बोलबाला है।

जीवन के सारभूत तत्व सदाचार की ओर न व्यक्ति ध्यान दे रहा है और न परिवार ही इस विषय में सोच रहा है। समाज और राष्ट्र के कर्णधार भी इस विषय में चिन्तन नहीं कर रहे हैं। परिणामस्वरूप व्यक्ति जर्जरित होता चला जा रहा है। पारिवारिक जीवन खोखला हो रहा है। सामाजिक जीवन विश्रृंखलित हो रहा है। राष्ट्रीय धरातल पर जायें, तो राष्ट्रीय चरित्र का नाम-निशान भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। विश्व की दृष्टि से अपेक्षित सदाचार का कहीं पता नहीं है। ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक सुज्ञ और विवेक-सम्पन्न व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह इस विषय की ओर अपनी चिन्तन धारा मोड़े। यह सन्देहातीत तथ्य है कि जब-जब मानव ने सदाचार की अवहेलना की, उस पर विपत्ति के बादल मंडराये हैं, विषमताएँ पनपी हैं, जीवन का धागा टूटा है, समाज उच्छृंखल बना है और राष्ट्र पर संकट गहराया है। अतएव यदि जीवन का सही मूल्यांकन करना है, यदि नव-निर्माण की शक्ति के साथ वर्तमान को स्वर्णिम आदर्शों पर टिकाना है और भविष्य को उज्ज्वलतर बनाना है, तो जीवन में सदाचार को अपनाना ही होगा। सदाचार को अपनाये बिना जीवन के किसी भी क्षेत्र में प्रगति नहीं की जा सकती। व्यक्तिगत जीवन में, पारिवारिक परिवेश में, जाति या समाज-गत क्षेत्र में, राष्ट्रीय परिधि में और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में सर्वत्र सदाचार और अनुशासन की आवश्यकता है।

आज की दृष्टि से सोचें या अतीत काल पर दृष्टिपात करें, तो सदाचार और अनुशासन की महत्ता को और उसकी

अनिवार्यता को स्वीकार करना ही होगा। वर्तमान संदर्भों में तो इनकी बहुत ही अधिक आवश्यकता है, पर्युषण पर्व के अवसर पर दिव्य महापुरुषों के चरित्रों को, उनकी शुद्ध निष्ठा को और जीवन-निर्माण की कलाओं को श्रवण करने का प्रसंग आता है, तब जीवन में सच्चरित्रता की दिव्य भावना प्रकट होती है और अनुभव होता है कि वस्तुतः सदाचारमय जीवन ही जीवन है। सदाचारहीन मानव मशीन की तरह जीता है और मशीन की तरह समाप्त हो जाता है।

vtq ekyh

राजगृही नगरी में शान्त वातावरण में जो उथल-पुथल हुई, शांत-परिवारों में भी आग लगी, वह चरित्रहीनता का ही दुष्परिणाम था। यह अर्जुन माली की घटना से स्पष्ट हो जाता है। अर्जुन माली जाति से माली था, किन्तु उसके जीवन में नैतिकता थी और सदाचार व्याप्त था। उसका व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन सुखी, शांत और नियमित था। आजीविका के निर्वाह हेतु वह नैतिकतापूर्ण श्रम का मार्ग अपनाकर चल रहा था। अनैतिक आचरण द्वारा सुखोपभोग के साधन जुटाना उसे पसन्द था। उसकी भावना के अनुरूप ही उसकी धर्मपत्नी भी उसके कार्य में सदा सहयोग प्रदान करती थी। वह कर्तव्य-परायण और पति के नैतिक कार्यों में सहयोग देनेवाली सुयोग्य गृहिणी थी। यही कारण है कि उसका पारिवारिक जीवन एकदम शांत और सुखी था।

पारिवारिक जीवन की शांति हेतु परिवार के सदस्यों में अपने कर्तव्य और उत्तरदायितवों का बोध होना आवश्यक है। परन्तु प्रायः देखा जाता है कि आधुनिक परिवारों में घरेलू वातावरण अशांत और क्लुषित रहता है। छोटी-छोटी बातों को लेकर परिवार के सदस्य घर में महाभारत खड़ा कर देते हैं। परिणामस्वरूप

घर की शांति नष्ट हो जाती, घर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, पारिवारिक स्नेह की भावना टूक-टूक हो जाती है और घर का आँगन कलह एवं क्लेश का अड्डा बन जाता है। जो परिवार सुख-शांति का आगार और आधार होता है, वही कारागार के समान दुःखदायी बन जाता है। इसका एकमात्र कारण है—परिवार के सदस्यों में कर्तव्य भावना का अभाव। यदि परिवार के सदस्य अपने दायित्व को समझकर पारिवारिक आचार संहिता और अनुशासन का पालन करते हैं, तो निस्संदेह वह परिवार सुखी, समृद्ध एवं शांत होता है। वहाँ विषमता का वातावरण व्याप्त नहीं होता। उसकी आर्थिक अवस्था डाँवाडोल नहीं होती। पारिवारिक जीवन वहाँ टूटते नजर आते हैं, जहाँ परिवार के सदस्य अपनी जिम्मेदारियों को भुलाकर एक ही व्यक्ति पर निर्भर हो जाते हैं। परिवार में एक ही व्यक्ति कमाये और शेष व्यक्ति हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें—उपभोग मात्र करें, तो उस परिवार की दशा विकृत और विषम हो जाती है।

मध्यमवर्गीय जनता इसीलिए परेशान है कि उनके यहाँ कमानेवाला एक है और खानेवाले दस हैं। श्रमिक वर्ग में यह स्थिति नहीं है। वहाँ परिवार के सब सदस्य कार्य करते हैं—कमाते हैं। आजीविका के साधन जुटाने में परिवार के सब सदस्य सहयोगी बनते हैं। अतएव आर्थिक दृष्टि से मजदूर वर्ग प्रगति कर रहा है और मध्यम वर्ग दिन-प्रतिदिन शिथिल पड़ता जा रहा है या यों कहना चाहिए कि वह खोखला होता जा रहा है। वह बड़ी दयनीय दशा से गुजर रहा है। उसकी और किसी का ध्यान भी आकृष्ट नहीं हो रहा है।

अर्जुन माली का जीवन मध्यम वर्ग की भांति दयनीय नहीं था। उसके परिवार के सब सदस्य पारिवारिक समस्याओं को हल करने में लगे हुए थे। वह प्रामाणिकता के साथ बगीचे

का संरक्षण करता था, फल-फूलों के द्वारा आजीविका की स्थिति को सुदृढ़ करता था और नैतिक धरातल पर जीवन को सुव्यवस्थित रख रहा था। वह प्रतिदिन की तरह पुष्प-चयन करने हेतु बगीचे में पहुँचा। उसकी धर्मपत्नी भी पतिदेव को सहयोग करती हुई पुष्पों के चयन में लगी हुई थी। एक तरफ नैतिकता के साथ श्रममय जीवन का यह क्रम चल रहा था।

mPN[ky Vkyh

दूसरी तरफ उसी राजगृही नगरी में कुछ उच्छृंखल युवकों की टोली उधम मचाने में लगी हुई थी। उस टोली के युवक सदस्य ऐश-आराम और भौतिक सुख-सुविधाओं को ही जीवन का सर्वस्व माने हुए थे। इसी आधार पर वे जीवन को नापते और तोलते थे। इसके लिए उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन को खण्डित कर लिया था, नैतिकता के सारे बन्धनों को तोड़ डाला था, धार्मिकता तो उनके लिए अभिशाप रूप थी, सामाजिक चारित्र को वे समझते ही नहीं थे और राष्ट्रीय चारित्र का तो नामोनिशान भी नहीं था। वे स्वच्छन्द वृत्ति के युवक इस नास्तिक विचारधारा को लेकर चल रहे थे कि—

; koTthor~ l q[ka thor~ __.ka NRok ?kra fi crA

HkLeHkrL; ngl; i qjkeua drAA

vFk& जब तक जीना है, आराम से जीओ। ऋण लेकर भी घृतपान करो। जब शरीर भस्मीभूत हो जाता है, तो पुनः उसका आगमन कैसे और कहाँ से? दुर्लभ शरीर प्राप्त है, अतएव खूब-जी भरकर खाओ-पीओ, ऐश-आराम करो। धर्म-कर्म, नीति-रीति, आचार-विचार और विधि-निषेध की बातें सब थोथी हैं। धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय मर्यादाएँ या आचार-संहिताएँ खोखली हैं। यह दृष्टिकोण कितना अपूर्ण और भ्रमपूर्ण है? इस

प्रकार की भावना अत्यन्त घात और सर्वतोमुखी विनाश करनेवाली है। यह भावना व्यक्ति के जीवन को नष्ट करती है, परिवार को बर्बाद करती है, समाज को कलंकित करती है, राष्ट्र का अधःपतन करती है और विश्व में संघर्ष पैदा करती है।

vkè; kfRedrk dh vkj >plko

विश्व में वैज्ञानिक क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई है। विज्ञान ने भौतिक दृष्टि से बहुत विकास किया है। नित-नये अनुसन्धानों ने सम्पूर्ण विश्व को चमत्कृत किया है। निस्संदेह भौतिक दृष्टिकोण से विज्ञान बहुत आगे बढ़ चुका है। परन्तु इन अनुसंधानों का लक्ष्य भौतिक-मात्र होने के कारण दुनिया के आंगन में जो सुख-शांति परिलक्षित होनी चाहिए थी, वह नहीं हो रही है। इतना ही नहीं, अनुसन्धानों के कारण विश्व में अशान्ति का वातावरण बढ़ा है। यह सब निराशाजनक स्थिति है, परन्तु इस बीच अब आशा की किरण प्रस्फुटित हो रही है। भौतिकवादी वैज्ञानिक अब इस सत्य और तथ्य को समझने लगे हैं कि एकान्त भौतिकवादी दृष्टिकोण विश्व के लिए हितकारी नहीं है। उन्हें अब अनुभव होने लगा है कि भौतिकता ही सब कुछ नहीं है। जिन लोगों ने भौतिक साधनों के सहारे दुनिया में रक्तक्रांति का सूत्रपात किया और जो बहुत दूरी तक इस मार्ग पर चले, वे भी अब अनुभव करने लगे हैं कि दुनिया में शान्ति स्थापित करने का यह सही मार्ग नहीं है। उनकी दृष्टि अब बाहर से हटकर अन्दर की ओर मुड़ती हुई दृष्टिगत होती है। वे समझने लगे हैं कि आध्यात्मिक धरातल पर ही सच्चरित्रता स्थाई रह सकती है। नैतिकता भी आध्यात्मिक आधार पर पुष्ट होती है अन्यथा वह प्रदर्शन और व्यवसाय का रूप ले लेती है।

इस आध्यात्मिकता की ओर जिन वैज्ञानिकों का ध्यान गया है, उनमें प्रमुख स्ट्रांगबर्ग ने मानव जीवन के विषय में

महत्वपूर्ण विवेचन किया है और अभौतिक तत्व की स्थापना प्रतिपादित की है। उन्होंने अपनी "यंग युनिवर्स" नामक पुस्तक में जो अभौतिकता का विवेचन प्रस्तुत किया है, वह दूसरे विश्वयुद्ध के बाद का क्रान्तिकारी विवेचन माना जाता है। उसकी भूमिका लिखी है, डॉ. आइन्सटाइन ने। वैज्ञानिक अनुसंधान की सभी शोध-संस्थाओं ने उसका हृदय से सुस्वागत किया है। वह अभौतिक तत्वों अर्थात् अध्यात्म की ओर संकेत कर रहा है।

हमारे यहाँ की कुछ विचित्र ही स्थिति है। पश्चिम के लोग भौतिकता से ऊबकर, त्रस्त होकर, परेशान होकर अन्यत्र शांति की खोज कर रहे हैं, वहाँ भारतीय जनता का मानस भौतिकता की ओर ललचाई दृष्टि से देख रहा है। यह भारतीय जनता के लिए लज्जा का विषय होना चाहिए कि पाश्चात्य देश जिसे उतारकर फेंक रहे हैं, उसे भारतीय अपना श्रृंगार समझ रहे हैं। यूरोप, अमेरिका व रूस के लोग भौतिकता से ऊब चुके हैं और वे अभौतिक तत्व की प्राप्ति के प्रति उत्सुकता प्रकट कर रहे हैं, वहाँ भारतीय जनता विरासत में प्राप्त विभूति अध्यात्म को भुलाकर भौतिकता की ओर कदम बढ़ा रही है।

भारत भूमि का तो यह सौभाग्य रहा है कि यहाँ आध्यात्मिक धरातल पर सच्चरित्रता के विषय में समय-समय पर महत्वपूर्ण मार्गदर्शन मिलता रहा है। तीर्थकरों, ऋषि-मुनियों और अन्य महापुरुषों ने समय-समय पर चरित्र के निर्माण पर बल दिया है। यही नहीं, स्वयं अपने चरित्र द्वारा उन्होंने दुनिया के समक्ष आदर्श प्रस्तुत किया है।

mYVh xak cg jgh gS

दुनिया के अन्य देशों का ध्यान भारत की आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित हो रहा है। वे भारत भूमि को आध्यात्मिक जीवन की जननी मानते हैं। यहाँ आकर वे जीवन में शांति का

अनुभव करने की अभिलाषा रखते हैं। आत्मिक साधना के प्रति उनमें जिज्ञासा और रुचि जागृत हो रही है। परन्तु दुःख का विषय है कि भारतीय जनता अपनी मौलिकता को नष्ट कर भौतिकता की भूल-भुलैया में फँसती चली जा रही है। आत्मिक वैभव के उत्तराधिकारी स्वयं को दीन-हीन मानकर अमेरिका, रूस आदि विदेशों की ओर ललचाई दृष्टि से देख रहे हैं, जबकि विदेशी जनता भारत की आध्यात्मिक सम्पदा से आकर्षित हो रही है। भारतवासी भौतिक सम्पदा की भूख से अमेरिका, इंग्लैण्ड आदि देशों की ओर देख रहे हैं। इस प्रकार यहाँ उल्टी गंगा बह रही है।

भारतीय जनता का मानस इतना पराधीन बन गया है कि उन्हें अपनी संस्कृति की नीति-रीति अच्छी नहीं लगती और प्रत्येक क्षेत्र में विदेशों की नकल करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य हो गया है। विदेशों की जनता भारत से, उसकी सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सम्पदा से बहुत कुछ अपेक्षाएँ रखती है, जबकि भारतवासी रूस की रक्तक्रांति से प्रभावित हो रहे हैं। वे रूस और चीन की नीतियों के राग अलाप रहे हैं, जबकि वहाँ की जनता उनको असफल मानकर अन्य मार्ग की शोध में लगी हुई है। भारतीय जनता की यह अविवेकपूर्ण नकल-वृत्ति उसके दिमाग की गुलामी को अभिव्यक्त करती है।

दूसरों की तरफ अविवेकपूर्ण दृष्टि देखने से, परायी वस्तु को ही अच्छी मानने से भारतीयों की दशा विषम और दीन-हीन बनी हुई है। यदि भारतीय जनता उत्तराधिकार में मिले हुए अपने सिद्धांतों पर, चरित्र-निष्ठा पर प्रामाणिकतापूर्वक आचरण करती, तो वह विश्व में सबसे अग्रगण्य होती।

अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है, अब भी संभलने का अवसर है। यदि सुख-शांति चाहते हो, यदि दुनिया में प्रगतिशील

कहलाना चाहते हो, यदि प्रगति की दौड़ में आगे बढ़ना चाहते हो, तो इसके लिए एक ही उपाय है, चरित्र की प्रतिष्ठा। यदि सच्चरित्र को महत्व दिया जाये, उसका वास्तविक मूल्यांकन किया जाये, उसको जीवन का मापदण्ड बनाया जाये, उससे व्यक्ति को तोला जाये, तो भारत का सारा का सारा नक्शा ही बदल सकता है। आवश्यकता है कि इस चरित्र गुण को जीवन के हर क्षेत्र में पुनः प्रतिष्ठित किया जाये। व्यक्तिगत जीवन में, पारिवारिक परिवेश में, धर्म और समाज के क्षेत्र में, राष्ट्रीय परिधि में और विश्व के विशाल दायरे में भी चरित्रिक गुणों का विकास किया जाये। ऐसा करने से उन सभी समस्याओं का समाधान हो जायेगा, जो आज भयंकर रूप में देश और विश्व के सामने खड़ी हैं।

सात्विक और तामसिक शक्तियों का संघर्ष विश्व के मंच पर सदाकाल से चलता रहा है और चलता रहेगा। तामसिक शक्तियाँ आँधी तूफान की तरह सात्विक शक्तियों को परास्त करने में लग जाती हैं, तदपि सात्विक शक्तियाँ अपनी साधना के आधार पर दृढ़ बनी रहती हैं। थोड़े समय के लिए घटाटोप मेघ सूर्य की प्रभा को आच्छादित कर सकते हैं, परन्तु सूर्य के अस्तित्व को वे समाप्त नहीं कर सकते। अन्ततोगत्वा सूर्य का प्रभापुंज प्रकट होकर ही रहता है। यदि व्यक्ति सात्विकता के साथ चरित्र बल का सम्बल लेकर जीवन में गतिशील होता है, तो प्रारम्भ में भले ही उसे आँधी-तूफान का सामना करना पड़े, अन्ततः वह सब कसौटियों को पार करता हुआ जीवन में सफलता प्राप्त करता है।

राजगृही नगरी के उन भौतिकवादी युवकों ने राज्य और राजा के प्रति संभवतः कुछ ऐसा व्यवहार किया होगा, जिससे तत्कालीन नरेश ने उन व्यक्तियों को बिना कुछ सोचे-समझे बहुत प्रश्रय दे दिया था, जिसके कारण वे युवक अपने आपको सर्वतंत्र-स्वतंत्र समझने लगे थे और मनमानी करने पर तुले थे।

नीतिकारों का कथन है—

**; kSua /ku&I Ei fUK% i HkRoefoosdrkA
, dSdel; uFKkz fdeq ; = prqV; eAA**

अर्थ:— जवानी अपने आप में इतनी दिवानी है कि यदि इस पर नियंत्रण नहीं रखा जाये, तो यह भयंकर अनर्थों की परम्परा को जन्म देती है। यह शांत और सुखी जीवन में आग लगानेवाली हो सकती है। जवानी (यौवन) के साथ यदि धन सम्पत्ति का योग हो जाये, तो अनर्थों की संभावना एक पर एक ग्यारह की तरह बढ़ जाती है। यदि इसके साथ प्रभुत्व (सत्ता) मिल जाये, तो (111) एक सौ ग्यारह की तरह अनर्थों की संभावना बहुत अधिक बढ़ जाती है। यदि इनके साथ अविवेक भी जुड़ जाये, तो फिर कहना ही क्या है? सर्वनाश ही समझ लेना चाहिए। यौवन, धन—सम्पदा, सत्ता और अविवेक— ये चारों अलग—अलग भी भयंकर अनर्थकारी होते हैं। जब ये चारों एक स्थान पर एकत्र हो जायें, तब तो कहना ही क्या? उस परिस्थिति में हमें बर्बादी ही समझ लेनी चाहिए। वे सर्वनाश के कारण बनते हैं।

राजगृही की वह टोली इन चारों दुर्गुणों से भरी हुई थी। तरुणाई थी, वैभव था, सत्ता भी मिल गयी थी और विवेक का दीपक भी बुझ चुका था। उनकी उद्वण्डता सीमा पार कर गयी थी। अनैतिकता और चरित्रहीनता उनकी जीवनचर्या बन चुकी थी। निरंकुशता के कारण वे मनमानी करने पर तुले हुए थे।

ngkpkj dh i jkdK'Bk

उन छह व्यक्तियों ने उद्वण्डता के साथ उद्यान में प्रवेश किया। अर्जुन माली को पुष्पचयन करते हुए उन्होंने देखा। उनकी दृष्टि यहीं तक समिति नहीं रही। अर्जुन माली की धर्मपत्नी की ओर भी उनकी दृष्टि गयी। उसके रूप—लावण्य को

देखकर वे युवक वासना से पागल बन गये और दुर्भावना से यक्षालय में जाकर कपाट की ओट में छिप गये। ज्योंही अर्जुन माली अपनी पत्नी सहित यक्षालय में पहुँचा, त्योंही पीछे से आकर उन्होंने उसे पकड़ लिया और उसकी मुश्कियाँ बांध दी। इसके पश्चात उन्होंने उसकी धर्मपत्नी के साथ जो अवर्णनीय दुर्व्यवहार किया, वह मानवता के लिए कलंक और अभिशाप था। अर्जुन माली का कलेजा फटा जा रहा था। आक्रोश और रोष के कारण वह तमतमा रहा था, परन्तु बन्धनों के कारण वह लाचार और विवश था। अपनी आँखों के सामने यह अत्याचार और पापाचार होता हुआ देखकर उसका आक्रोश अत्यन्त तीव्र और प्रचण्ड हो उठा। वह सहसा बोल उठा—क्या इस यक्ष में कोई तथ्य और सत्य नहीं रह गया है?

ऐसे स्थानों पर व्यन्तर जाति के देव परिभ्रमण भी करते रहते हैं। संयोग की बात है कि ज्योंही अर्जुन माली के मन में ऐसा विकल्प हुआ, त्योंही मुद्गरपाणि यक्ष ने अपनी वैक्रिय शक्ति के बल से अर्जुन माली के शरीर में प्रवेश किया। यक्षाविष्ट अर्जुन माली ने अपने सब बन्धन तोड़ डाले और हजार पल प्रमाण मुद्गर—जो किसी के उठाये नहीं उठता था—उठाकर उन छहों व्यक्तियों को मार डाला। उसने अपनी पत्नी बन्धुमति को भी इस अर्थ में दोषी माना कि उसने अत्याचारियों के अत्याचार को स्वयं सहन किया। यदि वह चाहती, तो अत्याचारियों के अत्याचार की शिकार बनने के पूर्व ही अपनी जिह्वा खींचकर प्राण त्याग देती। उसे भी अपराधिनी मानकर उसने उसकी भी हत्या कर दी।

vijk/dsHkxhjk

अर्जुन माली की विचारधारा आगे बढ़ी। उसने सोचा, इन युवकों में यह उद्दण्डता कैसे पनपी? कौन है, इनको प्रोत्साहित करनेवाला? इस नगर के नरेश और जनता भी अपराधी है

जिन्होंने ऐसे गुंडों को—अत्याचारियों को, दुराचारियों को, समाजद्रोहियों को प्रश्रय दिया है। कहीं भी चरित्रहीनता का प्रसंग आये और यदि जनता उसे चुप—चाप सहन करती रहे, यदि उसका उचित प्रतिकार न करे, तो वह भी अपराधी है। यक्षाविष्ट अर्जुन माली प्रतिदिन छह पुरुष और एक स्त्री की हत्या करने लगा।

राजगृही नगरी में इस भयंकर घटना—चक्र को लेकर तहलका मच गया। राजकीय व्यवस्था अस्त—व्यस्त हो गयी। जनता का जीवन संकट में पड़ गया। नरेश ने आज्ञा प्रसारित की कि कोई व्यक्ति नगर से बाहर नहीं जाये। बाहर अर्जुन माली का उपद्रव है। वह बड़ा बलवान है। यदि कोई बाहर जायेगा, तो वह प्राणों से हाथ धो बैठेगा। सरकार इसके लिए जवाबदार नहीं होगी। सब लोग किले में आ जायें। वहाँ सारी व्यवस्था रहेगी। नगर के द्वार बन्द कर दिये गये। लोगों का आवागमन बन्द हो गया। तदपि उस यक्षाविष्ट अर्जुन ने इधर—उधर से आने—जानेवाले व्यक्तियों को मारना चालू रखा। उसने कुल 1141 व्यक्तियों की हत्या कर दी। दुनिया की दृष्टि से वह घोरतम पापी था, परन्तु सोचने का विषय है कि उसे इस क्रूरतम स्थिति में पटकनेवाला कौन है? क्यों वह इतना निष्ठुर पापी बन गया?

बन्धुओं! यदि गंभीरता से चिन्तन करेंगे, तो मालूम होगा कि अर्जुन माली को हत्यारा बना देने में चरित्रहीनता का सर्वोपरि भाग है। साथ ही वह जनता भी इसके लिए दोषी है, जिसने ऐसे दुराचारियों को सहन किया। उन्हें इस सीमा तक स्वच्छन्द और उद्दण्ड बनने दिया। यदि जनता भावात्मक एकता के साथ उन युवकों का प्रतिकार करती, तो ऐसी नौबत ही नहीं आती। परिस्थिति—वश राज्य ने कैसी भी आज्ञा क्यों न प्रसारित कर दी हो, यदि जनता में एकता हो, तो वह जनार्दन का रूप ले लेती है। जनता—जनार्दन अपने नैतिक और सात्विक आधारों पर

एकता के बल से बड़ी-बड़ी शक्तियों को परास्त कर सकती है। परन्तु जनता में यदि एकरूपता नहीं है, मुण्डे-मुण्डे मतिभिन्ना की स्थिति है, अपनी-अपनी डफली और अपनी-अपनी राग की कहावत चरितार्थ होती रहती है, तो बड़ी दयनीय दशा बन जाती है। अर्जुन माली ने हत्याएँ की, उसे पाप अवश्य लगा। फिर भी वह अकारण पाप नहीं कर रहा था। वह सामाजिक पाप के प्रतिशोध के लिए पाप कर रहा था। वह मूलतः हत्यारा या पापी नहीं था। उसे हत्यारा और पापी बनाया चरित्रहीनता के अपराधियों ने! समाज से पोषण पायी हुई दुराचार की वृत्तियों ने उसे हिंसक बनाया। इस अर्थ में इन हत्याओं के लिए अर्जुन माली जितना दोषी है, उतना ही, बल्कि उससे भी अधिक दोषी है, समाज में व्याप्त दुराचार और अमर्यादित स्वेच्छाचार। अपराध को ऊपर-ऊपर से देखने के बजाय उसके मूल को पकड़ना चाहिए। यह देखना चाहिए कि अपराध का उद्गम कहाँ से हुआ है?

ifrr ikou iHkqegkohj dk inkiZk

ऐसे विषम वातावरण में आध्यात्मिक अन्तरिक्ष के जाज्वल्यमान सितारे, जागदुद्धारक, उज्ज्वलतम चारित्र के स्वामी, पापियों के पापों को धो देनेवाले पतित-पावन श्रमण भगवान महावीर राजगृही के बाहर पधारे। उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं था, क्योंकि वे स्वयं सब प्राणियों के अभयदाता थे। जो अभय देता है, वह निर्भय होता है। जो दूसरों को भय देता है, भयभीत करता है, आतंकित करता है, वह स्वयं भयभीत और आतंकित होता है। प्रभु महावीर जगत के सब जीवों के लिए अभयदाता थे। अतः उन्हें भय किस बात का हो? वे अपनी आत्मिक शक्ति से सम्पन्न थे। उनको किसी का क्या भय हो सकता है? वे निर्भय होकर राजगृही के बाहर उद्यान में विराजे।

सम्पूर्ण नगर में सूचना व्याप्त हुई कि पतित-पावन प्रभु

महावीर स्वामी, जो सभी को भव सागर से तारनेवाले है— का हमारे नगर के बाहर पदार्पण हुआ है। नगरवासियों की उत्कंठा हुई कि प्रभु महावीर स्वामी के दर्शन कर नेत्रों को पावन करें, उनकी पवित्र वाणी श्रवणकर कानों को कृतार्थ करें, उनकी प्रत्यक्ष पर्युपासना कर जीवन को धन्य बनायें, परन्तु इस कार्य में सबसे बड़ी बाधा है— अर्जुन माली का उपद्रव! वह मार्ग में उपद्रव मचाता है। वह किसी को जीवित छोड़नेवाला नहीं है। बड़ी विषम समस्या है राजगृही के निवासियों के सामने!

यदि कोई भावुक व्यक्ति दर्शन करने हेतु जाने को उत्सुक बनता है, तो उसके परिवार के व्यक्ति उसे समझाते हैं कि भाई! तुम यहीं से प्रभु को वन्दन कर लो। वे परमात्मा महावीर प्रभु यहीं से तुम्हारी वन्दना स्वीकार कर लेंगे। वे घट-घट के ज्ञाता हैं। यदि हठ करके तुम जाओगे भी, तो अर्जुन माली तुम्हें प्रभु के पास पहुँचने भी नहीं देगा। बीच में ही वह तुम्हारी हत्या कर देगा। अतः यही अच्छा है कि यहीं से प्रभु को वन्दन कर लिया जाये। नागरिक बड़ी दुविधा में फँसे हुए थे। उन्हें कुछ सूझ नहीं रहा था।

I n'kū dh n'kū&Hkouk

श्रमणोपासक सुदर्शन सेठ को जब प्रभु के पदार्पण के समाचार-ज्ञात हुए, तो वह प्रभु के दर्शनों की उत्कंठा से विभोर हो उठा। उसकी दर्शन-भावना इतनी तीव्र और उत्कट थी कि वह अपने प्राणी की कीमत पर भी प्रभु के दर्शनों के लिए अधीर हो उठा। उसे अपने चरित्र-बल पर पूरा विश्वास था। उसने सोचा—मैं श्रमणों का उपासक हूँ और श्रमण भगवान महावीर का तत्त्वज्ञान सीखा है, आत्मा और शरीर के भेद को जाना है, जड़ और चेतन के विवेक को समझा है। आत्मा शाश्वत है और शरीर अशाश्वत है। अशाश्वत शरीर के लिए शाश्वत धर्म की अवहेलना

करना उचित नहीं है। मेरा जीवन आध्यात्मिक धरातल पर अवलम्बित है। प्राणों से अधिक महत्व होता है धर्म और कर्तव्य का! अतएव किसी भी कीमत पर मुझे प्रभु के दर्शनार्थ जाना ही है।

उक्त भावना को लेकर सुदर्शन घर से निकला। वह निर्भय होकर आगे बढ़ रहा है। ऐसी निर्भीकता भौतिक जीवन से ऊपर उठने पर आती है। जब तक भौतिक पिण्ड शरीर पर ममत्व है, जब तक भौतिक-पौद्गलिक पदार्थों में आसक्ति है, तब तक आध्यात्मिक तत्व का विश्वास नहीं बैठता। एक बार अध्यात्म में पक्का विश्वास हो जाता है, तो वह व्यक्ति भौतिक तत्वों की परवाह नहीं करता। सुदर्शन गृहस्थ था, परन्तु उसमें सदाचार का—अध्यात्म का प्रबल बल था। उस अध्यात्म की आस्था ने उसे निर्भय बना दिया था। वह प्रभु दर्शन के लिए गन्तव्य मार्ग पर आगे बढ़ रहा है।

सुदर्शन को जाते हुए देखकर कुछ लोग उसका उपहास करने लगे। वे कहते थे— देखो, धर्म का ढोंगी जा रहा है। जब उसका बाप अर्जुन माली सामने आयेगा, तो खबर पड़ेगी कि दर्शन करना कैसा होता है? इस प्रकार ऊँची—नीची अनेक प्रकार की कई चर्चाएँ भी सुनायी पड़ती थीं। परन्तु सच्चा व्यक्ति मान-अपमान से विह्वल नहीं होता। वह न प्रशंसा का भूख होता है और न निन्दा अपमान से डरता है। वह तो अनासक्त भाव से, कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ता रहता है।

सुदर्शन राजगृही से बाहर निकल गया। अर्जुन माली उसकी तरफ आया। कई दिनों से उसे कोई शिकार नहीं मिल रहा था। भूखे सिंह की तरह वह उसकी ओर लपका। सेठ सुदर्शन ने सोचा कि यह अर्जुन माली अभी जिस स्थिति में चल रहा है, उसे देखते हुए इस समय इसे समझाने का अवसर नहीं है। यह मुझ पर आक्रमण करेगा ही। उपसर्ग की स्थिति को सामने देखकर मुझे आत्मशुद्धि कर लेनी चाहिए। मुझे शरीर का

मोह नहीं है, यह रहे या न रहे, इसकी मुझको चिन्ता नहीं है, परन्तु आत्मिक आलोचना द्वारा मुझे अपनी आत्मा का संशोधन कर लेना चाहिए। यह विचारकर वह शुद्ध भूमि को पूजकर वहाँ बैठ गया। वहीं से प्रभु को नमस्कार किया और निवेदन किया कि मैं आपके दर्शन हेतु आ रहा था। परन्तु मार्ग में उपसर्ग आ जाने के कारण अपने जीवन की आलोचना आपके चरणों में अर्पण करता हूँ। मैंने अपने जीवन को शुद्ध रखने का प्रयास किया है, किसी तरह का अनैतिक आचरण नहीं किया है, समाज या राष्ट्र के प्रति द्रोह नहीं किया है, नीतिपूर्वक धार्मिक जीवन यापन करते हुए मैं आगे बढ़ा हूँ, तदपि भूल हो जाना स्वाभाविक है। जानते-अजानते होनेवाले दोषों की शुद्धि हेतु मैं आलोचना ग्रहण करता हूँ। आगे के लिए प्रत्याख्यान करता हूँ। इस उपसर्ग में यदि यह जीवन छूट जाये, तो जीवन पर्यन्त के लिए चारों आहार और अठारह ही पापों का प्रत्याख्यान करता हूँ। यदि उपसर्ग टल जाये, तो श्रावक की मर्यादा से चलूँगा। इस प्रकार उसने सागारी संधारा अंगीकार कर लिया। वह निर्भय होकर परमात्मा का ध्यान करने लगा। उसने प्रभु से यह प्रार्थना नहीं की कि हे प्रभो! मैं आपका उत्कृष्ट भक्त हूँ। आपके दर्शन के लिए आ रहा हूँ। अतः आप मेरी रक्षा करें। यदि मैं बीच में मारा जाऊँगा, तो लोग आपको बदनाम करेंगे कि देखो भगवान का भक्त मारा गया। इस प्रकार स्वार्थ-भरी प्रार्थना उसने नहीं की। सच्चा भक्त भौतिक कामना नहीं करता। वह अपने स्वार्थ के लिए प्रभु को प्रार्थना की रिश्वत नहीं देता। वह अपनी कर्तव्य-निष्ठा को लेकर ही चलता है। दूसरों के संरक्षण के लिए वह अपना जीवन अर्पण कर देता है, परन्तु अपने जीवन के लिए वह याचना नहीं करता।

tVk; wdh Hkã

रामायण में जटायु का प्रसंग आता है। रावण ने इस

पक्षी के पंख उखाड़ दिये थे। सीता की खोज में जब पुरुषोत्तम राम उसके पास पहुँचे, तो उन्होंने उसे गोद में उठा लिया और कहा—तूने अनीति का प्रतिकार किया, रावण के साथ संघर्ष में उसने तेरे पंख उखाड़ लिये। तूने अपनी शक्ति के अनुसार बहुत बड़ा कार्य किया है। मैं तुझसे प्रसन्न हूँ। तू चाहे, तो मैं तेरे सोने के पंख लगा दूँ और चाहे, तो पहले जैसे ही पंख लगा दूँ।

जटायु ने गद्गद् होकर कहा—प्रभो! मुझे न सोने के पंख चाहिए और न पूर्ववत् पंख ही। मुझे तो केवल आपकी गोद चाहिए और मैं उसी में अपने जीवन का अन्तिम क्षण बिताना चाहता हूँ।

बन्धुओं! जटायु जैसी भक्ति—भावना आज के मनुष्यों में अथवा भक्त कहे जानेवालों में है क्या? यदि जटायु के स्थान पर आज का मनुष्य हो और कोई उससे कहे कि भाई! मानलो, यदि किसी ने तुम्हारे हाथ—पाँव तोड़ दिये, तो क्या मैं सोने के हाथ—पाँव लगा दूँ? तो कितने भाई तैयार हो जायेंगे? लोग सोने के पीछे पागल हो रहे हैं, परन्तु यह नहीं जानते कि पीछे भागने से सोना नहीं मिलता। छाया के पीछे ज्यों—ज्यों दौड़ा जाता है, त्यों—त्यों छाया आगे भागती है। छाया को पीठ देते हैं, तो वह अपने—आप पीछे भागती चली आती है।

I q'ku dk è; ku

सुदर्शन श्रमणोपासक दृढ़ आत्मनिष्ठा के साथ बैठा हुआ है। वह आत्मालोचन में लगा हुआ है। ध्यान की मुद्रा में वह अवस्थित है। ध्यान की भी कई मुद्राएँ होती हैं। किसी में आँखें बन्द की जाती हैं, किसी में आँखें खुली रहती हैं और नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि स्थिर रखी जाती है। उपसर्ग की स्थिति में सेठ सुदर्शन की ध्यान मुद्रा में आँखों की पलकें खुली हुई थीं। अर्जुन माली का मुद्गर उठा, यह सुदर्शन की दृष्टि में आ गया था। सेठ अविचल रहा। उसके मन में तनिक भी अस्थिरता नहीं

आयी, वह डाँवाडोल नहीं बना, अर्जुन के प्रति उसे तनिक भी द्वेष नहीं आया। सुदर्शन मुद्गर-प्रहार की प्रतीक्षा में है, परन्तु यह क्या हुआ, मृद्गर अर्जुन के हाथ में ऊँचा उठा ही रह गया, वह नीचे नहीं आ सका! ज्योंही सुदर्शन की दृष्टि अर्जुन पर पड़ी, उसके शरीर से यक्ष का प्रभाव हट गया। अर्जुन धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा। संघर्ष की सारी स्थिति समाप्त हो गयी। सुदर्शन अब अर्जुनमाली को भी आत्मीय भाव से देखने लगा। उसे इस घृणित कल्पना का स्पर्श तक नहीं हुआ कि यह हत्यारा है, इसने 1141 निरपराध व्यक्तियों को हत्या की है, यह मर रहा है, तो मरने दो, ऊपर से दो लात और टिकाओ। पानी को पाप की सजा मिलनी ही चाहिए। सेठ सुदर्शन ने उससे घृणा नहीं की। उसने उसकी सार-संभाल की। उसे होश में लाने के प्रयास किये। होश आने के बाद अर्जुन माली ने पूछा-आप कौन हैं? कहाँ पधार रहे हैं?

सुदर्शन ने मृदु स्वर में कहा-मैं श्रमणोपासक सुदर्शन हूँ और मेरे आराध्य श्रमण भगवान महावीर की उपासना के लिए जा रहा हूँ।

अर्जुन सोचता है कि जिसके भक्त में इतनी शक्ति है कि दृष्टि पड़ते ही यक्ष का प्रकोप नष्ट हो गया, उसके भगवान कितने शक्तिशाली होंगे?

आप भी सोचते होंगे कि दृष्टि पड़ने-मात्र से यह सब कैसे हो गया? परन्तु दृष्टि में अचिन्त्य शक्ति होती है। उसे साधने की आवश्यकता है। सच्चरित्रता और पवित्राचार के द्वारा यह संभव है। चरित्रहीनता हो, तो अन्तर की साधना नहीं होती। चरित्रहीन की दृष्टि में कोई ताकत नहीं होती। उसकी दृष्टि क्षीण होती जाती है। जो आध्यात्मिक जीवन निष्ठा से संपादित होता है, उसकी दृष्टि में शक्ति आ जाती है। आप इस विषय में

चिन्तन करेंगे, तो आपको यह अनुभव हो सकेगा।

आत्मिक बल के सहारे दुनिया आगे बढ़ सकती है। जब अन्य सब बल हार जाते हैं, तब आध्यात्मिक शक्ति का सहारा प्राप्त होता है। ज्ञानीजनों ने इस भाव को प्रकट करते हुए कहा है:—

vkre cy gh gA

I c cy dk I jnkj] vkre cy gh gA

vkre cyokyk vycyk] fulk; gkdj nrk BykA

yMdj 'kš t xr I § vkf[kj yrk ckth ekjA

vkre cy gh g\$ I c cy dk I jnkjA

vkre cy gh gA

कविता की अनुभवपूर्ण कड़ियों में कहा गया है कि दुनिया में कई तरह के बल माने गये हैं। परन्तु सब बलों में प्रधान बल आत्मबल ही है। आत्म—बल की शक्ति बड़ी विचित्र होती है। दुनिया की सारी ताकतें एक ओर हों, तो भी वह अकेला ही उनसे संघर्ष करता है और अन्ततः विजय प्राप्त करता है। सेठ सुदर्शन का उदाहरण आपके सामने है। वह अकेला ही आपत्ति की परवाह किये बिना प्रभु के दर्शन हेतु चला और कोई उसके साथ नहीं था। केवल आत्म—बल ही उसका अभिन्न साथी था। आत्मिक बल से सुदर्शन ने यक्षाविष्ट अर्जुन माली को परास्त किया। उसके उपद्रव से जनता से मुक्त किया और स्वयं अर्जुन माली तक के जीवन की दिशा को नया मोड़ दे दिया। यह बात सुदूर अतीतकाल की है। परन्तु वर्तमान समय में भी आत्मिक शक्ति के चमत्कार की घटनाएँ कर्णगोचर होती हैं। उनमें से एक इस प्रकार है :—

QDdM+egkRek

अंग्रेजों के शासन-काल की घटना है। एक आत्मिक शक्ति का प्राथमिक साधक अपने निजी कारणों को लेकर मद्रास की ओर रेल से यात्रा कर रहा था। एक अंग्रेज ऑफिसर भी उसी डिब्बे में आकर बैठ गया। उसने देखा कि यह हट्टा-कट्टा हिन्दुस्तानी हैं। वह भयभीत और आशंकित होने लगा। उसने रेल-अधिकारियों से कहा कि इस व्यक्ति को इस डिब्बे से हटा दो। अंग्रेजों का साम्राज्य था। रेल अधिकारियों ने उस महात्मा को कहा कि तुम यहाँ से उठकर दूसरे डिब्बे में चले जाओ। उसने कहा-क्यों जाऊँ? मेरे पास भी रेल का टिकिट है। मैं यहाँ से नहीं हटूँगा। अधिकारियों ने बहुतेरा कहा, परन्तु महात्माजी फक्कड़ थे। वे अड़ गये। उधर वह अंग्रेजी शीघ्रता कर रहा था-जल्दी उतारो इसको। अधिकारियों ने कहा-बाबा! उत्तर जाओ, नहीं तो घसीटकर उतार देंगे। उसने सोचा-अब जिद्द करना बेकार है, अपमानित होने से क्या लाभ है? वह उतर पड़ा। अंग्रेज ऑफिसर प्रसन्न हो गया। अधिकारियों ने गाड़ी चलायी, परन्तु यह क्या? इंजन आगे बढ़ता ही नहीं! ड्राइवर ने बहुत प्रयत्न किया, परन्तु सब निष्फल हुआ। दूसरा इंजन मंगवाया गया, परन्तु वह भी कारगर सिद्ध नहीं हुआ। तीसरा इंजन लगाया गया, वह भी निरर्थक हुआ।

आखिर उन्होंने देखा कि बात क्या है? चर्मचक्षुओं से कुछ प्रतीत नहीं हुआ। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखने पर ज्ञात हुआ कि कुछ किरणें वहाँ सक्रिय हैं। उसका अनुसंधान किया गया कि आखिर ये किरणें कहाँ से आ रही हैं? अनुसंधान से पता चला कि जिस फक्कड़ महात्मा को गाड़ी से नीचे उतारा था, वह अपने सिर के पीछे हाथ रखकर बैठा हुआ था और उसकी दृष्टि इंजन पर लगी हुई थी। उसकी दृष्टि में इतनी ताकत थी कि इंजन की

मशीनरी भी ठप्प हो गयी। रेलवे के अधिकारी आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने अंग्रेज ऑफिसर को समपूर्ण स्थिति समझायी। वह ऑफिसर नीचे उतरा। उस फक्कड़ महात्मा के चरणों में टोप डाल कर कहा कि आप पधारिये और उसी डिब्बे में बैठिये। उसने कहा—नहीं, तुम जाओ! हिन्दुस्तानियों के प्रति तुम ऐसा दुर्व्यवहार करते हो! तुम बैठो उस डिब्बे में, हम बाद में आ जायेंगे। अंग्रेज ऑफिसर ने बहुत अनुनय—विनय की, तब कहीं जाकर वह फक्कड़ माहत्मा उसी डिब्बे में आकर बैठा। उसके बैठते ही इंजन छक—छक करता हुआ आगे बढ़ता गया।

भाइयों! यह चमत्कार तो आध्यात्मिक शक्ति का साधारण रूप है। इससे कई गुनी अधिक शक्ति होती है, आत्म—बल की। कवि आगे कहता है :-

**दश ह हह ग्लकत ह; दज] रकि e'khuagkai y; djA
vkRe&cyh jgrk gSfuHkz] nrk l Hh dks gkA
vkre cy gh gAA
l c cy dk l jnkj] vkre cy gh gAA**

तोप, मशीनगन ओर अन्य शस्त्रास्त्र आध्यात्मिक शक्ति के सम्मुख तुच्छ है। गांधीजी के जीवन की भी एक घटना प्रासंगिक रूप से उल्लेखनीय है।

xkdkth dk vkre cy

दक्षिण अफ्रीका की घटना है। वहाँ मजदूरों और मालिकों के बीच वेतन—वृद्धि और कार्य के घंटों को लेकर विवाद हो गया था। गांधीजी ने मजदूरों के पक्ष को उचित माना, अतएव वे उनका मार्ग—दर्शन कर रहे थे। मालिकों ने सोचा कि यह गांधी मजदूरों को प्रोत्साहित कर रहा है, अतएव इसको ही अपने पक्ष

में कर लेना उचित है। यह गांधी गरीब देश—हिन्दुस्तान से आया है, शायद यह पैसों का भूखा है। उन्होंने गांधीजी को एकान्त में बुलाया और कहा—मिस्टर गांधी! तुम दस—बीस हजार रुपये ले लो। इन मजदूरों का दिमाग खराब मत करो।

गांधीजी ने उत्तर दिया—मैं मजदूरों का माथा खराब नहीं कर रहा हूँ, अपितु उनका मस्तिष्क सुधार रहा हूँ। मैं पैसों का गुलाम नहीं हूँ। मैं न्याय—नीति में विश्वास करता हूँ। अहिंसा में मेरी आस्था है। मजदूरों को उनके श्रम का उचित पारिश्रमिक मिलना ही चाहिए। उन्हें मानवीय अधिकार किसी भी कीमत पर मिलने ही चाहिए। ऐसा मेरा दृढ़ मन्तव्य है।

मालिकों ने गांधीजी को फुसलाने के बहुत प्रयत्न किये। बड़े—बड़े प्रलोभन दिये, परन्तु गांधीजी ने नीति पर दृढ़ रहते हुए सब प्रलोभनों को ठुकरा दिया। जब प्रलोभन कारगर न हुए, तो उन्होंने गांधीजी का धमकी दी। एक व्यक्ति पिस्तौल लेकर खड़ा हो गया और कहने लगा कि मिस्टर गांधी! अपने इष्टदेव को याद कर लो। बटन दबाते ही समाप्त हो जाओगे।

गांधीजी का उत्तर बड़ा मार्मिक था। वे बोले—जो व्यक्ति मुझे इष्टदेव के स्मरण की बात कहता है, वह मुझे कभी नहीं मार सकता। उस व्यक्ति के हाथ से पिस्तौल नीचे गिर पड़ी। वह थर—थर काँपने लगा। गांधीजी वहाँ से निकल गये।

opu&fl f)

ऐसी कई घटनाएँ संतों के जीवन के सम्बन्ध में तथा निष्ठावान चारित्र—सम्पन्न श्रावकों के सम्बन्ध में सुनने को मिलती हैं। चारित्र—सम्पन्न व्यक्ति के वचनों में अपूर्व बल आ जाता है। उसको वचन—सिद्धि प्राप्त हो जाती है। स्वर्गीय आचार्य श्री गणेशीलालजी की कई बातें कई बार आपके समक्ष रख देता हूँ।

उनके मुख से स्वाभाविक रूप से निकला हुआ वचन फलीभूत होता हुआ प्रायः देखा जाता था। वे जानबूझकर इरादापूर्वक सिद्धि की दृष्टि से कोई वचन नहीं बोलते थे, परन्तु सहज भाव से यदि वचन निकल जाते थे, तो वे फलीभूत होते थे।

आपने जम्बू स्वामी का चरित्र सुना है। उन्होंने सोचा कि आज की रात्रि में धन चोरी में नहीं जाना चाहिए। उनके इतने-से संकल्प से चोरों के पैर चिपक गये। उनमें कैसी अद्वितीय चारित्र-निष्ठा थी। देवांगना सदृश आठ नवविवाहिता नववधुएँ उनके समक्ष खड़ी है, वे उन्हें मनाने के लिए आतुर हो रही हैं, परन्तु जम्बूकुमार के मन में तनिक भी विकार उत्पन्न नहीं हुआ। कितनी प्रबल थी उनकी चरित्र-निष्ठा! इस प्रकार की निष्ठा कब आती है? जब आध्यात्मिकता को हृदयंगम कर लिया जाता है, जब सदाचार की शक्ति एवं महत्ता की छाप दिल पर गहरी अंकित होती है, तब ऐसी निष्ठा आ सकती है। आज तो आध्यात्म को उपहास का विषय माना जा रहा है, परन्तु याद रखना चाहिए कि यदि आध्यात्म की अवहेलना होती रही, तो दुनिया में सुख-शांति का संचार कदापि संभव नहीं। आध्यात्म का आदर होगा, तो ही दुनिया सर्वनाश से बच सकेगी।

v[kw] [ktkuk

आध्यात्म आनन्द का अखूट खजाना है। अपने ही अन्दर आनन्द का अजस्र स्रोत बह रहा है। परन्तु अफसोस है कि मानव आनन्द पाने के लिए बाहर भटक रहा है। उसके पास सब कुछ होते हुए भी वह अपने को दरिद्र अनुभव कर रहा है। यह कैसी विडम्बना है कि अपने पास रही हुई वस्तु को मनुष्य बाहर ढूँढने का प्रयत्न कर रहा है। घर में अखूट खजाना है, परन्तु वह छिपा हुआ है। उसे ही अनावृत करने के लिए प्रयत्न होना चाहिए। जो वस्तु जहाँ है, वहीं प्राप्त हो सकती है, जो जहाँ नहीं है, वहाँ

ढूँढने से वह प्राप्त नहीं हो सकती । आनन्द अन्दर रहा हुआ है । उसे अपने ही अन्दर खोजो, बाहर न भटको । चरित्र-निष्ठा के साथ अध्यात्म के सरोवर में अवगाहन करो, सब पाप और ताप नष्ट हो जायेंगे, और अलौकिक शांति प्राप्त होगी ।

भाइयों! दृढ़ संकल्प करिये कि चाहे जैसी आँधी या तूफान हो, दृढ़ निष्ठा के साथ हमें चलना है, चरित्र को उज्ज्वल बनाना है और आत्मा की आवृत शक्तियों को अनावृत करना है । इसके लिए सुविधिनाथ परमात्मा की प्रार्थना करना है :-

**Jh l fof/k ftu'oj ofn; sgl' onr iki i'yk; -
vt'p dk i'k&olnu**

प्रभु को वन्दन करने से पाप नष्ट हो जात है, परन्तु वन्दन कैसा हो? अर्जुन माली ने प्रभु महावीर को प्रथम बार ही वन्दन किया और ऐसी तन्मयता से किया कि वह सच्चरित्रता के महत्व को समझकर प्रभु के चरणों में दीक्षित हो गया । आपको विचार आता होगा कि प्रभु महावीर ने ऐसे पापी को साधु कैसे बना लिया? बन्धुओं! भगवान पतित-पावन है । वे पतितों के उद्धारक हैं, पतितों के शरणदाता हैं । प्रभु की चरण-शरण में आकर पतित से पतित व्यक्ति भी अपना आत्म कल्याण कर सकता है । पापी व्यक्ति प्रभु के संपर्क में आकर अपने जीवन की दिशा को मोड़ लेता है । वह प्रायश्चित के द्वारा पुराने पापों की शुद्धि कर लेता है । शास्त्रकार फरमाते हैं-

ts dEes l yk' rs/kEes l yk

जो कर्म करने में शूर है, वह धर्म का आचरण में करने में भी शूर हो सकता है । अर्जुन माली ने निकाचित कर्मों के उदय से क्रूर कर्म किये, परन्तु प्रभु का सम्पर्क पाते ही वह धर्म शूर हो गया । कर्मों के बन्धनों को तोड़ने में उसने शूरता प्रदर्शित की और

इतनी सीमा तक शूरता दिखायी कि वह उसी भव में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में चला गया। वह सुदर्शन प्रभु महावीर से भी पहले मुक्त हो गया। कितना बदल जाता है जीवन! आप भी ऐसा ही प्रयत्न करिये और अपने जीवन की धारा को अन्दर की ओर मोड़िये! जीवन मंगलमय बन जायेगा।

पर्युषण पर्व चल रहे हैं। दो दिन के बाद संवत्सरी महापर्व आनेवाला है। अर्जुन माली सरीखा व्यक्ति आपके सामने हो, तो क्या आप उसे क्षमा प्रदान करेंगे? हमें क्षमा प्रदान करने की और क्षमायाचना करने की क्षमता प्राप्त करनी है। संवत्सरी पर्व की सार्थकता इसी में है। यही इस पर्व का संदेश है। इसकी तैयारी इन पर्व-दिनों में करनी है। हृदय को शुद्ध बनाना है, चारित्र को उज्ज्वल करना है, वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाना है। बहिर्वृत्तियों से या भौतिकता के मोह से भी कभी कल्याण होनेवाला नहीं है। सम्पत्ति नश्वर है। आज है, तो कल नहीं। वह महत्त्वपूर्ण वस्तु नहीं है। महत्त्वपूर्ण है सदाचार, सद्व्यवहार, चरित्र-निष्ठा और आध्यात्मिक रमण। इस दृष्टि को लेकर चलेंगे, तो आपका जीवन मंगलमय बन सकेगा।

देशनोक

7.5.1975

uko frjkbZ cgrk uhj ea

- 0 /keZ 'kə) ân; eagh Bgjrk gA
- 0 /keZ I k/kuk gh I Ppk I ĩk inku djrk gA
- 0 I e; dk I nġ; kx djuskyk gh i M/r gđ foosdh gA
- 0 i # "kFkZ gh Hkk; fuekZrk gA
- 0 ckY; oLFk ds I ĩdkj gh Hfo"; dk fuekZk djrsgA
- 0 I n~ I ĩdkj ckyd dks egki # "k cuk nrs gA

Jh I fof/k ftuśoj ofn; sglđ olhr iki i gyk; AA
v"V deZ uls jktoh glđ ekg i Fke {k; dhuA
'kə) I efd r pkj = uksglđ i je{k; d xqk yhuA
Kkukoj .kh] n'kZukoj .kh glđ vUrjk; fd; ksvUrA
Kku] n'kZu] cy ; sfrgġglđ i dV; k vUlrkuUrAA

Jh I fo-AA

नोंवें तीर्थकर प्रभु सुविधि जिनेश्वर के चरणों में वन्दन की उदात्त भावना के साथ कवि ने अपने भावों की कुसुमांजलि समर्पित

की है। सही अर्थों में जब प्रभु को वन्दन किया जाता है, तो आत्मा की मलिनता धुल जाती है। आत्मा शुद्ध बनती है, तो उससे धर्म प्रतिष्ठापित होता है। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है—

^/kEks I q LI fpëb**

vFKZ %& /keZ 'kq) ân; e9Bgjrk g9

जैसे शुद्ध पात्र में रहा हुआ दूध विशेष रूप में गुणकारी होता है, उसकी शोभा में विशेष वृद्धि हो जाती है। उसी तरह शुद्ध हृदय में धर्म की प्रतिष्ठा की जाती है, तो वह विशेष महत्त्वपूर्ण हो जाती है। जैसे मणिरत्न अपने आपमें अनुपम प्रभा और आभा से सम्पन्न होता है, किन्तु जब वह स्वर्ण के साथ संयोजित होता है, तो उसकी चमक—दमक कई गुणा बढ़ जाती है। उसी तरह शुद्ध हृदय में स्थापित किया हुआ धर्म अलौकिक गुणों से मण्डित हो जाता है। प्रभु को वन्दन करने से—प्रभु के चरणों में स्वयं को समर्पित करने से चित्त शुद्ध होता है, मन में प्रसन्नता होती है, आत्मा में प्रमोद—गुण की वृद्धि होती है। प्रभु की प्रार्थना से अलौकिक और अनुपम शान्ति का अनुभव होता है। जो शुद्ध हृदय से एकाग्रचित्त से, तन्मय होकर प्रभु का स्मरण करता है, उसकी आत्मा कर्म—मैल से मुक्त हो जाती है। कवि ने प्रार्थना में यही भाव व्यक्त किये हैं कि आत्मा का मौलिक स्वरूप कर्मों के आवरण से आच्छन्न है और यदि प्रभु को सही अर्थों में वन्दन किया जाये, तो कर्मों के आवरण छिन्नभिन्न हो सकते हैं और आत्मा के स्वाभाविक गुण—अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्त बल—अभिव्यक्त हो सकते हैं।

icyre ifri {kh

जैसा कि पूर्व के प्रवचनों में कई बार प्रतिपादित किया जा चुका है कि आत्मा का प्रबलतम प्रतिपक्षी 'मोह' है। यही आठों

कर्मों का राजा है। यही आत्मा के प्रधान गुण—सम्यक्त्व और चरित्र का मुख्य बाधक है। आत्मा को अपने स्वरूप से वंचित करनेवाली और पुद्गलों में रमण करानेवाली मोह—कर्म की शक्ति ही तो है। मोह कर्म के रहते हुए ही शेष ज्ञानावरणीय आदि कर्म हरे—भरे और शक्तिशाली रहते हैं। मोह के नष्ट होते ही घन—घाती कर्म भी अन्तर्मुहूर्त में क्षीण हो जाते हैं। जैसे मस्तक—सूची के प्रहत हाते ही तालवृक्ष धराशायी हो जाता है, उसी तरह मोह के क्षीण होते ही अन्य कर्म क्षीणप्राय हो जाते हैं। राजा के भाग जाने पर जैसे सेना भी भाग खड़ी होती है, वैसे ही मोह राजा के परास्त होते ही अन्य कर्मों की सेना भी हार खाकर भाग जाती है।

ज्यों—ज्यों मोह के वन में दावानल लगता है, त्यों—त्यों आत्मा के गुणरूपी पौधे हरे—भरे होते हैं। ज्योंही मोह की जड़ उखड़ जाती है, त्योंही आत्मा को मोक्ष—रूपी फल की प्राप्ति होती है। इसी भाव को इस सुपरिचित दोहे में व्यक्त किया गया है:—

vkxs & vkxs no cys ihNs gfj ; k gks A
cfyghkj ml o{k dh tM+ dKv ; kaQy gks A

जब भवस्थिति परिपक्व होती है और आत्मा अपने प्रबल पुरुषार्थ से मोहकर्म को परास्त कर देता है, तब क्षायिक समकित और क्षायिक चरित्र की प्राप्ति होती है। मोह के क्षीण होते ही अन्तर्मुहूर्त काल में ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म और अन्तराय कर्म एक साथ क्षीण हो जाते हैं, जिसके कारण आत्मा को अनन्त—ज्ञान, अनन्त—दर्शन और अनन्त बलवीर्य की प्राप्ति हो जाती है। आत्मा की अन्य शक्तियाँ भी परिपूर्णता का रूप ले लेती हैं। आत्मा रूपी कलानिधि के सम्पूर्ण कलाएँ प्रकट हो जाती हैं, तब लोकरूपी आकाश में आत्मा की यह विशुद्धि और आत्म—विकास की पराकाष्ठा ही हम सबका लक्ष्य है। इसे प्राप्त करने के लिए ही सब प्रयत्न और साधनाएँ की जाती हैं।

हमारे सारे धार्मिक अनुष्ठानों और क्रियाकलापों का यही अन्तिम लक्ष्य—बिन्दु है।

I k/kuk D; k m/kkj dk /k/kk g

मानव का मस्तिष्क प्रत्यक्ष फल के लिए लालायित रहता है। वह प्रत्येक क्रिया का परिणाम प्रत्यक्ष देखना चाहता है। साधना का परिणाम भी वह चटपट और प्रत्यक्ष में प्राप्त करना चाहता है। वह उधार का धंधा पसन्द नहीं करता, वह रोकड़—नगद का धंधा चाहता है। उसके सामने यह प्रश्न खड़ा होता है कि आत्मशोधन के लिए की जानेवाली साधनाओं का परिणाम इसी जन्म में मिलेगा या भवान्तर में ही मिलेगा? यदि साधनों का फल परलोक में ही मिलता है, तो वह उधार का धंधा है। यदि प्रत्यक्ष में उसका परिणाम प्राप्त नहीं होता, तो उसके प्रति मानव का मस्तिष्क अभिप्रेरित नहीं होता। यह धारण सही नहीं है कि साधनाओं का फल परलोक में ही मिलनेवाला है। साधना उधार का धंधा नहीं है। वह नकद का व्यापार है। जितनी—जितनी और जिस—जिस रूप में साधना की जाती है, उसका फल भी उतने ही अंशों में यहाँ प्राप्त होता है। जिस रूप में साधना की आराधना होती है, उस रूप में उसका परिणाम भी यहाँ परिलक्षित होता है। साधना का सुफल यहाँ भी प्राप्त होता है और भवान्तर में भी उसकी परमपरा भव्य फलप्रदायिनी बनती है। जिसने साधना के द्वारा इस जीवन को रमणीय बनाया, वह भवान्तर में भी रमणीयता को प्राप्त करेगा।

तीर्थकर देवों ने आत्मा—विकास के चौदह सोपान बताये हैं, जिन्हें आगम की भाषा में गुणस्थान कहते हैं। आत्मा अपने लक्ष्य की ओर ज्यों—त्यों आगे बढ़ता जाता है, त्यों—त्यों उसको उसकी साधना के सुफलों का प्रत्यक्ष में अनुभव होता जाता है। तेरहवें गुणस्थान में जब वह पहुँचता है, तो उसे अनन्त ज्ञान,

अनन्त बल—वीर्य और क्षायिक चारित्र की प्राप्ति होती है, जिसका उल्लेख प्रार्थना की कड़ियों में किया गया है। जिसमें चवदहवाँ गुणस्थान आत्मा की सर्वोत्कृष्ट विकसित अवस्था है, जिसमें आत्मा परमात्मस्वरूप बन जाता है, सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो जाता है। साधना का यह सुफल प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। इस मानव—शरीर से ही यह अवस्था प्राप्त की जा सकती है। अनन्त आत्माओं ने अतीत काल में इस मानव भव से परम पद की प्राप्ति की है, वर्तमान में भी विदेहादि क्षेत्रों से कर रहे हैं और अनागत काल में भी परम पद प्राप्त करेंगे। अतः यह कहा जा सकता है कि साधना की आराधना उधार का धंधा नहीं, अपितु नगद का व्यापार है।

^k.kā t.k.kṛg i M, *

इस प्रकार की आध्यात्मिक आराधना का सुअवसर मानव—भव में ही प्राप्त होता है। अन्यत्र यह अवसर नहीं मिल सकता। इसीलिए संसार के सब तत्त्वज्ञानियों ने मानव—भव की महता को एक स्वर से स्वीकार किया है। शास्त्रकारों ने कहा है—

^k.kā t.k.kṛg i M, *

विवेकी पुरुष इस सुअवसर को पहचाने। शास्त्रकारों का आशय यह है कि मनुष्यों को मानव—भव के रूप में आत्म—कल्याण का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ है। इस सुअवसर को पहचानकर जो उसका सदुपयोग करता है, वही पंडित है, वही विवेकी है, वही विचक्षण है।

भगवान आदिनाथ प्रभु ने (भरत द्वारा अपने 98 भाइयों को उसके निर्देश में रहने की सूचना देने से अपमानित हुए) 98 पुत्रों को जो उद्बोधन दिया, वह बड़ा हृदयग्राही और मर्मस्पर्शी है। सूत्रकृतांग सूत्र के द्वितीय 'वेयालिय' अध्ययन में इसका वर्णन

है। आदिनाथ ऋषभदेव प्रभु फरमाते है :-

**I ɔ̄>g fdau c̄>g] I Eckgh [kyq i ʃp n̄ȳgkA
.kk gw.kefūr jkb̄/k̄ uks I yg iqkjko t̄hfovaAA**

समझो! क्यों नहीं समझते हो? यह अपूर्व अवसर तुम्हें प्राप्त हुआ है। इस भव से अन्यत्र परलोक में ज्ञान की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है? यह मानव-भव पुनः प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। अभी सहज ही तुम्हें यह प्राप्त है। इस प्राप्त सुअवसर से लाभ उठा लो। यदि यह अवसर हाथ से निकल गया, तो फिर पछताना पड़ेगा। जो समय चला गया, वह पुनः लौटकर नहीं आता। बड़ा सुन्दर अवसर प्राप्त है, इससे लाभ उठाना तुम्हारे हाथ में है।

मानव को प्राप्त हुए आत्मकल्याण के सुअवसर को प्रतिपादित करते हुए शास्त्रकार कहते हैं:-

**Hurʃkq t̄æRoar fLeu~ i p̄ʃUnz, Roer̄Ñ"VeA
rLeInfi ekuḍ; a ekuḍ; s I; k; h̄s'k' pAA1AA
n̄s'ks d̄y i /k̄ua d̄ys i /k̄us t̄kfr#R̄Ñ"Vka
t̄kr̄S : i l ef) : is p̄ cyafof'k"VreAA 2AA
Hkofr cys pk; ḍda i Ñ"Vek; ḍdsfi foKkueA
foKkus I E; DRoḍ I E; DRos 'k̄nyl Ei k̄flr'AA 3AA
, rRi ḍZ pRokj% I ekl r% ekḍkl k/kuks k; %A
r= p̄ cgq I Ei k̄lraHkof) jYiap I Ei k̄l; eAA 4AA**

अनन्त अतीत काल में स्थावर के रूप में अपरिमित काल तक रहने के पश्चात अनन्त पुण्यराशि के प्राग्भार से त्रस पर्याय की प्राप्ति होती है। त्रसत्व मिल जाने के पश्चात भी

पंचेन्द्रियत्व की प्राप्ति, तदनन्तर मनुष्यत्व, आर्यदेश, उत्तमकुल, उत्कृष्ट जाति, सुन्दर रूप, समृद्धि, विशिष्ट बल, दीर्घायु, ज्ञान, सम्यक्त्व (दर्शन) और चारित्र की प्राप्ति होना उत्तरोत्तर सुदुर्लभ है। इन दुर्लभ सामग्रियों में से बहुत-सी सामग्रियाँ सद्भाग्य से आपको मिली हुई हैं। थोड़ी ही सामग्री प्राप्त करना शेष है। अतएव विशेष पुरुषार्थ द्वारा उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। संसार-समुद्र का बहुत सारा भाग पार किया जा चुका है। किनारा समीप ही है। अतएव अब प्रमाद करना उचित नहीं है। पूरी शक्ति के साथ छलांग लगाने की आवश्यकता है। प्राप्त सुदुर्लभ सामग्रियों की सफलता इसी में है अन्यथा किनारे आयी हुई नाव भी डूब सकती है।

यदि प्रमाद का अवलम्बन ले लिया, तो इतनी दुर्गम-घाटियों को पार करने का परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा। अतएव इस अवसर का अत्यन्त सावधानी के साथ लाभ लेना चाहिए।

oKkfud ekxZ

यह भलीभांति सिद्ध है कि आत्मा की समग्र उपलब्धियाँ मानव भव में ही प्राप्त होती हैं। इसके छूट जाने के पश्चात् आत्मा का अवस्थान मात्र रहता है। वहाँ कोई नवीन उपलब्धि नहीं होती। इसलिए मानव भव में प्राप्त मार्ग को वैज्ञानिक मार्ग की संज्ञा दी गयी है। वैज्ञानिक मार्ग का तात्पर्य भौतिक विज्ञान के मार्ग से नहीं है। लेकिन भौतिक प्रयोगशालाओं में जैसे उपलब्धि प्रत्यक्ष की जाती है, वैसे ही आध्यात्मिक जीवन की प्रयोगशाला में जो कुछ भी आन्तरिक उपलब्धियाँ साधक को प्राप्त होती हैं, उनको वह प्रत्यक्ष में देखता हुआ चला जाता है। भौतिक विज्ञान की उपलब्धियाँ बाह्य होती हैं। अतएव अन्य व्यक्ति उन्हें देख सकते हैं। जबकि आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धियाँ आन्तरिक होती हैं। अतएव अन्य व्यक्ति उन्हें नहीं देख पाते। साधक

स्वयंमेव उनका अनुभव करता चला जाता है। आध्यात्मिक शक्ति का स्वरूप ही इस ढंग का है कि वह बाहर निकाल कर नहीं बतायी जा सकती है। बड़े से बड़ा विद्वान अपनी विद्वता के अनुभव को हथेली पर निकाल कर नहीं दिखा सकता। आध्यात्मिक जीवन की स्थिति भी ऐसी ही है। यदि मानव आध्यात्मिक जीवन को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करे और प्रारम्भ से ही अपनी साधना के सूत्र को सक्रिय बनाये, तो कठिनाइयों के बावजूद वह एक दिन सफलता की भूमिका पर अवश्य पहुँच जाता है।

i# "kfkZ cuke fu; frokn

कभी-कभी इधर-उधर के विचारों को सुनकर मानव यह सोचते लगता है कि जो होनहार है, वही होता है। मानव के प्रयत्न से कुछ नहीं होता। जैसा कि कहा गया है—

i klr0; ks fu; frcykU; sk ; ks FkZ%

I ks o' ; aHkofr u .ka 'kjkks 'kjkks okA

Hkukukaegrh Nrsfi fg ; Ru\$

ukHk0; aHkofr u Hkfouls fLr uk'kAA

अर्थात् नियति के द्वारा मनुष्यों को जो भी शुभ या अशुभ प्राप्त होनेवाला होता है, वह अवश्य प्राप्त होता है। प्राणी के बहुत यत्न करने पर भी जो होनहार नहीं है, वह नहीं हो सकता। जो होनहार है, उसका नाश नहीं होता। और भी कहा है :—

fu; rsu : isk l o\$ Hk0k% HkofUr ; rA

rrks fu; frtk gks rRLo: i kup\$kr'AA

; n~ ; n\$; rks ; kor} rUkn\$ rrLrFkA

fu; ra tk; rs U; k; kr~ d , uka ckf/krq {ke'AA

&'KL= okrK I eP; A

vFK%— सब पदार्थ नियति के अधीन हैं। जो जिस समय, जिससे, जितना, जिस रूप में होनेवाला है, वह उस समय उससे, उतना और उसी रूप में अवश्य होता है। नियति को बाधित करने में कोई समर्थ नहीं है। नियतिवादियों का उक्त कथन एक पक्षीय होने से यथार्थ की भूमिका पर नहीं ठहर सकता। एकान्त नियतिवाद को स्वीकार करने का उत्थान, कर्म बल-वीर्य, पुरुषकार पराक्रम रूप पुरुषार्थ का सर्वथा उच्छेद प्राप्त हो जाता है, जो अनिष्टापत्ति है। ऐसा न तो इष्ट ही है और न देखा ही जाता है। तिलों में तेल नियत है, किन्तु पुरुषार्थ किये बिना तिलों से तेल प्राप्त नहीं किया जा सकता। अतएव एकान्त नियतिवाद की विचारधारा अप्रमाणिक है।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु महावीर ने नियतिवादी आजीविक गोशालक के मत का प्रबलता के साथ खण्डन करते हुए पुरुषार्थ की उपादेयता प्रतिपादित की है। उन्होंने प्ररूपित किया कि—

vFRk mēk.ks b ok| dEes b ok|

cysb ok| ohjh, b ok| ijDdkj ijōesb okA

अर्थ:— उत्थान है, कर्म है, बल है, वीर्य है और पुरुषाकार पराक्रम है। पुरुषार्थ कार्यसाधक अंग है।

नियतिवाद की विचारधार मानवीय पुरुषार्थ में बाधक बनती है। इस विचारधारा का अनुसरण करनेवाला व्यक्ति अकर्मण्य बनकर निठल्ला बैठा रहता है। वह परिश्रम करने से दिल चुराता है। हाथ पर हाथ धरकर चुपचाप बैठना पसन्द करता है। कबीर ने कहा है :—

^vtxj djsu pkdjh| iNh djsu dkeA

nkl dchjk dg x; § I cds nkrk jkeAA*

इस प्रकार की भ्रान्त धारणा के वशीभूत होकर मानव अकर्मण्य और पुरुषार्थ-हीन बन जाता है। वह किसी भी क्षेत्र में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं कर सकता है।

जीवन के किसी भी क्षेत्र में प्रगति करने हेतु नियतिवाद की भ्रान्त धारणा का परिमार्जन करना आवश्यक है। शास्त्रीय विधान के साथ ही साथ व्यवहारिक अनुभवों से भी इस अज्ञान एवं प्रमाद-मूलक धारणा का निवारण किया जा सकता है।

जीवन कोमल रुई के समान है। कुशल कलाकर अपने पुरुषार्थ से जैसे वस्त्र का निर्माण करना चाहता है, वैसा उस रुई से बना लेता है। मिट्टी के मुलायम पिण्ड से कुम्भकर इच्छानुसार पात्रों का निर्माण कर लेता है। इसी तरह जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में जैसे संस्कार और जैसा वातावरण मिलता है, उसी के अनुसार जीवन का निर्माण हुआ करता है। कोमल वय में पड़े हुए संस्कार दिव्य-जीवन का निर्माण कर सकते हैं। कोमल लताओं को इच्छानुसार दिशा दी जा सकती है। कोमल बालकों के जीवन को चाहे किस दिशा में मोड़ा जा सकता है। अतएव यदि उनके जीवन को भव्य और दिव्य बनाने की अभिलाषा हो, तो उन्हें प्रारम्भ से ही भव्य और दिव्य संस्कार दिये जाने चाहिए। यदि आप अपने बालक को दिग्गज विद्वान बनाना चाहते हैं, तो प्रारम्भ से ही उसकी शिक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान देना आवश्यक है। यदि आप उसे दिग्विजयी वीर बनाना चाहते हैं, तो प्रारम्भ से ही उसके लिए व्यायाम आदि के संस्कार और साधन अपेक्षित होंगे। यदि अपनी सन्तति को आध्यात्मिक क्षेत्र की ओर अग्रसर करना चाहते हैं, तो उसे बचपन से ही वैसे संस्कार देने होंगे। जीवन एक उम्र तक मोड़ ले सकता है। उसके पश्चात उसे मोड़ना कठिन और दुष्कर होता है।

मानव कभी-कभी कल्पना करता है कि कलियुग बड़ी

विचित्र रीति से चल रहा है। इस समय कोई अवतारी पुरुष क्यों नहीं पैदा होता है, जो अज्ञान की परम्परा को समाप्त करें? यदि सचमुच किसी अवतारी पुरुष की आवश्यकता को आप महसूस करते हैं, तो मैं यह स्पष्ट राय देना चाहूँगा कि अवतारी पुरुष यकायक आसमान से टपकनेवाला नहीं है। इन बालकों में से ही कोई संस्कारी बालक अवतारी पुरुष की कोटि में पहुँच सकता है। शंकराचार्य और हेमचन्द्राचार्य जैसे दिग्गज और समर्थ विद्वान बाल्यकाल के संस्कारों के फलस्वरूप ही जगतीतल में प्रसिद्ध हुए हैं। अतएव बालकों के जीवन-निर्माण के प्रति सतर्कता और सावधानी रखने से अवश्य ही कोई ऐसी प्रतिभा उभरकर सामने आ सकती है, जो अवतारी पुरुष का काम कर सके।

I 1ckjka dk egRo

कोमल वय में पड़ हुए सुसंस्कार और कुसंस्कार कितने प्रभावशाली होते हैं, इसको समझने के लिए एक उपयोगी रूपक इस प्रकार है : -

एक राजा घोड़े पर सवार होकर जंगल में हवा खाने की दृष्टि से निकला। घोड़ा पवनवेगी था। राजा जहाँ ठहरना चाहता था, वहाँ वह न थमकर वेग के साथ भागकर सघन वन में पहुँच गया। राजा हैरान था। वह भूख-प्यास से पीड़ित था, संत्रस्त होकर वह सोच रहा था कि किसी स्थान पर विश्राम का संयोग जुड़ जाये। उस वीरान जंगल में कुछ झोपड़ियाँ नजर आयीं। राजा को कुछ शांति का अनुभव होने लगा। झोपड़ियों में मानव का स्थान होना चाहिए। जैसे ही राजा वहाँ पहुँचा, उसने एक तोते को वृक्ष की टहनी पर बैठे हुए देखा। तोते ने ज्योंही राजा को देखा, वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा-लुट्यताम लुट्यताम्। राजा संस्कृत भाषा जानता था, उसने समझ लिया कि यह तो किसी को लूटने की सूचना दे रहा है। यहाँ से बच निकलना

चाहिए। राजा ने घोड़े को शीघ्र गति से आगे बढ़ाया।

आगे बढ़ने पर राजा को कुछ और झोपड़ियाँ नजर आयीं। राजा सोचने लगा कि यहाँ भी कहीं वहीं दशा न हो। ज्यों ही वह समीप आया, उसने वहाँ भी वृक्ष पर बैठा हुआ तोता देखा। राजा को देखकर तोतो बोलने लगा—स्वागतम्! सुस्वागतम्! आगम्यताम्! तोते की आवाज को सुनकर एक ऋषि कुटिया से बाहर आया और उसने राजा को आश्वस्त करते हुए कहा कि आप यहाँ विश्राम कीजिए। अन्न—जल ग्रहण कीजिए। मैं आपका स्वागत करता हूँ। राजा वहाँ ठहर गया। उसने शांति का अनुभव किया। परन्तु उसके मन में यह जिज्ञासा बलवती हो रही थी कि समान वन, समान झोपड़ियाँ और समान तोते होने पर भी दोनों की वाणी दो तरह क्यों है? अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए उसने ऋषि से पूछा कि ऋषिवर! दोनों तोते की वाणी में इतना अन्तर होने का क्या कारण है?

ऋषि ने उत्तर दिया—राजन! वह तोता लुटेरों की संगति में रहा और लुटेरों ने उसे ऐसे ही संस्कार दिये। लुटेरे उससे गुप्तचर का काम लेते हैं। उसकी सूचना पाकर वे पथिकों को लूटते हैं। तुम सुझ हो, अतएव वहाँ से बच निकले। यह तोता ऋषियों के सम्पर्क में रहता है, इसे सुन्दर संस्कार दिये जाते हैं। यही कारण है कि यह अपने यहाँ आये हुए का स्वागतम् सुस्वागतम् कहकर स्वागत करता है।

राजा ने भी प्रत्यक्ष अनुभव कर लिया कि संस्कारों के आधार पर जीवन का निर्माण होता है। कोमल वय के बालकों को जैसे संस्कार मिलेंगे, उसी के अनुसार ही उनका जीवन बनेगा। अतएव आप अपने बालकों को सुयोग्य बनाना चाहते हैं, तो आपको इस विषय में सतर्क रहना होगा कि बालक कैसे संस्कार पा रहे हैं? उनके आसपास का वातावरण कैसा है? वे किसके

संसर्ग में रहते हैं? आप उन्हें जैसा बनाना चाहते हैं, उसके अनुकूल वातावरण और साधन—सामग्री उन्हें उपलब्ध है क्या? कहीं वे अनिष्ट तत्वों के चंगुल में नहीं फंस रहे हैं? इन सब बातों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है, तभी बालकों के जीवन का सही—सही निर्माण हो सकता है।

,ork efuoj

पर्युषण पर्व के इन दिनों में अन्तगड सूत्र के माध्यम से अभी आपने एवंता मुनि के सम्बन्ध में सुना है। इन बाल मुनि को जीवन के उगते प्रभात में ही आध्यात्मिक विभूतियों का अलौकिक सम्पर्क प्राप्त हुआ, जिसके कारण उनकी जीवन—नौका संसार—सागर से पार हो गयी। कोमल—वय के इस बालक को आरंभिक स्थिति में ही आध्यात्मिक संस्कार मिले, जो उत्तरोत्तर विकसित होते गये। फलस्वरूप इसी भव में उन्होंने आत्मा की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त कर लिया। एवंता मुनिवर का चरित्र, संस्कारों के महत्व को प्रतिपादित करनेवाला ज्वलंत उदाहरण है। बालमुनि एवंता ने न केवल बालसुलभ क्रीड़ा के कारण वर्षा के पानी में अपनी नौका ही तिरायी, अपितु उन्होंने अपनी जीवन—नौका भी संसार—सागर से पार कर ली। इसीलिए इस प्रसंग पर संतजन इस भजन की पंक्तियों का उच्चारण करते हैं :-

एवंता मुनिवर नाव तिराई बहता नीर में ॥ टेर ॥

पोलासपुरी नगरी का राजा, विजयसेन है नाम।

श्री देवी अंगे ऊपन्यासरे एवंता कुमार रे ॥ एवंता ॥

बालमुनि एवंता ने वर्षा के बहते हुए पानी में अपना पात्र तिराया और कहने लगे—मेरी नाव तिरी, मेरी नाव तिरी। यद्यपि बालमुनि का यह कार्य संयम की मर्यादा के बाहर था, परन्तु बचपन तो बचपन ही होता है। सरसरी तौर पर एवं स्थूल—दृष्टि से यह

कार्य संयम के नियमों के प्रतिकूल लगता है, परन्तु सूक्ष्मदर्शी अनन्त-ज्ञानी, सर्वज्ञ प्रभु महावीर ने इसे भावी सत्य के रूप में निरूपित किया। उन्होंने कहा—यह संसार एक प्रवाह है। उसमें संसारवर्ती जीव बह रहे हैं। यह बालमुनि तो चरम-शरीरी जीव है। इसके मुख से भावी सत्य प्रकट हुआ है। इसकी नाव सचमुच तिर गयी है। यह इस दुस्तर संसार-प्रवाह को तैरनेवाला है।

उक्त प्रसंग अन्तगड़ सूत्र में वर्णित नहीं है, किन्तु भगवती सूत्र में इसका उल्लेख है। अन्तगड़ में केवल उनकी बालवय का उल्लेख है। शास्त्रीय सन्दर्भों से विदित होता है कि प्राचीन काल में आठ वर्ष का हो जाने के बाद ही बालक को शिक्षा-दीक्षा के योग्य माना जाता था। आज तो स्थिति बदली हुई है। वर्तमान शिक्षा-पद्धति और उसके नियमोपनियमों के कारण आजकल बच्चों को स्कूल भेजने में शीघ्रता की जाती है। बच्चा 4-5 वर्ष का हुआ कि उसे स्कूल भेजने की शीघ्रता माता-पिता करते हैं। वे सम्भवतः यह सोचते हैं कि बच्चा जल्दी लिख-पढ़कर होशियार हो जाये और धन कमाने लगे।

dk ey eflr"d ij f'k{k dk Hkj

प्राचीन काल के सुज्ञ शिक्षक एवं संरक्षक बालक के हित की दृष्टि से व्यवस्था करते थे। बालक के मस्तिष्क के कोमल तन्तु अध्ययन करने में सक्षम न बन जाये, तब तक वे बालक पर शिक्षा का बोझ नहीं डालते थे। योग्य वय में, योग्य समय पर किया गया कार्य फलीभूत हुआ करता है और अपरिपक्व स्थिति में डाला गया भार प्रतिभा को कुण्ठित कर देता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि जिसका प्रारम्भ सुधर जाता है, उसका अगला जीवन भी सुधर जाता है। जिसका प्रारम्भ बिगड़ जाता है, उसकी सारी जिन्दगी बिगड़ जाती है। हलुवे की चासनी प्रारम्भ में बिगड़ गयी, तो हलुवा बिगड़ जायेगा। वैसे ही जीवन की

चासनी आरम्भ में बिगड़ गयी, तो पूरी जिन्दगी बिगड़ जाती है। अतएव आरम्भिक अवस्था में विशेष ध्यान देना चाहिए।

प्राचीन काल में मनोवैज्ञानिक आधार पर शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा का उद्देश्य जीवन को संस्कारी बनाना होता था, धनोपार्जन का नहीं। आज के युग में धन की लालसा के कारण विचित्र स्थिति बन रही है। आज के बालक धन कमाने की मशीन जल्दी से जल्दी कैसे बनें, इसी भावना से उन्हें कोमल वय में स्कूलों में प्रविष्ट कराया जाता है। वहाँ उन पर इतना भार लाद दिया जाता है कि उनका कोमल मस्तिष्क क्षत-विक्षत हो जाता है। कोमल वय में अधिक भार डालना उनके जीवन को दबोचना है। माता-पिता को इस विषय में गम्भीरता से सोचना चाहिए।

एवन्ता कुमार 8 वर्ष की वय में पहुँच चुका था, तदपि उसे स्कूल में प्रविष्ट नहीं कराया गया था। वह छोटे बालकों के साथ खेल रहा था। उसकी सहज बुद्धि तीक्ष्ण थी। उसको बचपन में कैसे संस्कार मिले तथा पूर्वभव के संस्कार क्या काम करते हैं, निमित्त पाकर वह कैसे चमक गया, इसी विषय पर कुछ विशेष प्रकाश डालना चाहता हूँ।

cyscysdjs ikj.kk] x.k/kj inoh ik; kA

Hkxoark dh vkKk ysdj xkfe xkpjh vk; k j}j

,ork efooj uko frjkbz cgrk uhj eAA

प्रभु महावीर राजकुल में जन्म लेकर भी समग्र मानव जाति का कल्याण करने के लिए निर्ग्रन्थ, श्रमण और दीर्घ तपस्वी बने। उन्होंने परिपूर्ण केवलज्ञान-केवलदर्शन प्राप्तकर चतुर्विध संघ की स्थापना की और भव्यजनों को मोक्ष का मार्ग बताया। उस समय प्रभु महावीर पोलासपुर नगर के बगीचे में पधारे हुए थे। उनके प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम गणधर बड़े प्रतिभाशाली

विद्वान् थे। वे जाति के ब्राह्मण थे, वेदों के पारगामी ज्ञाता थे, परन्तु प्रभु महावीर के उपदेशों से प्रभावित होकर वे उनके शिष्य बन गये। वे अपनी प्रखर प्रतिभा के कारण प्रभु महावीर के दिव्य संदेश को साकार रूप देकर चल रहे थे। साधु—जीवन की परम उत्कृष्ट साधना के साथ भिक्षावृत्ति के लिए वे स्वयं पधारते थे। उन्होंने प्रभु से विधिवत आज्ञा ली और भिक्षा के लिए वे नगर में पधारे। संयोगवश वे उसी स्थान पर पधारे, जहाँ वे बालक खेल रहे थे।

**[ky jgk Fk [ky døj th] n[; k xk'e døkjA
?kj&?kj ekfg fQjsfgMrk] i Nsbrjh ckr gk
, olrk efuoj uko frjkbz cgrk uhj eAA**

संयमी जीवन के भव्य गुणों से परिपूर्ण गौतम गणधर समभाव के साथ यतनापूर्वक दृष्टिपूत मार्ग पर चले आ रहे थे। एक हाथ में झोली दूसरे हाथ में रजोहरण धारण करते हुए वे भिक्षा के लिए कभी किसी घर में और कभी अन्य घर में प्रवेश करते थे। बालकों की टोली क्रीड़ा में लगी हुई थी। उस मार्ग से सैकड़ों व्यक्ति आते—जाते रहे होंगे, किन्तु उनकी तरफ उन बालकों का ध्यान नहीं गया। बच्चों को खेल बहुत प्रिय होता है। वे खेल छोड़ना पसन्द नहीं करते। खाना—पीना छोड़ देंगे, परन्तु खेल नहीं छोड़ेंगे। लेकिन संयोग से या पूर्व संस्कारों के कारण एवन्ताकुमार के मन में गौतम गणधर को देखकर अनूठे ही भाव जागृत हुए। वह खेल से अलग हटकर गौतम स्वामी के सम्मुख आया और उनसे बातें करने लगा। लोकोक्ति है कि पूत के पाँव पालने में दृष्टिगत होते हैं। बड़े—बड़े व्यक्ति महात्माओं से बात करने में संकोच का अनुभव करते हैं, परन्तु वह छोटा बालक निस्संकोच होकर गौतम गणधर से बाल—सुलभ उत्सुकता से प्रेरित होकर वार्तालाप करने लगा।

, 0Urk&xk5e&l 0kn

एवन्ता कुमार ने गौतम गणधर से पूछा—आप कौन हैं? कहाँ जा रहे हैं? घर—घर क्यों घूम रहे हैं?

श्री गौतम स्वामी विशिष्ट ज्ञानी थे। वे अनुभवी और विचक्षण थे। छोटे बालक के मुँह से ऐसे प्रश्न सुनकर वे गद्गद् हो गये। उन्होंने कहा—कुमार! हम साधु हैं। भिक्षा के लिए परिभ्रमण कर रहे हैं। हम अपने लिए भोजन बनाते नहीं। हमारे लिए कोई भोजन बनाकर दे, तो हम लेते नहीं। आपलोग अपने घरों में अपने लिए जो भोजन बनाते हैं, उसीमें से थोड़ा—थोड़ा बिना किसी को कष्ट पहुँचाये हम ग्रहण करते हैं। इसलिए हम एक घर से दूसरे घर भिक्षा के लिए भ्रमण करते हैं।

एवन्ता कुमार—यदि ऐसा है, तो चलिए मेरे साथ। मैं आपको भोजन दिलाता हूँ। ऐसा कहकर उसने गौतम स्वामी की अंगुली पकड़ ली और उन्हें अपने आवास की ओर चलने का आग्रह करने लगा।

गौतम स्वामी ने उसे कहा कि अंगुली छोड़ दो। परन्तु बालक क्या समझे, मुनि की मर्यादा और उनके कल्प को? संतों के चरणों में नमस्कार किया जा सकता है, किन्तु उनके अन्य अंगों को छूना नहीं चाहिए। संत भी गृहस्थ के किसी अंग को नहीं छूते। शास्त्र में इसका सुन्दर निरूपण किया गया है।

एवंताकुमार गौतमस्वामी गणधर के साथ अपने आवास की ओर बढ़ रहा था। उधर उस अनूठे लाल को जन्म देनेवाली माता भोजन का समय हो जाने से अपने लाल की प्रतीक्षा कर रही थी। उसकी दृष्टि दरवाजे की ओर लगी हुई थी। सहसा उसने देखा कि एवंता कुमार एक महात्मा के साथ चला आ रहा है। महारानी बहुत प्रसन्न हुई। महारानी होते हुए भी उसके दिल

में संतों के प्रति अति आदर और सद्भाव था। तुच्छ प्रकृति के व्यक्ति वैभव पाकर इतने उन्मत्त हो जाते हैं कि वे संतों के महत्व को नहीं समझते। इतना ही नहीं, वे अन्य व्यक्तियों के प्रति भी भद्र व्यवहार नहीं करते।

। r dYir# gS

एवंताकुमार की माता महारानी श्रीदेवी यह जानती थी कि संत संसार के समस्त पदार्थों का परित्याग करके चलते हैं। वे कनक और कामिनी के त्यागी होते हैं। वे कल्पतरु के तुल्य हैं। जिसके घर पर ऐसे जंगम कल्पतरु का पदार्पण होता है, वह घर धन्य हो जाता है, उसके जीवन का अभ्युदय होने लगता है। मेरे घर पर आज संत—महात्मा पधार रहे हैं, मेरा लाल उन्हें साथ लेकर आ रहा है, यह कितने सौभाग्य की बात है। वह बोल उठती है:—

**vgksckyMk egk i q ; ork] Hkyh tgkt ?kj ykbA
g"KZHko I sgkFkaI scgjko} vlu vkj i kuh t hA
, ork e(uoj] uko frjkbZ cgrk uhj e hA**

माता कहने लगी—अहो बालुड़ा! तुमने बहुत अच्छा काम किया। तुमने असीम पुण्य का संचय किया। तुम्हारा और हमारा अहोभाग्य है, जो तरण—तारण जहाज को घर ले आया। तुम्हारा जन्म सफल हुआ।

माता को हर्षित जानकर कुमार भी फूला नहीं समाया। उसे अनुभव हुआ कि मैं अच्छा काम करके आया हूँ। माता की अनुमोदना से बालक का उत्साह द्विगुणित हो जाता है। माता ने गौतम स्वामी को भावना के साथ वन्दन किया और भोजनगृह में ले जाकर निर्दोष अन्न—जल भक्तिपूर्वक बहराया। मुनि निर्दोष भिक्षा ग्रहणकर वहाँ से निकल पड़े। महारानी ने पुनः उन्हें वन्दन

किया और कुछ दूरी तक उन्हें पहुँचाने आयी। कुमार भी गौतम स्वामी के साथ जाने लगा।

**ykjs ykjs pky; ks ckyMks n[; k Hkk; I Kkk; A
Hkxark dh ok.kh I q uSeu vk; ksojK; t hAA
, ork e[uj uko frjkbZ cgrk uhj eAA**

एवंता कुमार की भावना का वेग तीव्र गति से बढ़ रहा था। माता द्वार तक पहुँचाने जाती है। किन्तु कुमार उन संत-महात्मा के साथ आगे बढ़ता जा रहा है। माता को ज्ञात है कि उसका लाल भूखा है, वह खेल में रम रहा था, भोजन का समय है फिर भी वह महात्मा के साथ जा रहा है। माता ने उसको रोकने की कोशिश नहीं की। वह जानती थी कि बचपन में ऐसे संस्कार पुण्य की प्रबलता से ही प्राप्त होते हैं।

गौतम स्वामी के साथ एवंता कुमार प्रभु महावीर स्वामी के समीप पहुँचा। गौतम स्वामी का अनुकरण करते हुए उसने भी महावीर स्वामी को नमस्कार किया। वह हाथ जोड़कर प्रभु के सामने बैठ गया। प्रभु सर्वज्ञ-सर्वदर्शी थे। उन्होंने कुमार के भविष्य को जान लिया था। उस होनहार कुमार ने प्रभु से प्रार्थना की कि भगवान! मुझे उपदेश सुनाइये।

आज कल्पना करते होंगे कि आठ वर्ष का बालक उपदेश में क्या समझता होगा? उसमें धर्मोपदेश की जिज्ञासा कैसे हो सकती है? सर्वज्ञ-सर्वदर्शी प्रभु महावीर जैसे सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी ने आठ वर्ष के बालक को क्या उपदेश दिया होगा? उत्तर में मैं कहना चाहूँगा कि जो बातें हमें सामान्य से विलक्षण प्रतीत होती हैं, वे पूर्व में प्रबल संस्कारों की प्रतीति कराती हैं। पूर्व के संस्कार बहुत प्रबल होते हैं। वे निमित्त पाकर जब जागृत होते हैं, तो उनमें सामान्य बातों से विलक्षणता और विचित्रता दृष्टिगोचर होती

है। कई छोटे बालकों में पायी जानेवाली अद्भुत प्रतिभा इस बात का प्रमाण है। कई बालकों में वयस्कों की अपेक्षा विशेष जिज्ञासा दृष्टिगोचर होती है। कई बार मैं देखता हूँ कि जब तात्त्विक गहराई की बात की जाती है, तब कई वयस्क नींद लेने लगते हैं। यह पूर्व संस्कार और भावी होनहार का परिणाम समझना चाहिए। एवंता कुमार के पूर्व संस्कार और उसके उज्ज्वल होनहार के कारण उसे ऐसी तत्व-जिज्ञासा होना संभावित है।

min"Vk I en"Vk gkrk gS

हितोपदेशक वीतराग देव समदर्शी होते हैं। वे सबको समान रूप से हितोपदेश सुनाते हैं। वे आशंसारहित होते हैं। अतएव जिस भावना से सम्राट, चक्रवर्ती, राजा और श्रीमन्तों को उपदेश देते हैं, उसी भावना से तुच्छ, दीन-हीन अनाथ को भी धर्मोपदेश प्रदान करते हैं। उनके यहाँ संपन्न-विपन्न का कोई भेद नहीं होता, स्त्री-पुरुष का भेद नहीं होता, बाल, युवा, वृद्ध का भेद नहीं होता, गुणी-अगुणी का भेद नहीं होता, पुण्यशाली या पुण्यहीन का भेद नहीं होता। वे सबको एकान्त हितकारी उपदेश समभाव से प्रदान करते हैं। आगम में कहा है—

tgk iq.klI dRFkb rgk r¶NLI dRFkbA

tgk r¶NLI dRFkb rgk iq.klI dRFkbAA

—आचारंग सूत्र

उपदेष्टा अनुग्रह बुद्धि से जैसे पुण्यशाली सत्ता-सम्पन्न को उपदेश देते हैं, वैसे ही तुच्छ-रंक को भी उपदेश देते हैं। इसी हितकर बुद्धि से प्रभु महावीर ने एवंता कुमार को सामायिक एवं बाल-बुद्धिगम्य उपदेश प्रदान किया।

प्रभु महावीर की वाणी ने कोमल-हृदयी एवंता कुमार के निर्मल हृदय पर चमत्कारिक प्रभाव डाला। वह कहने लगा—

प्रभो! मैं अपने जीवन—निर्माण की दृष्टि से आपके चरणों में उपस्थित होना चाहता हूँ। मैं आपके चरणों की शरण में आकर अनगार बनाना चाहता हूँ। प्रभु ने कहा—जहा सुहं देवाणुप्पिया। (जैसे सुख हो वैसा करो।)

ekrk&iq l okn

एवंता कुमार वहाँ से लौटकर अपनी माता के पास आया। वह बहुत प्रसन्न और बहुत प्रोत्साहित हो रहा था। उसने माता से कहा—माता! मैंने प्रभु महावीर के दर्शन किये।

माता—लाल! तुम्हारे नेत्र पवित्र हुए। तुम धन्य हो गये।

कुमार—माता! मैंने प्रभु की वाणी—सुधा का पान किया।

माता—लाल! तुम्हारे कान पवित्र हो गये। वीतराग—वाणी का श्रवण करना बड़ा दुर्लभ है।

कुमार—माता! मैंने प्रभु की वाणी को हृदय में धारण किया।

माता—लाल! तुम्हारा हृदय निर्मल बन गया। तुम्हारा जीवन धन्य हो गया।

कुमार—माता! मैं प्रभु की वाणी को हृदय तक ही नहीं रखना चाहता, उसे क्रियान्वित भी करना चाहता हूँ।

माता—लाल! यह तो बहुत ही उत्तम है। अपने घर में वे सब साधन हैं। जो भी नेक और शुभ कार्य तुम करना चाहो, खुशी से करो।

कुमार—माता! मैं घर—बार छोड़कर अनगार बनना चाहता हूँ।

यह सुनकर माता को हँसी आ गयी। यदि अन्य कोई माता होती, तो उसकी दशा अन्य ही प्रकार की होती। माता ने कहा :—

rwdkpZ tk.k l k/q i .kk eñ cky voLFk Fkjñ

mùkj nh/ks, ð ksdøj thj ekr dgscfygkjñ thA

,ork e(uoj uko frjkb/ cgrk uhj eA

हे लाल! तू साधुपने को क्या समझता है? तेरी अवस्था बहुत छोटी है। साधुपना बच्चों का खेल नहीं है। तेरी खेलने की अवस्था है। अतएव खेलो और आनन्द से रहो।

कुमार—माता! मैंने प्रभु के मुखारविन्द से संसार का सार जान लिया है।

tapo tk.kfe rapo uls tk.kfe

(मैं जो जानता हूँ, उसे नहीं भी जानता हूँ।)

माता—लाल! यह क्या पहेली बुझा रहे हो?

कुमार—माता! मैं यह जानता हूँ कि मानव—मात्र मरनेवाला है। जिसने जन्म लिया है, वह मरेगा। लेकिन कब मरेगा, कैसे मरेगा, यह मैं नहीं जानता। इतना जानता हूँ कि जीव अपने शुभाशुभ कर्मों से चतुर्गति रूप इस संसार में भ्रमण करता है। माता! जीवन का भरोसा नहीं है। कौन जानता है कि पहले कौन मरेगा? पीछे कौन मरेगा? इसलिए मैं आपकी आज्ञा लेकर अनगार बनना चाहता हूँ, ताकि मृत्यु पर विजय पा सकूँ।

माता—लाल! तुमने जीवन का मक्खन पा लिया। तत्वज्ञान का कर्म पहचान लिया, परन्तु अनगार बनने योग्य तुम्हारी अवस्था नहीं है। परिपक्व स्थिति आने पर उचित काल में तुम अपने संकल्प को कार्यरूप दे सकते हो। अभी वह अवसर नहीं है।

इस प्रकार माता ने एवंता कुमार को समझाने का बहुत प्रयास किया, किन्तु कुमार अपने संकल्प पर अटल और अविचल रहा। उसे प्रलोभन दिया गया। राहसिंहासन पर आसीन किया गया। सिंहासन पर आरूढ़ होकर भी उसने कहा—मैं अब राजाओं का राजा हूँ। मेरी आज्ञा है कि श्री भंडार से तीन लाख सोनैया

निकालकर संयम के उपकरण मंगवाइये और दीक्षा-विधि सम्पन्न करिये ।

अन्ततोगत्वा माता-पिता ने अपने कलेजे के टुकड़े को प्रभु के चरणों में समर्पित किया और कहा-भंते! यह शिष्य-भिक्षा ग्रहण कीजिये और इसे इस योग्य बनाइये कि यह पुनः किसी माता की कुक्षि में जन्म न ले । यह जन्म, जरा व मृत्यु पर विजय प्राप्तकर शाश्वत स्वरूप को पा सके ।

प्रभु महावीर स्वामी ने एवंता कुमार को प्रव्रज्या प्रदान की । वह एवंतामुनि बन गया । साधु-जीवन की प्रक्रिया सीखने लगा । थोड़े ही दिनों के बाद शौच आदि कार्य हेतु स्थविरों के साथ बाहर जाने का प्रसंग आया । थोड़े समय पूर्व वर्षा हुई थी । उसका पानी बह रहा था । बालमुनि शौच से निवृत्त होकर बहते हुए पानी को देखकर बाल-सुलभ क्रीड़ावश उसमें पात्री तिराकर बोलने लगे-मेरी नाव तिरी, मेरी नाव तिरी । स्थविर मुनियों ने वहाँ आकर यह क्रीड़ा देखी, तो उन्होंने समझाया कि ऐसा करना मुनि का कल्प नहीं है । बालमुनि ने पुनः ऐसा न करने का आश्वासन दिया । स्थविरों ने प्रभु महावीर को घटित घटना का हाल सुनाया, तो प्रभु महावीर ने फरमाया-स्थविरों! यह चरम शरीरी जीव है । तुम इसकी हीलना-निन्दा मत करो । यह इसी भव में सिद्ध-बुद्ध और मुक्त होगा ।

स्थविरों ने प्रभु के वचनों को शिरोधार्य किया । एवंतामुनि ने भी संयम की उत्कृष्ट साधना की और जिस कार्य के लिए प्रव्रजित हुए थे, उसे सिद्ध कर लिया । न केवल उन्होंने वर्षा के बहते नीर में नाव तिरायी, अपितु संसार के दुस्तर प्रवाह से आत्मा की नौका पार कर ली ।

बहुत से भाई-बहिन यह कहते सुने जाते हैं कि छोटे बच्चों को दीक्षित क्यों किया जाता है? हमारा प्रयत्न हर किसी

को दीक्षित करने का नहीं होता। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और योग्यता देखकर दीक्षित करने का प्रयत्न होता है। योग्य व्यक्ति ज्ञात हो, तो किसी भी वय में दीक्षा देने का शास्त्रीय विधान है। छोटे बच्चों को दीक्षित करते समय विशेष सतर्कता बरतनी चाहिए। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि कोमल वय में दिये गये संस्कार विशेष प्रभावपूर्ण होते हैं। मदालसा ने अपने बच्चों को प्रारम्भ से विरक्ति की ओर लगाया। बड़े-बड़े महापुरुष बचपन के संस्कारों से ही बड़े बन सके हैं।

पर्युषण पर्व का आज सातवाँ दिन है। कल परीक्षण का क्षण है। आपने पूरे तैयारी कर ली होगी। कौन उत्तीर्ण होता है और कौन अनुत्तीर्ण रहता है, यह परसों मालुम हो जायेगा। जिनके प्रति कलुषित भाव बने हैं, उनको धो डाला जायेगा, तो उत्तीर्णता प्राप्त होगी। यदि कालुष्य की पोटली को पकड़कर रखा गया, तो असफलता ही हाथ लगेगी।

जीवन को भव्य और दिव्य बनाने का सुन्दरतम सुयोग आपको मिला है। एवन्ता कुमार की तरह आप भी अपनी जीवन नौका को पार उतार सकते हैं। आशा है, आप जीवन-निर्माण की कला सीखकर जीवन को दिव्य और भव्य गुणों से अलंकृत करेंगे। धर्म के मार्ग पर चलकर जीवन को मंगलमय बनायेंगे।

देशनोक

8.9.75

vkrek dk vUruk^h ^[kese I Os thok*

- 0 {keki uk fo'o 'kkir dk eny ea= gA
- 0 {kek I cds an; dks thr yrh gA
- 0 {kek'khy gh I Ppk ohj gA
- 0 i ksk/k %vkrek eaR; kx vlsj ojkK; xqkkadk i ksk.k
djukA
- 0 vfxu dsrki I s I kusdh v'k) nij gsk trrh
gA riL; k dh Tokyk I svkrek I siki deznij gsk
tkrs gA
- 0 miokl dk vFkz %vkre Lo: i eafuokl A
- 0 {kek fo'o eS-h dh pkch gA

Jh I fof/k ftusoj ofn; sgks onr iki igyk; A
i ksk R; kxh jktuh gks yh/kks I a e HkjA
fut vkre&vutko Fkdh gks i kE; k in vfodkjA

Jh I fof/k-----AA

श्री सुविधिनाथ प्रभु के पाद-पदों में प्रार्थना के माध्यम से भावांजलि समर्पित की गयी है। लगातार कई दिनों से श्री सुविधिनाथ परमात्मा की प्रार्थना की जा रही है, क्योंकि उन परम कृपालु परमात्मा ने जग-जीवों को कल्याण की और सुख शान्ति की सुविधि बताया है। उनकी बताया हुई सुविधि-वीथिका पर चलकर आत्मा परम और चरम उत्कर्ष को प्राप्त कर सकती है। ऐसे परमात्मा के चरणों में प्रतिदिन प्रार्थना करने का महत्वपूर्ण प्रसंग प्राप्त होता है, तो अन्तर का कण-कण विकसित और प्रफुल्लित हो उठता है। आत्मा का परमात्मा के साथ सम्पर्क स्थापित हो जाता है। इस प्रकार प्रार्थना ही परमात्मा के प्रति आत्मा के समर्पण का प्रतीक हैं

पूर्व में अनेक बार प्रतिपादित किया जा चुका है कि यह आत्मा चौरासी लाख जीव-योनियों में परिभ्रमण करता है, परन्तु मानव-तन के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी परम विश्राम की विधि उसे सुलभ नहीं है। आत्म-विकास का मानव जीवन के साथ महत्वपूर्ण सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। जितना भी विकास दृष्टिगत होता है-चाहे वह भौतिक क्षेत्र में हो अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र में, वह मानव-तन से ही सम्भव हो सका है। अन्य जीवों में विकास का यह अवसर नहीं है। ऐसा सुन्दरतम महान मानव-जीवन जिन्हें उपलब्ध है, वे इस सम्बन्ध में समग्र दृष्टिकोण से सोचें कि कि किस प्रकार वे अपने जीवन का सर्वोच्च विकास उपलब्ध कर सकते हैं!

'kfor dh nyzkrk

आज विश्व में भौतिक विज्ञान का विस्तार हो रहा है। नित्य नवीन-नवीन भौतिक सुख-सुविधाओं के साधन उपलब्ध हो रहे हैं। यातायात के साधन इतने तीव्रगामी और दूरगामी हैं कि

दुनिया की दूरी कम होती जा रही है, वह सिमटती जा रही है। विश्व के एक छोर से दूसरे छोर पर अल्प समय में ही पहुँचा जा सकता है। एक स्थान की वस्तुएँ आसानी से सर्वत्र उपलब्ध हो सकती हैं। दूर-दूर के शब्दों का आदान-प्रदान कुछ ही क्षणों में हो सकता है। ये सब उपलब्धियाँ भौतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं, परन्तु इन सबके बावजूद शान्ति सुलभ नहीं हुई है। ज्यों-ज्यों सुख-सुविधा के भौतिक साधन उपलब्ध होते जा रहे हैं, त्यों-त्यों शान्ति विलुप्त होती जा रही है। साधनों की वृद्धि के साथ-साथ अशान्ति की वृद्धि होती जा रही है। दुनिया की दूरी मिटने के साथ ही साथ दिलों की दूरी बढ़ती चली जा रही है। इसका अर्थ यह है कि भौतिक साधनों की अभिवृद्धि शान्ति की विधि नहीं है। शान्ति की विधि तो वही है, जो सुविधिनाथ परमात्मा ने बताया है।

आप और हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि जिनके पास भौतिक साधनों की जितनी अधिक विपुलता है, वे उतने ही अधिक अशान्ति की आग में जल रहे हैं, तो स्पष्ट ही यह ज्ञान होना चाहिए कि शान्ति का यह मार्ग नहीं है, जिस पर न केवल दुनिया चल ही रही है, अपितु दौड़ रही है। शान्ति का तो कोई दूसरा ही रास्ता है। जब यह प्रतीत हो जाये कि शान्ति की मंजिल पर पहुँचने के लिए हमने जो मार्ग अपनाया है, वह गलत है, तो समझदारी और विवेक का तकाजा है कि हम उस मार्ग को तत्काल छोड़ दें और सही मार्ग की खोज करें अन्यथा हम शान्ति की मंजिल तक कभी नहीं पहुँच पायेंगे। भौतिक साधनों को जुटाकर देख लिया कि इनमें कहीं शान्ति का नामोनिशान नहीं है, अपितु ये तो शान्ति को चौपट करनेवाले हैं, तो अपनी गलत दिशा को छोड़ दीजिए और सही दिशा की ओर मुड़ जाइये। वह सही दिशा है—प्रभु सुविधिनाथ की बतायी हुई आध्यात्मिक सुविधि। इस आध्यात्मिक सुविधि का अनुसरण करने से ही आत्मा शान्ति

व आनन्द पा सकता है।

ikou i d a %i ; k.k

आप सब शान्ति पाना चाहते हैं। शान्ति के साधन जुटाना चाहते हैं। बाह्य साधनों को जुटाने के प्रयास में इतना समय निकल गया, आयु का बहुत-सा भाग चला गया, किन्तु शान्ति के दर्शन हुए क्या? शान्ति की एक किरण भी प्रस्फुटित हुई हो, तो बताइये? तो आइये, बाहर से दृष्टि हटाइये, सुविधिनाथ परमात्मा के गुण गाइये, उनकी बतायी हुई विधि पर कदम बढ़ाइये और शाश्वत शान्ति का आनन्द पाइये!

शान्ति के शाश्वत मार्ग को प्रशस्त करने के लिए पर्युषण का पावन प्रसंग उपस्थित है। जिन आत्माओं ने अपने अन्तर स्वरूप को समझा है, जिन्होंने संसार को समग्र रूप से जान लिया है, जिनसे विश्व का कोई भी अंश छिपा हुआ नहीं है, ऐसे सर्वज्ञ सर्वदर्शी परमात्मा ने जगत के जीवों के कल्याण के लिए इस पर्व का निरूपण किया है। यह पर्व शान्ति का संदेश-वाहक है, विश्व के आंगन में समता का विस्तारक है, सुख का संचारक है, पाप के ताप का निवारक है, भवोदधि-तारक है और जगज्जीवों का उद्धारक है। कषाय की आग को शान्त करने के लिए यह पानी है, वैर-विरोध की गर्मी को प्रशान्त करने हेतु यह मेघ की धारा है, मन की मलिनता को धोने के लिए यह गंगा जल है, विषयों के विष-विकारों को हटाने के लिए यह अमृत है, मोहान्धकार को मिटाने के लिए यह सूर्य है, आध्यात्मिक दीनता को दूर करने के लिए चिन्तामणि है और मुक्ति रूपी फल के लिए कल्पवृक्ष है।

यह पर्युषण पर्व आत्मा का पर्व है। किसी समाज, जाति या वर्ग विशेष का न होकर यह व्यापक और सार्वभौम है। सूर्य सबको प्रकाश देता है। यह सारे विश्व का है। चन्द्र सबको शीतल उद्योत प्रदान करता है। वह किसी खास वर्ग का नहीं है। पृथ्वी

सबके लिए आधारभूत है। इसी तरह यह पर्व भी सबके लिए मंगलकारी है। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र का कोई विभाग नहीं है। राजा या रंक, निर्धन या सम्पन्न, मालिक या मजदूर, स्त्री या पुरुष, युवक या वृद्ध, जनता या नेता—प्रत्येक व्यक्ति इस पर्व की आराधना का अधिकारी है। जैन समाज ही इस पर्व की आराधना का एक मात्र ठेकेदार या लाइसेंस होल्डर नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति जो आत्म-संशोधन करने की अभिलाषा रखता है, जो अपने मन की मलिनता को धोना चाहता है, जो अपनी अन्तर-चेतना को जागृत करना चाहता है, उसके लिए यह पर्व एक स्वर्णिम अवसर है। कौन नहीं चाहता है कि उसकी आत्मा निर्मल बने। कौन व्यक्ति मन में मैल को जमा रखना चाहता है? सब मैल को धोना चाहते हैं। अतएव इस शुद्धि पर्व में सबको सम्मिलित होना चाहिए। आध्यात्मिक शुद्धि के इस पावन पर्व पर प्रत्येक व्यक्ति को अपने मन का मैल साफ कर लेना चाहिए और इसकी शीतल जलधारा से पाप के ताप को शान्त कर लेना चाहिए।

dky dh vuplyrk

जैन सिद्धान्त में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का स्थान-स्थान पर निरूपण है। प्रत्येक कार्य में इन सब की महत्वपूर्ण भूमिका होता है। पर्युषण के काल निर्धारण में भी उन महामनीषी परम ज्ञानी आप्त पुरुषों की सूक्ष्मदर्शिता परिलक्षित होती है। वर्षावास का समय निवृत्ति की उपासना के लिए अन्य काल की अपेक्षा विशेष अनुकूल होता है। कृषक, व्यापारी, अधिकारी आदि सभी वर्गों के लिए यह समय धर्माराधन के लिए विशेष सुविधाजनक है। अतएव भाद्रपद मास में यह पवित्र पर्व निर्धारित हुआ।

pkreki dYi

शास्त्रीय मर्यादा अनुसार जैन मुनियों के कल्पों का विधान किया गया है। उनमें चातुर्मास कल्प एक महत्वपूर्ण कल्प

है। शास्त्र में निर्दिष्ट है कि मुनि वर्ष के आठ मासों में संयम और तप से आत्मा को भावित करता हुआ ग्रामानुग्राम विचरण करे। जैसे बहता हुआ पानी निर्मल होता है, उसी तरह विचरण करता हुआ मुनि भी अनासक्त, अप्रतिबद्ध और निर्ममत्व होने के कारण निर्मल बना रहता है। अधिक समय तक एक स्थान पर रहने से ममत्व पैदा होने की संभावना रहती है। उसको टालने के लिए मुनि को अप्रतिबद्ध विहारी होना चाहिए। जिस संयम की साधना और रक्षा हेतु शेषकाल में विहार की अनुज्ञा है, उसी संयम की साधना और रक्षा हेतु ही चातुर्मास काल में एक स्थान पर रहने की अनुज्ञा है। जीवोत्पत्ति विशेष होने के कारण गमनागमन द्वारा उसकी विराधना टालने के लिए चातुर्मास कल्प में मुनियों को एक स्थान पर रहने का शास्त्रीय निर्देश है। इसी कल्पानुसार हम देशनोक में स्थित हैं।

इस कल्प का उद्देश्य मुनियों की आत्मासाधना तो है ही, परन्तु इसके साथ ही संघ, तीर्थ, समाज और सर्वसाधारण के कल्याण की भावना भी इसमें सन्निहित है। मुनि जहाँ चातुर्मास करे, वहाँ की जनता को धर्मारोधन की प्रेरणा करता रहे। सर्वसाधारण जनता को आवलम्बन की आवश्यकता होती है। मुनियों के अवलम्बन से जनता में धार्मिक भावनाएँ जागृत होती हैं, धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न होती है और उनकी प्रेरणा से जनता का नैतिक और आत्मिक धरातल समुन्नत होता है। प्रभु महावीर की शासन व्यवस्था बहुत ही उत्तम कोटि की है। इसमें व्यक्तिगत कल्याण के साथ ही साथ समष्टि का कल्याण भी सन्निहित है। इसी दृष्टिकोण से चातुर्मास-कल्प जहाँ मुनियों के लिए आत्मकल्याण का साधक है, वहीं संघ एवम् समाज के लिए भी अत्यन्त हितावह और कल्याणकारी है। साधु-संत आत्म कल्याण के साथ ही सर्वसाधारण को बिना किसी भेदभाव के आशंसा रहित होकर एकान्त परमार्थ दृष्टि से उपदेश देकर उनके जीवन को संस्कारित

और प्रकाशित करने का प्रयत्न करते हैं। वे स्वयं भी संयम मार्ग की आराधना करते हैं और अन्य को भी संयम के मार्ग पर चलने की प्रेरणा करते हैं।

i oł dk bfrgkl

इसी दृष्टिकोण को लेकर आप और हम आज संवत्सरी पर्व की आराधना हेतु यहाँ एकत्रित हैं। यह पर्व सनातन काल से मनाया जाता रहा है। इसका इतिहास कुछ वर्षों या शताब्दियों का नहीं है। अपितु अतीत की अनन्त गहराइयों से जुड़ा हुआ है। इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थकर हुए हैं। उनमें प्रभु महावीर चरम तीर्थकर हैं। पूर्व के तीर्थकरों ने जो प्रतिपादित और आचरित किया, वही प्रभु महावीर ने प्ररुपित और व्यवहृत किया, क्योंकि सभी तीर्थकरों की मौलिक प्ररुपणा एक समान होती है। सर्वज्ञ-सर्वदर्शी तीर्थकरों के ज्ञान में कोई अन्तर नहीं होता। पूर्व के तीर्थकरों के उपदेश और आचारों का प्रतिबिम्बन हमें प्रभु महावीर में संक्रात होता हुआ दृष्टिगत होता है। समवायांग सूत्र में कहा गया है:—

I e.ks Hkxoa egkohjs okl k.ka I ohl bjK, ekl s obôrA I Ûkfj ,fgajkbán ,fgal † frZokl kokl ai Tt† obAA

श्रमण भगवान महावीर ने वर्षावास का एक माह बीस दिन बीतने पर और 70 रात्रि दिन अवशेष रहने पर पर्युषण-कल्प अर्थात् संवत्सरी महापर्व की आराधना की। चातुर्मास का आरम्भ आषाढ शुक्ल पूर्णिमा से होता है। उसमें 49 या 50 वाँ दिन भाद्रपद शुक्ला पंचमी को आता है। इस आगम के पाठ से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रभु महावीर ने और उनके पूर्ववर्ती तीर्थकरों ने भी इस पर्व का आराधन किया था। इससे इस पर्व की सनातनता और महत्ता सिद्ध होती है।

यह दिन आध्यात्मिक दृष्टिकोण से तो महत्वपूर्ण है ही, समग्र सृष्टि के लिए युगान्तरकारी है। जैन सिद्धान्त के अनुसार कालचक्र के बारह आरक हैं। छह आरक उत्सर्पिणी (उत्तरोत्तर विकास) काल के हैं और छह आरक अवसर्पिणी (क्रमिक ह्रास) काल के हैं। जिस समय में मनुष्य आदि प्राणियों के शरीर की ऊँचाई-चौड़ाई तथा शक्ति में तथा जमीन आदि पदार्थों के रस-कस में उत्तरोत्तर उत्कर्ष होता जाता है, वह काल उत्सर्पिणी काल कहलाता है और जिस समय में इनका क्रमिक ह्रास होता जाता है, वह समय अवसर्पिणी काल कहलाता है। यह काल का चक्र निरन्तर घूमता रहता है। वर्तमान में अवसर्पिणी काल का पंचम दुःषम नामक आरा चल रहा है। 21 हजार वर्ष तक यह चलेगा। इसकी समाप्ति पर छठा दुःषम-दुःषम आरा लगेगा। वह ह्रास की पराकाष्ठा काल होगा। उसमें धर्म, कर्म, राज्य-व्यवस्था आदि का लोप हो जायेगा। प्रकृति में भयंकर उथल-पुथल होगी। गाँव-नगर उजड़ जायेंगे। वह आरा लगते ही प्रथम सप्ताह में भयंकर प्रलयकारी वायु चलेगी, जो अधिकांश बस्तियों को उजाड़ देगी। एक सप्ताह तक असह्य प्रलयंकर ठंड पड़ेगी। एक सप्ताह तक खारे जल की मूसलाधार वर्षा होगी। वह जल इतना खरा और तीक्ष्ण होगा कि जीवधारियों और वनस्पतियों के शरीर जलने लगेंगे। इसके पश्चात् 7 दिन तक विष-वृष्टि, 7 दिन तक धूलि-वृष्टि और 7 दिन तक धूम्र की वृष्टि होगी। इसी तरह जब उत्सर्पिणी काल प्रारम्भ होगा, तब उसके प्रथम आरक में भी यही स्थिति चलेगी। जब दूसरा आरा प्रारम्भ होगा, तब तक सप्ताह तक दूध जैसे पानी की वर्षा होगी, एक सप्ताह तक घृत की वर्षा, एक सप्ताह तक अमृत की वर्षा, एक सप्ताह तक ईख जैसे जल की वर्षा होगी, इसके पश्चात् एक सप्ताह खाली जायेगा। तत्पश्चात् अन्य वृष्टियाँ होंगी, जिससे जमीन पुनः सरसब्ज बन सकेगी और मानव तथा अन्य जीवधारियों के लिए

हितावह होगी। इस प्रकार 50 वें दिन अर्थात् भाद्रपद शुक्ला पंचमी का दिन शान्ति का दिन है।

'kār dk i oZ

उक्त सैद्धांतिक विवेचन से ज्ञान होता है कि यह संवत्सरी का पर्व शांति का पर्व है। सकल सृष्टि की दृष्टि से भी यह शांति का दिन है और आध्यात्मिक दृष्टि से भी यह शांति का दिन है। कषायों की जाज्वल्यमान आग को वैर-विरोध की लपटों को उपशांत करने का यह भव्य प्रसंग उपस्थित है। अतएव क्षमा के जल से इस धधकती हुई कषाय की (लाय) अग्नि को शांत कर दीजिये। आपकी आत्मा अपूर्व शांति का आस्वादन एवम् अनुभव करेगी। इस प्रकार इस दिन को हमें शांति पर्व के रूप में मनाना है।

ऐसा भी माना जा सकता है कि पर्व के प्रसंग पर अगले भव की आयु का बन्ध भी पड़ सकता है। अतएव यदि पवित्र अध्यवसायों के साथ इस शांति पर्व की आराधना की जाये, तो यह अगले जीवन में भी शांति देनेवाला होता है। अतएव इस शांति पर्व की सम्यग् आराधना करनी चाहिए। इस पर्व को श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने मनाया, गौतम गणधर ने मनाया। सुधर्मा स्वामी और अन्य आचार्य परम्परा से इसे मनाते आ रहे हैं। लगभग 2500 वर्ष से भी पूर्व से यह परम्परा चली आ रही है।

vkRe'kī) dk i oZ

प्रभु महावीर के चतुर्विध संघ (साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका) के प्रत्येक सदस्य के लिए इस पर्व की आराधना करना अनिवार्य होता है। तभी वह प्रभु की आज्ञा का अराधक माना जाता है। अतएव प्रत्येक सदस्य को गम्भीरता के साथ इस पर्व की आराधना के लिए चिन्तन, मनन और अनुशीलन करना चाहिए।

यह पर्व, अन्य लौकिक पर्वों की अपेक्षा विलक्षण है। अन्य पर्वों में खाना-पीना-ओढ़ना, रंग-राग और आमोद-प्रमोद की प्रमुखता होती है। इस पर्व में यह सब छोड़ना होता है। अन्य पर्व शरीर को सजाने के लिए हैं, तो यह पर्व आत्मा को सजाने-संवारने के लिए है। आत्मा को सजाने-संवारने के लिए आवश्यक है कि शरीर की आसक्ति को हटाया जाये। एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती। इसी तरह शरीर की आसक्ति और आत्मा की भक्ति एक साथ नहीं हो सकती। अतएव इस पर्व पर खान-पान का त्याग किया जाता है, वस्त्राभूषणों की चमक-दमक को छोड़ा जाता है, विषय-कषायों से दूर रहा जाता है। प्रत्येक अपने-आपको जैन माननेवाला व्यक्ति इस दिन उपवास करता है। बारह महीनों में कभी धर्मस्थान पर न आनेवाला व्यक्ति भी इस दिन तो अवश्य धर्मस्थान पर आता है। यह इस बात का द्योतक है कि जैन समाज में इस पर्व का कितना महत्व है।

जैन साधु-साध्वी समुदाय इस दिन 'चौविहार उपवास रखते हैं। केश-लुंचन करते हैं, साथ ही कषायों का भी लुंचन करते हैं। संयम की साधना में लगे दोषों की आलोचना करते हैं, प्रायश्चित्त लेते हैं और आगे के लिए प्रत्याख्यान करते हैं। श्रावक-श्राविकवर्ग भी उपवास करते हैं, श्पौषध करते हैं, कषायों

¹उपवास का तात्पर्य आत्मा के स्वरूप चिन्तन के लिए खान,पान आदि कार्यो से निवृत्त हो, अन्तर के संशोधन में संलग्न होना है। कहा है कि -

d"kk; fo"k; kgkj R; kxks ; = fo/kh; rA

mi okl %I foKs %u rq y?kua fonAA

श्पौषध का तात्पर्य आत्मा में विद्यमान त्याग वैराग्य के गुणों का पोषण करना एवं उनमें अभिवृद्धि करना है।

को शान्त करते हैं, वैर—विरोध को मिटाते हैं और परस्पर में क्षमा का आदान—प्रदान करते हैं। यह आत्मनिरीक्षण का दिन है। वर्षभर के कार्यों का, व्यवहारों का लेखा—जोखा करके यह जानना चाहिए कि इस वर्ष में आत्मिक क्षेत्र में कितनी प्रगति हुई या कितनी अवनति हुई? आत्मनिरीक्षण द्वारा अपनी भूलों का चिन्तन कर उनके संशोधन के लिए संकल्प करना चाहिए। इस संसार के सभी प्राणियों के साथ मैत्री—भाव रखने की भावना विकसित होनी चाहिए। जिनके साथ वैर—विरोध का प्रसंग बना हो, उनके प्रति विशेष ध्यान देकर क्षमा—याचना करनी चाहिए। शास्त्रकार फरमाते हैं कि चाहे साधु हो या श्रावक, जो कषायों को, क्लेशों को उपशमाता है, वही आराधक है, जो नहीं उपशमाता है, वह आराधक नहीं है।

ts mol eb rLI vFRk vkjkg.kkA

tsuks mol eb rLI .kFRk vkjkg.kkAA

'mol el kja [kyq I ke..ka संयम— चाहे वह सर्व संयम हो अथवा देश संयम हो— का सार उपशम है। कषायों का, क्लेशों का वैर—विरोधों का उपशमन करना ही संयम है। आज के इस महान पर्व का एक मात्र सन्देश है—उपशम! स्वयं शान्त बनिये और दूसरों को भी शान्ति दीजिये। क्षमा कीजिये और क्षमा माँगिये।

[kfe I Os thok] I Os thok [kearqea

feUkh ea I OoHoy I qoja eT>au dskbAA

आमा के अन्दर से ही नाद प्रकट होना चाहिए। मैं सब जीवों को क्षमा प्रदान करता हूँ और सब जीव मुझे क्षमा प्रदान करें। संसार के किसी जीव के साथ मेरा वैर नहीं है। सब जीवों के साथ मेरी मैत्री है। यह अन्तर्नाद जब आत्मा में स्फुरित होता है, वाणी द्वारा प्रकट होता है, आचरण में आता है, तो आत्मा

निर्मल हो जाती है, शल्यरहित हो जाती है, कर्म-भार से हल्की हो जाती है एवम् परम शान्ति का अनुभव करती है। आत्मशुद्धि का यह भव्य प्रसंग आज हमारे सामने उपस्थित है।

पर्युषण पर्व दिनों में आपने अन्तगड़ सूत्र का श्रवण किया है। उसमें कैसे-कैसे आदर्श महा-मानवों और महा-महिलाओं के चरित्र अंकित हैं! आत्मशोधन के लिए उन्होंने संयम और तप की कितनी उत्कृष्ट साधना की, यह आप श्रवण कर चुके हैं। मगध के सम्राट श्रेणिक की रानियों में संयम अंगीकार करके कितनी कठोर तपस्याओं की आराधना की! उनका वर्णन सुनने मात्र से रोमांच हो आता है। राजभवनों में रहनेवाली, स्वर्ण के झूलों में झूलनेवाली कोमलांगी राजरानियों ने रत्नों और मोतियों के आभूषणों को छोड़कर तप के मुक्ताहारों से अपनी आत्मा को सजाया, अलंकृत किया। कनकावली और रत्नावली तप के हारों को धारण किया। अतएव उनकी महिमा इस प्रसंग पर संत-जन किया करते हैं। एक गायन की कड़ी इस प्रकार है-

dkyh vks jkuh | Qy fd; ks vorkjA

काली रानी ने कठोर तपस्या करके अपने जीवन को धन्य और सफल बनाया। आज भी माताएँ तपस्या करने में पीछे नहीं रह रही हैं। देशनोक में बड़ी-बड़ी तपस्याओं का प्रसंग उपस्थित हुआ है। आज भी एक बहिन के 47 वें उपवास की तपस्या है। उनकी शारीरिक स्थिति देखकर कोई कल्पना तक नहीं कर सकता कि यह इतनी लम्बी तपस्या कर सकती हैं। वास्तविकता तो यह है कि तपस्या का सम्बन्ध शारीरिक स्थिति के साथ नहीं है। इसका संबंध मनोबल और आत्मा के साथ रहता है। यह बहिन (पूरनबाई मुकीम) प्रतिवर्ष तपस्या करती है। कभी 30, तो कभी 40। 51 उपवास भी कर चुकी हैं। यहाँ पर 41 और 30 उपवास की तपस्याएँ भी हो चुकी हैं। अजीब ढंग

का रसायन इन माताओं में आ जाता है! अठाइयाँ तो बहुत—सी हो चुकी हैं और हो रही हैं। पहले जिन्होंने उपवास भी नहीं किया, वे भी अठाई कर रही हैं। विविध प्रकार की अन्य तपस्याएँ भी हो रही हैं।

ri Is'ki)

जिस प्रकार आग से तपकर सोना निखर उठता है, उसी तरह तपस्या की आग में आत्मा का मैल जल जाता है और वह शुद्ध स्वर्ण की तरह निखर उठती हैं। आत्मा के विकारों के लिए तप अत्यावश्यक है। वह आत्मशुद्धि का अनिवार्य अंग है। जिस प्रकार शरीर के रोगों का उपचार प्रारम्भ करने के पूर्व वैद्य विरेचन (जुलाब) देकर पेट की शुद्धि करता है, ऐसा करने के बाद ही औषधि अपनी प्रभाव प्रकट करती है अन्यथा वह निरर्थक सिद्ध होती है। इसी तरह आध्यात्मिक जीवन के वैद्य प्रभु महावीर ने आत्मशुद्धि के लिए प्रारम्भिक उपचार के रूप में तप का प्रतिपादन किया है। आध्यात्मिक शुद्धि के लिए भूमिका के रूप में तप की आवश्यकता है। तप के माध्यम से भूख की परतंत्रता मिटती है, शरीर की आसक्ति घटती है और भावनाओं में निर्मलता आती है। यहीं से आध्यात्मिक शुद्धि की भूमिका शुरु होती है। दोषों को हटाने की क्षमता आती है। कषायों को शमन करने की योग्यता प्रकट होती है। आत्मा में आर्द्रता, कोमलता, स्निग्धता और सरलता पैदा होती है, जिससे वह धर्म और मोक्ष रूपी अंकुर को उत्पन्न करने में समर्थ बनती है।

जिस मिट्टी में आर्द्रता और मृदुता नहीं है, उसमें कोई अंकुर नहीं फूट सकता। अतएव चतुर किसान बीज बोने से पहले भूमि की आर्द्रता की अपेक्षा रखता है। मिट्टी के मुलायम होने पर ही वह बीज वपन बरता है अन्यथा बीज के व्यर्थ चले जाने की आशंका रहती है। इसी तरह धर्म और मोक्ष के अंकुर को

यदि आप प्रकट करना चाहते हैं, तो पहले आत्मा को सरल, आर्द्र और सुकोमल बनाना चाहिए। तप के द्वारा यह भूमिका प्राप्त होती है तथा इस स्थिति को प्राप्त करने में ही तप की सार्थकता है।

/kɛks | ɔ̃ | lɪ | fɐb

सिंहनी का दूध स्वर्ण के पात्र में ही रह सकता है। इसी तरह सम्यक्त्व या धर्म भी शुद्ध आत्मा में ही टिक सकता है। आप संवत्सरी महापर्व की आराधना हेतु यहाँ संतों की सेवा में आये हैं, तो सर्वप्रथम भूमिका की शुद्धि हेतु मन के विकारों को पारस्परिक वैर-विरोध और मनोमालिन्य को धोकर शुद्ध हो जाइये। आत्म-निरीक्षण द्वारा अपने दोषों की आलोचना कीजिये और प्रायश्चित्त के पानी से उन्हें धो डालिए। आलोचना सुनने योग्य समर्थ सदगुरु के समक्ष अपनी आलोचना कर हृदय को परिमार्जित कर लीजिये। जिनके साथ वैर-विरोध का प्रसंग प्राप्त हुआ हो, उनसे अन्तःकरणपूर्वक क्षमायाचना कीजिये।

याद रखिये, क्षमा माँगना और क्षमा करना दिव्यता और महत्ता का सूचक है। अकड़पन या मिथ्या अहंकार क्षुद्रता की निशानी है। बड़े-बड़े छायादार और फलवाले वृक्ष झुकते हैं, एरण्ड कभी नहीं झुकता। लोकोक्ति है—

ues | ks vɪk vkeyh | ues | ks nkɪme nk[ka

, j .M cpkj k D ; k ueʒ t kdh vkN h | k[ka

झुकने में बड़प्पन है। आम्र, इमली, दाड़िम, दाख आदि जातिवंत तरु झुकते हैं। तुच्छ एरण्ड का झाड़ अकड़पन से नहीं झुकता। परिणाम यह होता है कि वह वायु के आघात से शीघ्र धराशायी हो जाता है, जबकि बड़े और झुकनेवाले पेड़ हवा के आघातों में भी मस्ती से झूमते रहते हैं।

अतएव इस मिथ्याभिमान को दूर कीजिये कि मैं सामनेवाले

से पहले क्षमा कैसे माँगूँ? पहले वह क्षमा माँगेगा, तो मैं माँगूँगा। यदि ऐसी भावना दिल के किसी कोने में विद्यमान है, तो समझ लीजिए कि आत्मशुद्धि का कोई अवसर नहीं है। इस प्रकार की भावना तो महज सौदेबाजी है। सौदेबाजी के अभ्यासी आध्यात्मिक क्षेत्र में भी सौदेबाजी करते हैं, परन्तु इससे आत्मा की शुद्धि नहीं हो सकती। सामनेवाला व्यक्ति क्षमा माँगे या ना माँगे, आपको पहल करनी चाहिए। वैर-विरोध और कषाय के पोटले को फेंककर लघुभूत हो जाइये। आज का यह महान शक्ति पर्व आपको यह प्रेरणा दे रहा है। एक अपूर्व अवसर आपके सामने उपस्थित है। यदि आज के दिन क्षमायाचना नहीं की और अगले बारह महिनो के लिए वहीं बनी रही, तो सम्यक्त्व भी नहीं रह पायेगा, तो श्रावकत्व की तो बात ही क्या?

शास्त्रकारों ने कहा है कि जिस व्यक्ति के जीवन में क्रोध की मात्रा इतनी तीव्र है कि जिससे उसका वैर-विरोध हो जाये, वह व्यक्ति उससे क्षमायाचना कर लेता है, फिर भी वह व्यक्ति उसे क्षमा-याचना नहीं करता और अपने विरोध को क्लेश को, कषाय को बनाये रखता है, तो वह अनन्तानुबंधी कषायवाला होता है।

स्वर्गीय आचार्य देव फरमाया करते थे कि—

^r{kck] | ksk] | qM+uj] Vws tMs | kSckjA

ej] [k gkMh dfgkj dh] tMs u nsth ckjAA**

तांबा, सोना और बुद्धिमान व्यक्ति टूटने पर पुनः जुड़ जाते हैं। लेकिन कुम्हार की हांडी और मूर्ख व्यक्ति टूट जाने पर फिर नहीं जुड़ा करते। मूल्यवान तांबा-सोने के बर्तन फूट जाते हैं, तो ताप लगने से पुनः जुड़ जाते हैं। सुघड़ नर भी विचार भेद होने पर समझाने-बुझाने से अपना आग्रह छोड़कर एक हो जाते हैं। मैं समझता हूँ कि आप सुघड़ नर हैं। मूर्ख की श्रेणी या

कुम्हार की फूटी हाँडी जैसा होना तो आप कोई पसन्द नहीं करेंगे। आप चतुर और विचक्षण व्यापारी हैं। अतएव अपने मनोमालिन्य को समाप्त कर आपस में प्रेम की गंगा बहाइये। आपकी आत्मा शान्ति का अनुभव करेगी। यह संवत्सरी पर्व का सम्यग् आराधन होगा। मन का मैल धो डालिए, कषायों का शमन कर लीजिये, क्षमा और शान्ति की सरिता में अवगाहन कीजिये।

अपना दिल और हृदय विशाल होता है, उदार होता है, क्षमाशील होता है, तो उसका प्रभाव दूसरे पर पड़े बिना नहीं रहता। इसके संबन्ध में एक कथानक बहुत माननीय है।

nk&k dk&

एक धर्मसभा की घटना है। धर्मस्थान में सब तरह के व्यक्ति पहुँचते हैं। सेठ, साहूकार, राजा—महाराजा, नेता, गरीब, मजदूर, राह के भिखारी आदि सब आते हैं। धर्मस्थान गंगा के समान होता है। वहाँ भेदभाव नहीं होना चाहिए। संतजन सबको समभाव से उपदेश देते हैं।

एक सुसम्पन्न सेठ धर्मस्थान में आये। उनके गले में हीरों का कंठा था। एक दूसरा व्यक्ति भी धर्मस्थान में आया। वह आर्थिक दृष्टि से बड़ा कमजोर था। सेठ ने रात्रि के समय पौषध किया और कंठा उतारकर अपने पास रख लिया। दूसरा व्यक्ति जब धर्मस्थान में आया था, तब उसकी भावना आ गयी। उसने सोचा—मैं बहुत दुखी हूँ, बाल—बच्चों का भरण—पोषण भी नहीं कर पाता हूँ, मेरे पास साधन नहीं है, आजीविका चलती नहीं, कोई उधार भी नहीं देता, क्या करूँ? कैसे परिवार का निर्वाह करूँ? क्यों न सेठ जी का यह कंठा चुपके से उठा लूँ?

धर्मस्थान में आने से भावना पवित्र बननी चाहिए, परन्तु परिस्थितिवश उस भाई के दिल में मलिन भावना आ गयी। वर्षा

से सब वनस्पति हरी-भरी हो जाती है। परन्तु जवासा सूखता चला जाता है। परिस्थिति और संयोगी के कारण उस व्यक्ति के दिल में पाप आ गया और उसने वह कंठा उठा लिया।

सेठ उस समय पौषध में थे। धर्मध्यान की भावना प्रबल थी। सेठ ने उसे कंठा उठाते हुए देख भी लिया, परन्तु वह चुपचाप रहा। उसने विचार किया कि इस समय मैं व्रत में हूँ। कंठे को मैंने उतार रखा है। वह अभी मेरा नहीं है।

सेठ शान्त भाव से पौषध में लीन रहा। उसने किसी से कोई चर्चा नहीं की। कितनी विशालता है सेठ के दिल की! आज तो परिस्थिति कुछ और ही है! यहाँ भाई-बहिनें व्याख्यान श्रवण कर रहे हैं। परन्तु बहुतों का ध्यान शायद अपने जूतों और चप्पलों की ओर है कि कोई उन्हें उठा न ले जाये! सेठ का कंठा उठा लिया गया, परन्तु सेठ ने किसी से चर्चा तक नहीं की! कितना बड़ा है उसका दिल!

वह व्यक्ति कंठा चुरा कर चला गया। लेकिन उसके मन में उथल-पुथल मच गयी। वह सोचने लगा-मैंने बड़ा भारी पाप किया है। धर्मस्थान में चोरी की है। अन्य स्थान पर किया हुआ पाप धर्मस्थान में आकर छुड़ाया जाता है। धर्मस्थान में किया हुआ पाप तो वज्रलेप होता है। उससे छुटकारा कहाँ मिलेगा? वह अपने आपको कोस रहा था और घबरा भी रहा था। उसे भय था कि प्रातःकाल पौषध पारकर सेठ घर आयेगा, तो मुझे पकड़वा कर दण्डित करायेगा! शंका और भय के कारण वह आकुल-व्याकुल था। उसका चित्त अशान्त था। वह पाप करना नहीं चाहता था, परन्तु परिस्थिति ने उसे लाचार बना दिया था, वह आदतन अपराधी नहीं था। अतः उसे अपने इस कार्य पर बहुत खेद हो रहा था।

प्रातःकाल सेठ पौषध पारकर अपने घर पहुँचा। सेठ के

गले में कंठा न देखकर परिवार और दुकान के लोगों ने पूछा, तो सेठ ने कहा—चिन्ता न करो, वह ठिकाने पर है। सेठ ने गंभीर दृष्टि से विचार किया—इन्सान परिस्थितियों का दास है। वह पाप करना नहीं चाहता, परन्तु परिस्थितियाँ उसे लालची बना देती हैं। उस व्यक्ति ने कंठा चुरा लिया है, निश्चित ही वह बहुत परेशान और दुखी होगा। यह मेरा अपराध है कि मैंने सम्पन्न होते हुए भी दूसरे साधर्मिक भाइयों की सार—संभाल नहीं की। यदि मैं पहले ही अपने इस कर्तव्य का पालन करता, तो उस व्यक्ति को यह पाप करने का प्रयास ही नहीं आता। सेठ को अपने साधर्मिकों के प्रति अपेक्षा—भाव रखने का पश्चात्ताप हो रहा है। उधर वह व्यक्ति भी पश्चात्ताप कर रहा है, परन्तु उसको अपनी समस्या का समाधान नहीं मिल रहा है। दोपहर तक उसने राह देखी कि सेठ क्या करता है? सेठ के घर के पास होकर वह निकला, सेठ की ओर उसकी दृष्टि मिली भी, लेकिन सेठ ने कुछ नहीं कहा। तब उसके मन में आया कि सेठसा. का दिल बहुत बड़ा है। यह कुछ करनेवाला नहीं है। वह कुछ आश्वस्त हुआ।

अब उसके सामने समस्या है कि इस कंठे को गिरवी रखकर रुपये कहाँ से प्राप्त करें? वह सोचता है कि यदि अन्यत्र कहीं गिरवी रखता हूँ, तो चोरी की शंका में पकड़वा दिया जाऊँगा। अतः उसी बड़े दिलवाले सेठ के यहाँ कंठा गिरवी रखकर रुपये प्राप्त करूँ, तो ठीक रहेगा।

दिन के पिछले भाग में वह कंठा लेकर उसी सेठ के पास गया। लज्जित और भयभीत होते हुए उसने कहा—मैं मुसीबत में फँसा हुआ हूँ। कृपया यह कंठा गिरवी रख लीजिये और दस हजार रुपये दे दीजिये। वह कंठा उसने उनके सामने रख दिया। सेठ समझ रहा था कि यह मेरा ही कंठा है, किन्तु वह यह भी समझ रहा था कि यह व्यक्ति अत्यंत ही मुसीबत का मारा

हुआ है। उसने कहा— अच्छा तुम दस हजार रुपये ले जाओ और यह कंठा भी ले जाओ। मुझे तुम्हारा विश्वास है। उस व्यक्ति ने आग्रह करके कंठा सेठ के यहाँ गिरवी रख दिया और दस हजार रुपये ले लिए। वह व्यक्ति सोच रहा था कि यह सेठ सचमुच देव-पुरुष है। सेठ के विचारों में बहुत ही विशालता और उदारता आ गयी थी। उसकी मानवता प्रबुद्ध हो उठी थी। स्वधर्मी वात्सल्य की उर्मियाँ उसके हृदय में हिलोरें ले रही थीं। तभी ऐसा व्यवहार हो सकता है अन्यथा अपना ही चुराया हुआ माल अपने यहीं गिरवी रखने कोई आये, उस समय अन्य उसके प्रति कैसा और क्या व्यवहार करेंगे, यह मुझे बताने की आवश्यकता नहीं है।

वह सेठ और सेठानी मानवता का पाठ पढ़े हुए थे। सेठानी सेठ से दो कदम और आगे थी। उसने सेठ से कहा—आपने अपने साधर्मिक भाई को कंठा गिरवी रखकर रुपये दिये, यह अच्छा नहीं किया। उसे कंठा वापस कर देना था। साधर्मिक भाई का विश्वास करना चाहिए। सेठ ने कहा—मैं तो कंठा वापस दे रहा था, परन्तु वह बहुत आग्रह करने लगा, अतएव रख लिया। जिन परिवारों में धार्मिक संस्कार होते हैं, जहाँ स्वधर्मी बन्धुओं के प्रति आत्मीय भावना जागृत रहता है, उन परिवारों के सदस्यों में कितनी उदार भावना आ जाती है, यह इस उदाहरण के द्वारा स्पष्ट हो जाता है।

कालान्तर में उस व्यक्ति ने दस हजार रुपयों से व्यापार शुरू किया। उसे लाभ होने लगा। उसने द्रव्य कमा लिया। उसके दिल पर सेठ के उदार व्यवहार का बहुत प्रभाव पड़ा था। वह सेठ को अपना उपकारी मान रहा था। कृतज्ञता के भार से दबा हुआ वह व्यक्ति दस हजार रुपये और उचित ब्याज लेकर सेठ के पास पहुँचा और उन्हें रुपये दे दिये। सेठ ने रुपये ले

लिए और कंठा निकालकर उसे देने लगे। उस व्यक्ति की आँखों में आँसू आ गये और वह कहने लगा—सेठ साहब! क्षमा करना, यह कंठा आपका ही है। मैंने परिस्थितिवश धर्म स्थान में इसे चुरा लिया था! मैं अत्यन्त पापी, अधर्मी और अनैतिक हूँ। आप मानव नहीं देव हैं, आपकी उदारता, दिल की विशालता और गंभीरता ने मेरे जीवन को बदल दिया है! मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। किन शब्दों में मैं आपका आभार व्यक्त करूँ, समझ नहीं पड़ता। सेठ मुझे क्षमा कीजिये।

सेठ ने उसे आश्वासन देते हुए कहा—भाई! अधीर न बनो! तुम्हारा कोई दोष नहीं है। यह तो मेरा अपराध है कि मैंने तुम्हारी सार—संभाल नहीं की। अतएव तुम्हें गलत मार्ग पर कदम बढ़ाने के लिए मजबूर होना पड़ा।

बन्धुओं! जब अन्तरंग शुद्ध होता है, तो कैसा रूपक बनता है, यह मनन करने योग्य होता है। सेठ ने वह कंठा अपने पास नहीं रखा। साधर्मिक भाइयों के लिए ट्रस्ट बनाकर वह कंठा उसमें दे दिया। सेठ की मानवता प्रबुद्ध हो चुकी थी। अतएव वह गरीब भाइयों और बहनों की अभावग्रस्तता मिटाने के लिए प्रयत्नशील रहता था। उनके दुःख—दर्द में सहायता करता था और उद्योग धंधों में लगाने हेतु ध्यान रखता था। इस तरह वह स्वधर्मी वात्सल्य के कर्तव्य का भली—भाँति निर्वाह करने लगा।

किसी समय, संवत्सरी पर्व का प्रसंग आया। आलोचना और प्रायश्चित का विषय चल रहा था। उस भाई का हृदय बदल चुका था। अपने शल्य को निकाल शुद्ध होना चाहता था। उससे रहा नहीं गया। भरी सभा में खड़े होकर उसने सरल और सहज भाव से गुरुदेव से निवेदन किया—गुरुदेव! मैं अत्यन्त अधम और पापी हूँ। मैंने धर्मसभा में आकर भयंकर पाप कर्म किया। सेठ का कंठा चुरा लिया। इसके लिए मुझे दण्ड/प्रायश्चित दीजिए।

वह यह निवेदन कर ही रहा था कि सेठ एकदम खड़े हुए और कहने लगे—भगवन! इसके पहले मेरी बात सुनिये। मैं अधिक पापी हूँ। मैंने साधन—सम्पन्न होते हुए भी स्वधर्मी भाइयों के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं किया, फलस्वरूप उन्हें गलत मार्ग पर जाने के लिए मजबूर होना पड़ा। अतः अपराध इसका नहीं, मेरा है, अतः मुझे प्रायश्चित दीजिए।

आजकल नगर—सेठ नहीं रहे, परन्तु नगरपालिका के अध्यक्ष और ग्राम—पंचायतों के सरपंचों को इस रूप में ले सकते हैं। इनका कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने नगर और ग्राम में दीन—दुखियों और अभावग्रस्तों की सार—संभाल करते रहें। उक्त रूपक प्राचीन काल का है, परन्तु आज भी उतना ही प्रासंगिक है। भरी सभा में अपने दोषों को प्रकट कर देना बहुत बड़ी वीरता है। यदि इतना शौर्य आप प्रकट न कर सकें, तो एकान्त में गुरु के समक्ष अपने दोषों को प्रकट करके शुद्ध हो सकते हैं। परन्तु मैं देख रहा हूँ कि आज तो परिस्थिति उल्टी चल रही है। लोग अपने दोष तो प्रकट नहीं करते, बल्कि दूसरे के दोषों को मेरे सामने प्रकट करते हैं।

कैसा रहा होगा वह युग! कैसी सरल भावना थी उस युग में, जब प्रत्येक व्यक्ति अपने दोष को प्रकट करता था। हार चुकानेवाला कहता है कि भगवन! मैं दोषी हूँ। सेठ कहता है कि नहीं, प्रभो! यह दोषी नहीं, मैं दोषी हूँ। कैसी उदात्त और निर्मल है यह भावना! अपने दोषों को स्वीकार करने और उन्हें प्रकट करने की क्षमता जब आती है, तभी आत्म—विशुद्धि होती है। अपने दोषों की आलोचना सरलभाव से करने पर आत्मा निःशल्य बनती है, शुद्ध बनती है, परम शान्ति का अनुभव करती है।

JSBre egwKZ

बन्धुओं! आज संवत्सरी का पावन प्रसंग है। आलोचना

द्वारा आत्मशुद्धि करने का यह श्रेष्ठतम मुहूर्त है। आपलोग यात्रा पर निकलते हैं, तो ज्योतिषी से मुहूर्त निकलवाते हैं। उस मुहूर्त पर विश्वास करके तिलक लगाकर आप प्रस्थान करते हैं, क्योंकि आपका विश्वास है कि ऐसा करने से आपकी कमाई अच्छी होगी, जबकि यह केवल श्रद्धा और विश्वास का विषय है। ये लौकिक मुहूर्त कभी फलते हैं और कभी नहीं फलते हैं। लेकिन सर्वज्ञ सर्वदर्शी परमात्मा ने आत्मशुद्धि के लिए जो श्रेष्ठतम मुहूर्त बताया है, वह अवश्य ही फलप्रद होता है। इस मुहूर्त पर जो व्यक्ति साधना कर लेता है, वह निहाल हो जाता है, धन्य बन जाता है। यदि आप इस पर विश्वास करेंगे, तो “पल का बाया मोती निपजे” की लोकोक्ति सही सिद्ध होगी। स्वर्गीय आचार्य देव फरमाया करते थे कि पल के बाये मोती कैसे निपजते हैं?

iy dk ck; k eksh fui ts

एक ज्योतिषी के पण्डित ने ज्योतिष-विज्ञान का गहरा अध्ययन किया था। उसकी पत्नी प्रतिदिन उससे झगड़ा करती हुई कहती कि तुम पोथियाँ पढ़ते रहते हो, कमाते कुछ नहीं।

ज्योतिषी ने कहा—मैं एक दिन ऐसा मुहूर्त निकालूँगा, जब जुवार से मोती बन जायेंगे।

पत्नी को उस पर विश्वास नहीं था। वह कहने लगी—गप्पें हाँकना जानते हो, करते-कराते कुछ नहीं। जुवार से कभी मोती बन सकते हैं?

संयोग से आकाश में नक्षत्रों के योग का वैसा प्रसंग आया। उस पण्डित ने गणित द्वारा समय का निर्धारण किया। उसने अपनी पत्नी से कहा—देखो! अब मैं साधना करता हूँ। तुम जुवार लेकर बैठना, चूल्हे पर गरम पानी का बर्तन चढ़ा देना। जिस समय मैं “हूँ” कहूँ, उसी क्षण जुवार के दाने गरम पानी में

डाल देना। थोड़ी देर में ही वे मोती बन जायेंगे।

पत्नी को उसकी बात पर विश्वास तो था नहीं, फिर भी वह कहने लगी—घर में तो एक समय का भी खाना नहीं है, तो जुवार कहाँ से लाऊँ?

पण्डित ने कहा—पड़ोस में सेठानी रहती है, उससे उधार ले आओ।

पत्नी पड़ोसन के पास गयी और बोली—सेठानी! मुझे बीस सेर जुवार उधार में दे दीजिए।

सेठानी ने सहज भाव से पूछ लिया—क्यों बाई! ऐसी क्या आवश्यकता पड़ गयी, जो जुवार उधार माँग रही हो?

उस विद्वान की पत्नी ने कहा—मेरे पति कहते हैं कि ऐसा मुहूर्त आनेवाला है, जब जुवार को चूल्हे पर चढ़े हुए बर्तन के गरम पानी में डाल देने पर वह मोती—रूप में बदल जायेगी।

सेठानी को उस विद्वान ज्योतिषी पर विश्वास था। वह मन ही मन प्रसन्न हुई और उसे बीस सेर जुवार दे दी। सेठानी ने सोचा कि नक्षत्रों को योग तो आकाश में होगा, पण्डितजी के घर पर नहीं। यदि ऐसा योग आनेवाला है, तो जैसे पण्डितजी के घर पर आयेगा, वैसे ही मेरे घर पर भी आयेगा। उनके यहाँ उस समय जुवार के मोती बन सकते हैं, तो मेरे यहाँ क्यों नहीं? उसने शीघ्र सिगड़ी तैयार करके उस पर गरम पानी का बर्तन रख दिया और बीस सेर जुवार पास में रखकर दीवार के पास बैठ गयी। उसके कान दीवार पर लगे हुए थे।

उधर विद्वान की पत्नी भी पानी उबालकर जुवार पास में लेकर बैठ गयी। विद्वान ने आराधना शुरू की। जैसे ही उसने 'हूँ' कहा, सेठानी ने तो जुवार पानी में डाल दी, किन्तु उस विद्वान की पत्नी ने 'हूँ' शब्द सुनकर कहा—क्या जुवार डाल दूँ?

समय बहुत सूक्ष्म होता है। वह शुभ योग निकल गया। पण्डित ने माथा धूना। उसने कहा—मैंने पहले ही समझा दिया था कि 'हूँ' कहते ही जुवार डाल देना। पूछने की क्या आवश्यकता थी? इस मूर्खा ने सुअवसर गँवा दिया।

उसकी पत्नी ने वह योग निकल जाने पर पानी में जुवार डाली, तो वह घूघरी बन गयी। उसने क्रोधित होकर कहा—यह क्या हुआ? यह जुवार तो घूघरी बन गयी! बड़े चले थे जुवार से मोती बनाने? अब मैं पड़ोसिन की 20 सेर जुवार कहाँ से लाकर वापस दूँगी? उसको इतना क्रोध आया कि उसने वह बर्तन लाकर पति के सामने पटक दिया और सारी घूघरी बिखर गयी।

उधर सेठानी ने बर्तन उघाड़ा, तो उसमें मोती के दाने चमक रहे थे। 20 सेर जुवार मोती के रूप में परिणत हो गयी थी। उसमें से थोड़े मोती लेकर वह उस विद्वान ज्योतिषी के घर आयी। उसके सामने मोती के दाने रखे और बोली—पण्डित जी! यह आपकी कृपा का ही परिणाम है। आपके बताये हुए मुहूर्त पर मैंने जुवार पानी में डाल दी, जिससे सब मोती बन गये! उसके उपलक्ष में मैं यह तुच्छ भेंट आपको समर्पित करने के लिए आयी हूँ।

यह बात सुनकर विद्वान को अपनी विद्या पर और अधिक विश्वास हुआ। वह अपनी पत्नी से बोला—तुमने मुहूर्त चुका दिया! सेठानी ने मुहूर्त साध लिया, तो वह निहाल हो गयी।

यह सुनकर पत्नी के नेत्र खुले और वह रोने लगी। वह कहने लगी—एक बार और वही मुहूर्त ले आओ।

पण्डितजी ने कहा—ऐसा दुर्लभ संयोग बारबार नहीं आया करता। वह तो कभी—कभी आता है। जो उसका लाभ उठा लेता, वह निहाल हो जाता है। जो उसे गँवा देता है, वह रोता रह जाता है।

आज संवत्सरी का ऐसा ही शुभ योग आया है। तीर्थकर भगवंतों ने यह श्रेष्ठतम मुहूर्त दिया है। उस पर विश्वास करोगे, तो जुवार से मोती बन जायेंगे। यदि विश्वास न करोगे और इस दुर्लभ अवसर को गँवा दोगे, तो उस मूर्खा पत्नी की तरह पश्चात्ताप करना पड़ेगा। इस मुहूर्त का लाभ उठा लीजिये। जुवार से मोती बना लीजिये। तीर्थकर देवों के वचनों पर विश्वास रखकर अपने दोषों की आलोचना करिये, उनको निकालकर बाहर कीजिये, वैर विरोध को मिटा दीजिये। आपके दोष रूपी जवार के दाने सद्गुण रूपी मोती में बदल जायेंगे। आप निहाल और धन्य बन जायेंगे। आपका इहलौकिक और परलौकिक जीवन सदा के लिए मंगलमय बन जायेगा। बड़ा सुन्दर सुअवसर उपस्थित है।

; g i o l i ; k.k vk; k

?kj ?kj eaexy Nk; k js

; g i o l i q Zk.k vk; k

यह पर्व संसार में आनंद की वृद्धि करने के लिए, घर-घर में शान्ति का संचार करने के लिए, हृदय को शुद्ध और पवित्र बनाने के लिए आया है। छोटे-छोटे बालकों में भी उमंग दिखायी देती है। वे भी उपवास करने को तैयार होते हैं। बच्चों में खाने-पीने की प्रवृत्ति विशेष पायी जाती है। पर्व-दिनों में वे अच्छा खाना, अच्छा पहनना पसंद करते हैं, परन्तु आज का यह पर्व विलक्षण ही है। बालक भी इस दिन उपवास रखना चाहते हैं। यह त्याग भावना उन संस्कारों का परिणाम है, जो तीर्थकर देव और उनकी परम्परा को सुशोभित करनेवाले विशिष्ट गरिमा सम्पन्न त्यागी आचार्यों और मुनिवरों ने प्रदान किये हैं। त्याग, व्रत, संवर, आलोचना, प्रतिक्रमण और क्षमापना आदि के द्वारा इस महत्वपूर्ण दिन का लाभ लीजिये। बार-बार याद रखिये कि पल के बाये मोती निपजते हैं।

आज के इस महान आध्यात्मिक पर्व के प्रसंग पर भी कतिपय युवक सामायिक-संवर किये बिना ही बैठे हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि वे सामायिक-संवर करके व्याख्यान श्रवण का लाभ लें। स्वेच्छया व्रत अंगीकार कर आत्मानुशासन करना चाहिए। व्रतों की मर्यादा स्वीकार करनी चाहिए। अव्रत अवस्था में रहना ठीक नहीं है। व्याख्यान में सामायिक करके बैठने से दुहरा धर्म होता है। आप यहाँ बैठते तो हैं, फिर सामायिक करने का लाभ क्यों नहीं लेते? याद रखिये, व्रत-प्रत्याख्यान करने से ही आश्रव से बचा जा सकता है अन्यथा निरर्थक पाप का भार आत्मा पर चढ़ता रहता है। अतएव अव्रत का त्याग कर व्रत धारण कीजिये और इस महान मंगलमय पर्युषण महापर्व की आराधना में सम्मिलित होइये।

egkjktk mnk; u dh vkj/kuk

महाराजा उदायन बारह व्रतधारी श्रावक थे। उनकी दासी स्वर्णगुटिका का उज्जयिनी के राजा चण्डप्रद्योत ने कुटिलतापूर्वक अपहरण कर लिया। उदायन राजा के लिए यह अपमान का विषय था। श्रावक होते हुए भी अन्याय के प्रतिकार के लिए उन्होंने युद्ध करना उचित समझा। उदायन ने उज्जयिनी पर आक्रमण कर दिया। जब वे वापस अपने राज्य की और सेना एवं बन्दियों को लेकर लौट रहे थे, तो मार्ग में संवत्सरी महापर्व का अवसर आ गया।

महाराजा उदायन की उदारता अनुपम थी। बन्दी होने के बावजूद वे राजा चण्डप्रद्योत का सम्मान करते और उसको अपने हाथों से ही भोजन करवाते थे। संवत्सरी की पूर्व संध्या को उन्होंने चण्डप्रद्योत को कहलाया कि कल वे उपवास करेंगे, अतएव वे अपनी इच्छानुसार भोजन बनवा लें। चण्डप्रद्योत ने इसे कोई कूटनीतिक चाल समझी। अतः उसने भी कहला दिया कि वह भी कल उपवास करेगा।

सांवत्सरिक प्रतिक्रमण के बाद जब क्षमायाचना का प्रसंग आया, तो उदायन महाराज ने चण्डप्रद्योत से हार्दिक क्षमायाचना की। वे अपराधी को क्षमा करने के लिए तत्पर थे, बशर्ते कि अपराधी अपराध स्वीकार कर ले। चण्डप्रद्योत ने इस छुटकारे का अवसर मानकर अपना अपराध स्वीकार कर लिया। उदायन ने उसे न केवल क्षमादान ही किया, अपितु उसका राज्य भी लौटा दिया। इतना ही नहीं, जिसके लिए उन्हें संग्राम करना पड़ा, वह स्वर्णगुटिका दासी भी उसे उपहार रूप में दे दी। इसे कहते हैं वास्तविक क्षमापना। संवत्सरी की सही आराधना उदायन राजा ने की। इसीलिए संवत्सरी के प्रसंग पर उनकी स्मृति हृदय पटल पर उभर आती है। प्रायः सर्वत्र इस प्रसंग पर उनकी गुणगाथा गायी जाती है।

महाराजा उदायन की तरह हमें भी संवत्सरी महापर्व की आराधना करना है। विगत काल में किये गये कार्यों की आलोचना कर आत्मशुद्धि करनी है। अपने वर्ष-भर के कार्यों का लेखा-जोखा करना है। किसके साथ कैसा व्यवहार किया है—यह भी आज के इस पावन दिन सोचने का विषय है। परिवार के सदस्यों के साथ मन-मुटाव और क्लेश की स्थिति तो नहीं है, किसी को हैरान और परेशान तो नहीं किया? पड़ोसियों के साथ कैसा बर्ताव किया है? नगरवासियों और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है या नहीं? अपने सहयोगी और नौकर के प्रति आत्मीयता की दृष्टि रखी है या उनके शोषण की मनोवृत्ति अपनायी है, इत्यादि विषय भी आज के दिन मनन करने योग्य है। जिनके प्रति अनुचित व्यवहार हुआ है, उनके साथ क्षमायाचना कीजिये और भविष्य के लिए सबके प्रति शुभ भावना रखिये।

I n9; ogkj I s ân; & i fjorù

पूर्वकाल के श्रावकों की आदर्श रीति—नीति मेरे मानस पटल

पर रह-रहकर उभर आती है। अतएव मैं समय-समय पर उनका उल्लेख करता रहता हूँ। ऐसा ही एक प्रसंग मुझे याद आता है।

एक बारह व्रतधारी श्रावक पौषध में बैठे थे। उनकी अनुपस्थिति में चोरों ने उनके घर में प्रवेश किया और धन-माल चुरा कर ले गये। ये समाचार सेठ जी को मिले। वे पौषधव्रत की आराधना में लीन रहे। थोड़ी देर बाद फिर समाचार मिले कि चोर पकड़ लिए गये हैं और धन-माल उनसे बरामद कर लिया गया है। इस समाचार से उन्हें प्रसन्नता नहीं हुई। उनकी चिन्तन-धारा ने दूसरा ही रूप लिया। वे सोचने लगे-चोरी के अपराध में राजा उन भाइयों को कठोर दण्ड देगा। मेरा धन और मैं उसमें निमित्त बन रहे हैं। मुझे ऐसा यत्न करना चाहिए कि मेरे उन भाइयों को कठोर दण्ड न मिले और उनका सुधार भी हो जाये।

प्रातःकाल पौषध की क्रिया पूर्णकर श्रावक अपने घर पर पहुँचा। घरवालों ने उसे घटना का विवरण सुनाया, परन्तु उसकी विचारधारा कुछ और ही चल रही थी। उसने तिजोरी से कुछ रत्न निकाले और उन्हें लेकर राजा को रत्न समर्पित किये और निवेदन किया कि मैं प्रयोजन से आपके पास आया हूँ। मेरे घर कल चोर पकड़े गये हैं। आप उन्हें दण्ड देनेवाले हैं, परन्तु मैं चाहता हूँ कि आप उन्हें दण्ड न दें।

राजा ने कहा-अपराधी को दण्ड मिलना ही चाहिए। उन्होंने तुम्हारे घर पर चोरी की है और तुम उन्हें छुड़ाना चाहते हो, यह कैसी विचित्र बात है?

सेठ ने निवेदन किया, महाराज, व्यावहारिक और न्यायिक दृष्टि से अपराधी को दण्ड देना उचित है, परन्तु मैं धार्मिक दृष्टि को प्रधानता देकर उन्हें छुड़ाना चाहता हूँ। कल सांवत्सरिक प्रसंग से हमने 84 लाख जीवयोनियों से क्षमायाचना की है। इस प्रकार की उदात्त और उदार धार्मिक भावना लेकर हम चल रहे

हैं। इसलिए आपसे निवेदन है कि उन्हें क्षमादान दे दीजिये।

राजा ने चोरों को बुलाकर कहा—तुमने चोरी का भयंकर अपराध किया है। मैं तुम्हें दण्ड देना चाहता था, परन्तु जिस सेठ के यहाँ चोरी की है, वही उदारता एवं दया का सागर सेठ तुम्हें छोड़ देने का आग्रह कर रहा है। उसके निवेदन करने से मैं तुम्हें क्षमादान करता हूँ। भविष्य में यदि कभी ऐसा अपराध करते पकड़े जाओगे, तो भयंकर दण्ड भोगना पड़ेगा।

चोरों को जब यह ज्ञात हुआ, तो वे आश्चर्यचकित हो गये। वे सेठ की धार्मिक एवं उदार भावना से बड़े प्रभावित हुए। वे उस श्रावक के घर पहुँचे। उसके चरणों में गिर पड़े। सारा धन सेठ को समर्पित करते हुए बोले कि आप जैसा उदार और विशाल दृष्टिवाला व्यक्ति हमने कहीं नहीं देखा है। आपने न केवल हमें दण्डमुक्त ही करवाया, अपितु हमें अपने जीवन—सुधार की दिशा प्रदान की है। हम आपको गुरु मानते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि भविष्य में कभी चोरी नहीं करेंगे। यही गुरु—दक्षिणा आपको समर्पित करते हैं।

बन्धुओं! देखिये, मानवीय धरातल पर चोरों के प्रति भी सद् व्यवहार करने से उनका हृदय किस तरह परिवर्तित हो जाता है। सांवत्सरिक क्षमापना के प्रसंग से उस निष्ठावान श्रावक ने कैसा आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया!

भाइयों! यदि इतनी उदारता व्यक्त करने की शक्ति न हो, तो आपस की तू—तू मैं—मैं तो आज के प्रसंग पर समाप्त कर देनी चाहिए। व्यक्तिगत करणों को लेकर अक्सर मन—मुटाव हुआ करता है, अतः उसका परिमार्जन शुद्ध अन्तःकरणपूर्वक क्षमापना द्वारा कर लेना चाहिए। सबकी भलाई की दृष्टि से शुभ चिन्तन करना चाहिए। क्षमायाचना में गरीब—अमीर का भेद, छोटे—बड़े का भेद, स्त्री—पुरुष का वेद, पहले और पीछे का भेद नहीं होना

चाहिए। जो पहल करता है, वह मीर (वीर) होता है। जो पहले क्षमा माँगता है, वह महान है। मिथ्याभिमान यह पहल नहीं करने देता, अतः निकाल फेंकिये। हृदय में सरलता और नम्रता धारण कर परस्पर में हार्दिक क्षमायाचना करके मन के कालुष्य को मिटा डालिए। देखिये, फिर कैसा आनन्द आता है और कितनी अपूर्व शान्ति प्राप्त होती है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी सभा में खड़े होकर कान पकड़कर अपनी गलती स्वीकार करते थे, यदि उन्हें अनुभव होता कि उन्होंने गलती की है। यदि कोई भी पक्ष गलती स्वीकार करने की हिम्मत नहीं बना सकता है, तो इतना करे कि विगत बातों के लिए किसी पर दोषारोपण न करते हुए उन्हें मेरी झोली में डाल दे। मन की गाँठ को खोल दीजिये। एक-दूसरे से साफ अन्तःकरण से क्षमायाचना कर लीजिये। आप सब मेरे भाई हैं, इसी दृष्टि से सावधानी दिलाता हूँ। किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य में रखकर मैं नहीं कह रहा हूँ। समुच्चय रूप से, सिद्धान्त की दृष्टि से प्रतिपादन कर रहा हूँ। यह आपको अच्छा लगे या न लगे, इसका मुझे सोच-विचार नहीं है। मैं तो हित की दृष्टि से कभी-कभी कटुवचन भी बोल देता हूँ। लेकिन किसी व्यक्ति विशेष के लिए नहीं कहता। मैं तो तटस्थ भाव से प्रतिपादन करता हूँ। मेरे कथन से यदि किसी का दिल दुःखा हो, तो मैं क्षमायाचना करने हेतु तत्पर रहता हूँ। मैं केवल हित-बुद्धि से ही उपदेश करता हूँ, अतएव उसे सद्भावनापूर्वक समझने का प्रयास करे। उचित प्रतीत हो, तो उस पर आचरण करें।

वक्रयकपुलकं च वक्रयकपुलकं

इस संवत्सरी के प्रसंग को लेकर मैं अपनी भी आलोचना कर लेना चाहता हूँ। सर्वप्रथम मैं परम तारक तीर्थकर देवों और श्रमण-संस्कृति के पूर्वाचार्यों का उपकार मानता हूँ, जिनके

बताये हुए संयम मार्ग पर मैं यथाशक्ति चलने का प्रयास कर रहा हूँ। बड़ा उपकार है मुझे पर उन महान विभूतियों का! कदाचित जानते-अजानते मेरे द्वारा उनकी कोई आशातना हुई हो, उनकी आज्ञा के विपरीत यदि किसी तत्व का मेरे द्वारा प्रतिपादन हुआ हो, तो मैं अन्तःकरणपूर्वक क्षमायाचना करता हूँ।

उत्तरदायित्व और कर्तव्य-दृष्टि को लेकर संतमण्डल और सतीवर्ग के विषय में कुछ कठोर शब्द कहने का प्रसंग आ जाता है। संत-सतीगण अपनी-2 स्थिति से संयम की साधना कर रहे हैं, तदपि कुछ अप्रिय कहने का अवसर आ ही जाता है। मैं तटस्थ बुद्धि और कर्तव्य-भावना से प्रेरित होकर ही कुछ कहता हूँ, फिर भी यथावसर मैं उनसे क्षमायाचना कर लेता हूँ। उसी समय या प्रतिक्रमण के समय क्षमायाचना करने का ध्यान रखता हूँ। आज के इस प्रसंग पर मैं पुनः सभी संत-सती वर्ग से क्षमायाचना करता हूँ।

इसी प्रकार श्रावक-श्राविका वर्ग को भी उपदेश के माध्यम से कुछ कहने में आ ही जाता है। किसी व्यक्ति विशेष को लक्ष्य में रखकर मैं कुछ नहीं कहता, समुच्चय रूप से प्रतिपादन करता हूँ। मैं नहीं चाहता कि मेरे शब्दों से किसी के दिल को आघात पहुँचे। लेकिन यदि सत्य बात का प्रतिपादन नहीं करता हूँ, तो भी कर्तव्य से विमुख होता हूँ। संघ ने मेरे कंधों पर बड़ा भारी उत्तरदायित्व डाल रखा है। उसके निर्वाह हेतु मुझे कुछ कहना-सुनना पड़ता है। यदि यह उत्तरदायित्व न हो, तो मुझे अपनी साधना में, ज्ञान-ध्यान में विशेष अनुकूलता हो सकती है। मुझे अपनी आत्मसाधना में अपूर्व आनंद की अनुभूति होती है और मैं उसी में रहना विशेष पसन्द करता हूँ। लेकिन स्वर्गीय आचार्य देव ने और चतुर्विध संघ ने जो दायित्व सौंपा है, उसे यथाशक्ति निभाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। इसीलिए उपदेश के माध्यम से

यहा अन्य किसी प्रकार से किसी श्रावक—श्राविका को मेरे शब्दों से या व्यवहार से दुःख पहुँचा हो, तो पुनः पुनः क्षमायाचना करता हूँ।

देशनोक संघ का भी मैं उपकार मानना चाहता हूँ। यहाँ का संघ सूझबूझवाला और संत—सती वर्ग के ज्ञान, दर्शन चारित्र की आराधना में सहयोग करनेवाला है। शान्ति के साथ व्याख्यान श्रवण तथा धर्मराधना में वह किसी से पीछे नहीं है। साधु और श्रावक एक दूसरे के पूरक बतलाये गये हैं। श्रावक, साधु के चारित्र एवं संयम के पालने में सहायक बनते हैं। इसी तरह साधु भी श्रावक के व्रताराधन में सहायक बनते हैं। प्रभु महावीर की संघ व्यवस्था बड़ी सुन्दर और ठोस है।

इसी तरह शास्त्रकारों ने जिन—जिन का उपकार प्ररूपित किया है, उन सभी का मैं उपकार मानता हूँ। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना में जो कोई भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में सहायक हुए या हो रहे हैं, उन सबका उपकार मानते हुए क्षमायाचना करता हूँ।

I ɔrI jh egki oZ 'kʃʊr dk I pʃj

बन्धुओं! यह संवत्सरी पर्व क्षमा और शान्ति का महापर्व है। इसकी सम्यग् आराधना सर्वत्र शान्ति का संचार करनेवाली है। यह आत्मा को शान्ति प्रदान करता है, परिवार को शान्ति देता है, जाति और समाज में शान्ति का विस्तार करता है। देश में और सारे विश्व में यह शान्ति का संचार करनेवाला है। अतएव शान्ति के इस महान पर्व की सही आराधना कर अपने जीवन को मंगलमय बनायें। आपकी आत्मा में यह अन्तर्नाद स्फुरित हो—

[kʃeʃe I ʊs tʃok] I ʊs tʃok [keʊrʃeʃe]

feʊkh es I ʊo Hkq I ʃʊ oja eT> u dskbAA

इस अन्तर्नाद से जीवन में त्रिभुवन में सर्वत्र शान्ति का

संचार, प्रसार और विस्तार हो, यही मंगलमय भावना और कामना है।

सर्वे सुखिनः—सन्तु।

देशनोक (संवत्सरी पर्व)

9.9.1975